बगाल के बाउल और उनका काव्य

भाग-१



डॉ. हरिश्चन्द्र मिश्र

आदरणीय श्री गौरा शास्त्री जी,

जिनके आदेश से

इस ग्रंथ को

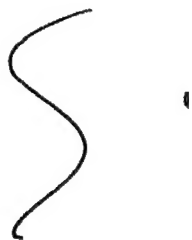
रूप मिला



[illegible]

5 ४ ७७

आदरणीय श्री मोहन मालवीय को
जिनके आदेश ने
इस रचना को
रूप दिया



[illegible]

5 8 99

बगाल के बाउल और उनका काव्य

भाग १

डॉ हरिश्चन्द्र मिश्र



रामकृष्ण प्रकाशन
सावित्री सदन तिलक चौक
विदिशा (म प्र) 464 001

बगाल के बाउल और उनका काव्य भाग १

डॉ हरिश्चन्द्र मिश्र

प्रथम सस्करण 1997

मूल्य 135/

आवरण शिल्पी श्री सत्येन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय

अक्षर सयोजन रवि नेमा

आवरण सज्जा एव रूपाकन गिरधर उपाध्याय

डी टी पी कम्पोजिग सिल्वर स्कैन कम्प्यूटर सर्विसेज
तिलक चौक विदिशा (म प्र)

मुद्रक एव प्रकाशक **रामकृष्ण प्रकाशन**
सावित्री सदन तिलक चौक
विदिशा (म प्र) 464 001
दूरभाष 32675

BANGAL KE BAUL AUR UNKA KAVYA PART 1
by Dr HARISH CHANDRA MISHRA

ISBN 81 7365 088 8 R 135/

प्रकृति–स्वरूप–सत्ता के आकर्षण का जिसने
श्रम और सवेदना से सतत् विकास किया है
उसी शान्त उदग्र एव चचल श्रम–सौन्दर्य को

हरिश्चन्द्र मिश्र

भूमिका

•

साहित्य को जी से जो ने की आलोचना क न्य मे म व मूल्यो की तलाश आदत सी बन गयी है। अ ने दो ो को मूल्य का ही परिप्रेक्ष्य ब ।। व्यापक मानवीय संवेदना एव अर्थवत्ता के सन्दर्भ मे साहित्य का विश्लेषण करना अपना मानवीय कर्त्तव्य समझता रहा हू। अपने कर्म क्षेत्र मे अपने सहकर्मी गुरुजनो की गोष्ठी में यही मानव मूल्य क चे ह की चीज ब ने लगी थी उनके मन की गुदगुदाहट का आधार बनने लगी थी तब मैं निर्द्वन्द्व भाव से बगाल के धर्म एव साहित्य के इतिहास मे म नवमूल्य हेतु ऐतिहासिक आधार ढू ने ल ।। था। सारी चिन्ता छोडकर इस पागलपन मे लगा था। पाया बगाल मे पागल (बाउल) कहे जाने वाले धर्म सम्प्रदाय का चिनह् और लग गया उसके अध्ययन मे। विभि न बगला थी क अध्य किया तथा हि दी में सबका अनुवाद कर डाला। उन्हीं के आधार पर अपने दो खण्डो के ग्र थ को लिख दिया। यह श्री हरिमोहन मालवीय का आग्रह था और का ।न की ना।ओ क निर्दे भी था। उनकी यह इच्छा अब पूरी हो रही है। ग्र थ अब तैयार है। बगाल के विद्वानों के विश्लेषण को अपने से सजोया और प्रास‍ि‍क ब गी ो क अपने ढग से विश्लेषण भी किया है। जैसा बन पडा वैसा है। पाठक ही इसका निर्णय करे।

बाउल गीतो को पढने के बाद लगा कि उनके अनेक गीत कितने प्रासगिक हैं। किसी पागल ने इतनी स ची बात कैसे कह दी ? बगाल में कहावत है कि पागल क्या नहीं बोलता और बकरी क्या नहीं खाती। लेकिन इन पागलो की बातों मे इतना अर्थ है इतना उपयोगी कथन है कि आश्चर्य होता है। मनुष्य देह एव जीवन की प्रभुसत्ता को स्वीकार करने वाले ये बाउल कितने परिवर्तनशील थे कछ कहना सभव नहीं। सारा विश्लेषण और गानो के हि दी अनुवाद के साथ यह परिश्रम दृष्टा त ही है। आशा है हि दी साहित्य इस 'बाउल विवरण को स्वीकार करेगा। बगाल वास का दायि व तो यही था।

ॱस कार्य मे मुझे बहुत लोगो से सहयोग मिला ो उनके प्रति कृतज्ञ हू। ा। हरिमो न मालवीय का आग्रह परिवार नो का रि ारिक हयो। स्तु य है। प्रोफेसर सोमे द्रनाथ धो ध्य क आशीर्वाद ५ दे हमे ॥ वरे य रहा। इस कार्य मे उनकी मह वपूर्ण भूमिका रही। डा शालिग्राम जी गुप्त का उत्साहवर्द्धन कार्य की पूर्ति का एक मह वपूर्ण आयाम रहा है। मुझे इन्कार करने के व्यूह मे से निकालने मे और मेरे परिश्रम को प्रेरित करने मे कछ लोगों का सहयोग अत्यन्त सराहनीय है। जि होने मुझे श्रद्धा और स्नेह दिया। मुझमें आ मबल और विश्वास भरा। वे जो शान्त उदग्र और चचल हैं मेरी उदग्रता को कार्य फल मे लाने में निश्चय ही सहयोगी हैं। अपने एकान्त स्नेह से उ होने मेरे मन को ऊचा उठाया चाहे वे मेरे छात्र ही क्यो न रहे हो। शायद वे अपनी इस क्रियाशीलता से अनभिज्ञ हों पर सत्य यही है। उन सबका सम्मिलित सहयोग यह श्रम फल है। पाठको को समर्पित है यह शब्द कर्म।

बगाल में अति सिद्ध इस म्प्रद के रे मे हि दी साहित्य मौन रहे अच्छा नहीं था। उसकी मौनता को तोडना था। इसी उद्देश्य की पूर्ति हि दी साहित्य को भेंट करता हू। बस इतना ही

●

हरिश्चन्द मिश्र

रथयात्रा दिवस
रविवार ८ ७ १९७४
हि दी भवन विश्व भारती
शान्ति निकेतन (प ब)

क्रम





|| १ ||

बाउल और उनका ऐतिहासिक परिचय



बगाल की साधना पद्धति काव्य रचना एव अन्य धार्मिक सामाजिक मान्यताओ से भि न एक ऐसी सम्प्रदाय परम्परा देखी जाती है जिसमे रूढियो को कोई स्थान नहीं फिर भी जो इस समाज का एक अभि न अग है। वह सम्प्रदाय सामाजिक मान्यताओ से अलग थलग मस्तमौला है जिसे किसी की परवाह नहीं परवाह है बस अपनी धुन की अपने स्वीकृत सत्य की जो सब ओर से एक है एक मन एकतारा एक गीत एक राग एक ही मन का मानुष मनेर मानुष आदि आदि।

ल मे बा लो की मीक्ष से सम्बधित । ों के प ने तथा यहा के लोगों से बातचीत करने पर ज्ञात हुआ कि बाउल तो बहुत पहले से ही थे किन्तु उनके प्रति सजग दृष्टि आधुनिक काल के शिक्षित व्यक्तियों ने ही डाली। आज भी अनेक शिक्षित व्यक्ति उन गानो के विशेष भक्त हैं। कछ शिक्षित व्यक्ति तो ग्रामीण बाउलो के गान को आदर्श मानते हैं। हरिनाथ मजुमदार (१८३३ ९६) ऐसे शिक्षित व्यक्ति थे जो बाउल गान की ओर आकृष्ट हुए और उ होने स्वय भी अनेक प्रशसनीय बाउल गान लिखे थे। उनके चरित्र के आदर्श ने युवक दल को भी इस सम्प्रदाय की ओर आकृष्ट किया। रवी द्रनाथ अपनी जमींदारी परिदर्शन के दौरान शिलाइदह (वर्तमान बगलादेश में स्थित) के आवास काल में लालन फकीर के ल ।ानों के सम्पक में आये और उन्होने इन गानो के भाव भाषा से प्रभावित होकर स्वय इन गानो का सग्रह करके प्रकाशित किया। यही कारण है कि उनकी काव्य रचना भी बाउलो के गानो से काफी प्रभावित हुई। उनके अनेक । न प्राची ब ों क ही आधुनिक म र्जित रूप तीत होते हैं। (किन्तु रवी द्रनाथ प्रकृत अर्थ मे इस कारण बाउल नहीं कहे जा सकते।) परिणाम यह है कि बाउल गान एव बाउलो के प्रति आधुनिकता का सचार हुआ और उसका अध्ययन प्रासगिक हुआ।

बाउल शब्द की उ पत्ति का अनुमान बातुल शब्द से किया जाता है। इस शब्द के ता पर्य के स दर्भ मे पण्डित क्षिति मोहन सेन ने कहा है अनेक शताब्दी से जाति पाति से वहिर्भूत

निरक्षर एक दल साधक शास्त्रभार मुक्त मानव धर्म की ही साधना करता चला आ रहा है। वे मुक्त पुरुष हैं इसलिए समा का कोई ब धन नहीं म। ते फिर भी समाज उनको क्यो छोड़ेगा ? तब उ होने कहा था हम लोग पागल हैं हमारी बात छोड़ दो। पागल का तो कोई दायित्व नहीं। बाउल का अर्थ वायुग्रस्त अर्थात पागल है। (उद्‌घृ बगलार साहित्येर सक्षिप्त इतिहास भूदेव चौधुरी) (द्वितीय सस्करण १९६२) बाउल शास्त्रभार मुक्त जो मानव धर्म की साधना करते हैं उसे खोजते फिरते हैं मानव देह में ही। देह की आदिम और चिरन्तन आकाक्षा को मन के सहज अनुराग मे रगकर उन्होने अनुभवमय मन के मानुष के मदिर में एकान्त मन में प्रस्तुत किया है। बाउलों का गान उसी बाउल साधना का अग है। बाउल शब्द व्यक्ति के लिए प्रयुक्त नहीं है प्रयुक्त हुआ है एक गोष्ठी के लिए, जिसके लिए बातुल विशेषण प्रयुक्त है उसकी प्रकृति का स्वरूप और वैशिष्टय ।ने के माध्यम से क होता है। बाउल शब्द की उ पत्ति और ता पर्य के स दर्भ मे उपे द्र नाथ भट टाचार्य ने विशद व्याख्या की है। दीर्घ बीस वर्षों तक बाउलों के साथ रहकर उनमे दीक्षित होने का अभिनय करके उ होने बाउल सम्प्रदाय के गुप्त रहस्य को भी जानने की चेष्टा की और उस स दर्भ मे एक वृहद् ग्र थ (लगभग १२ पृष्ठो का) लिखा। वैष्णव शैव कृष्णभक्ति बौद्ध ए व हि दू तत्र स धन। के सम्यक विकास की चर्चा करते हुए उ होने इस शब्द का अर्थ और सरोकार समझने की चेष्टा की है। उनके अनुसार ज्ञात होता है कि मध्ययुग के बगला साहित्य मे विशेष रूप मे कृष्णदास कविराज के चैत य चरितामृत ग्रथ में बाउल शब्द का काफी व्यवहार हुआ है। मालाधर वसु के श्रीकृष्ण विजय मे इस शब्द का व्यवहार दिखाई देता है। चैतन्य चरितामृत ग्रथ मे सात आठ बार इस शब्द का प्रयोग हुआ है। चण्डीदास भणिता युक्त वैष्णव सहजिया त व और साधना प्रणाली समन्वित रागा मिका पद मे भी बाउल शब्द का व्यवहार दिखाई देता है। चण्डीदास के राधा कृष्ण प्रेम लीला का स्वरूप प्राकृत प्रेम लीला से ऊप जो चै न्य र र्ती यु। मे ही भव हु ।। चैतन्य प्रेम मे राधा की विह्वलता त मयता उ मादना का दृष्टात पाया जाता है। चण्डीदास के प्रेम मे साहित्यरस के आस्वादन के साथ अध्या म रस के आस्वादन का उत्कर्ष चैतन्य परवर्ती युग मे ही सम्भव हुआ। यह उत्कर्ष स्वरूपगोस्वामी रूप गोस्वामी सनातन गोस्वामी जीव गोस्वामी आदि की रचना के बीच से गौडीय वैष्णव धर्म तत्व के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ। सहज प्रेम साधना का बीज इन वैष्णव सहजिया धर्म में दिखाई देता है। उस युग मे ईश्वर प्रेम मे मतवाले और वाह्य ससार के व्यापार मे उदासीन व्यक्ति को बाउल कहा जाता था। स्वय चैतन्यदेव ने भी खुद को बाउल कहा है। असित कमार व द्योपाध्याय के अनुसार बातुल या व्याकल से बाउल शब्द उत्प न हो सकता है। अर्थात ईश्वर प्रेम में जो पागल है अथवा आउल (अरबी) (या बाउर) हि दी जिसका अर्थ वायुरोग ग्रस्त है) से भी यह शब्द व्यु प न हो सकता है। अरबी शब्द का अर्थ है ईश्वर प्रेमी स्वाधीन चित्त जाति सम्प्रदाय चिनह्

से रहित एक भक्त दल विशुद्ध ईश्वर प्रेम में विश्वासी होकर प्राय चार सौ वर्ष आगे से ही बाउल नाम से वह सोलहवीं अठारहवीं शताब्दी में वैष्णव सहजिया समाज में विशेष प्रधान हो गया था। उसने सम्प्रदाय को तात्विक रूप में प्रभावित किया। इनमे से कछ तो बाउल नाम से ही परिचित थे। मालूम होता है कि बाउल सम्प्रदाय इनके द्वारा ही परिपुष्टि लाभ कर सका इनके बीच से ही उत्थित हुआ है।
(बगला साहित्येर सम्पूर्ण इतिवृत्ति असित कमार वन्द्योपाध्याय द्वितीय सस्करण १९६८ पृ २३२)

दुघुशाह के एक पद को बाउल की परिभाषा के रूप मे लिया जा सकता है पद सख्या १५७ भाग दो दृष्टव्य।

ये खोजे मानुषे खोदा सेइ तो बाउल।
वस्तुते ईश्वर खुजे पाय तार उल।।

(जो मनुष्य मे ईश्वर को खोजता है वही तो बाउल है वस्तु में ईश्वर को खोजने पर अपनी सत्ता महत्ता आदि को प्राप्त करता है।) इसका ता पर्य यह है कि कर्मकाण्ड शास्त्र आदि से परे मनुष्य में ही ईश्वर को खोजने वाला परम्परा का विरोधी होने के कारण सामाजिक मान्यता मे पागल होगा ही। लोग उसे पागल कहेंगे तो वह भी पागल बनने को तैयार है। उपे द्रनाथ भट टाचार्य मानते हैं कि सस्कृत वातुल (अर्थात् उन्माद) शब्द का प्राकृत रूप लेकर बाउल शब्द ने बगला भाषा में प्रवेश किया है। श्रीकृष्ण विजय चैतन्य चरितामृत और रागा मिका पद मे इसी वातुल शब्द के ही प्राकृत रूप मे ही हम बाउल शब्द को पाते हैं। इसी मूल बातुल अर्थात् उ माद या भावो माद अर्थ में परवर्ती काल मे एक विशिष्ट भाव के निरतर आवेग में वाह्य ज्ञान शून्य या भावो माद या धर्मो माद वेश वास और आचार व्यवहार मे प्रचलित सामाजिक रीति नीति के बधन से मुक्त लोकाचार परित्यागी आत्मकर्म समाहित उदासीन धर्म साधक गण बाउल नाम से परिचित हुए हैं। बाउलो को विशेषत राढ बाउलों को क्षेपा (क्षिप्त) नाम से अभिहित किया जाता है। चारुच द्र व द्योपाध्याय की उक्ति को देखें तो एक धारणा मिलती है। एक विशेष धर्म के लोगो को बाउल कहते हैं। इस शब्द की व्यु पत्ति के स दर्भ मे नाना लोग नाना मत व्यक्त किए हैं। कोई कह है कि ब वायु ब्द के स थ हे अर्थद्योतक ल प्रत्यय योग करके निष्प न है एव इस वायु शब्द के अर्थ मे योग शास्त्र की स्वाभाविक शक्ति का सचार मालूम होता है। जो सम्प्रदाय देह के स्वाभाविक शक्ति के सचार का साधन करने की साधना करे वे ही बाउल हैं। कोई कहता है कि वायु माने श्वास प्रश्वास एव श्वास प्रश्वास का अर्थ जीवन धारण है एव उसका सरोध करके दीर्घ जीवन धारण करने की जो साधना करते हैं वे ही बाउल हैं। पुन कोई कहते हैं कि सस्कृत वातुल शब्द का प्राकृत रूप बाउल है। जो व ताधिक होते हैं वे पा। होते हैं और का अ ।

साधारण लोगो के तुल्य नहीं होता लोग उसे ी पागल या वातुल कहते हैं। इस प्रकार साधारण समाज वहिर्भूत आचार व्यवहार सम्प न धर्म सम्प्रदाय बाउल है।

(उद्धृत बगलार बाउल ओ बाउल गान पृ)

इस रोक्त म का वि ोध करते हुए पेन्द्र थ भ ार्य कहते हैं 'श्वास प्रश्वास सक्रान्त योग साधना जिसका धर्म है उन सबको ही यदि बा ल कहा जाता तो यो। मा वि म्बी सभी साधकों को ही बाउल नाम से अभिहित किया गया होता। किन्तु हिन्दू तत्र साधक बौद्ध तन्त्रसाधक हठ्योगी नाथ पथी लोगों को कोई बाउल नहीं कहता। अत लेखक का शेषोक्त मत ही समर्थन योग्य है। (वही पृ ४)

बाउल निरन्तर एक ही भाव में डूबकर जीवन काटते हैं। इसी भाव में डूबकर ससार और समाज की उपेक्षा करके वे अपने मन के साथ लीला करते हैं। एक गान में है

आट भाव अन्तरे राखे
बाहरे से उडन पेके
बूँद होये वसे थाके से आपन स्वभावते।।
(ओ से) कभु हासे कभु काँदे
कभु नाचे कभु जाँचे
सदा समान भाव तार शुचि अशुचिते।।
भालो कि मन्द हुए
तादेक द्वारेते थुये
पाषाणे बेंधे हिए रहे आन देते।।

(मूल भाव को अतर मे रखकर बाहरी भाव का बहिष्कार करता है और अपने स्वभाव में बूँद रूप में बैठा रहता है। वह कभी हसता है कभी रोता है कभी नाचता है कभी जाचता है। शुचि अशुचि में सदा समान भाव रहता है। अच्छा हो या बुरा द्वार पर फेंककर हृदय में पाषाण बाधकर आनन्द से रहता है।)

वह भाव का मानुष भाव का भावुक और प्रेम क प्रेमी किस रीतिपद्धति मे रहता है उसे कोई कभी नहीं जानता। वह आन द निरान द से परे नित्य ही प्रेमान द में जीता है। आन द सलिल में उसके दोनों नेत्र तैरते रहते हैं। वह अपने मे हसता और रोता है। वह धन और जन ख्याति नहीं चाहता। उसके लिए अपने पराये का भेद नहीं रहता। वह चौदहों भुवन के दग्ध होने पर आसमान मे अपना घर बनाता है। वह महाभाव मे रहता है। उसे देखकर ही पहचाना जा सकता है। बाउलों की ही एक पक्ति इसके लिए सत्य है।

महाभावेर मानुष होय ये जना
तारे देखले जाय रे चेना

(ओ) तार ऑखि दुटि छल छल
मृदुहासि वदन खाना।

ये बाउल आ मगोपनशील होते हैं। इसमे वे एकदम सतर्क रहते हैं। उनके साधु गुरु का आदेश भी यही है।

आपन भजन कथा
ना कहिवे जथा तथा
अपना ते आपनि होइबे सावधान।

हमेशा स्वतत्र रहने पर भी वे बाहर से साधारण रीति नीति मानते हैं। लोकाचार पालन का अभिनय करते रहते हैं। वे इसे गुरु का निर्देश मानते हैं।

लोक मध्ये लोकाचार
सद्गुरु मध्ये एकाकार।

बाउलो का समानार्थक और एक शब्द आउल है। आज बाउल सम्प्रदाय युक्त एक श्रेणी के मुसलमान साधकों को आउल या औलिया कहा जाता है। उपे द्रनाथ भटटाचार्य के अनुसार इसका मूल भी सस्कृत का आकल शब्द है। आकल शब्द आवेग चचल आल खाल बे सभाल अस्वाभाविक मनोभाव सम्प न आदि भाव का द्योतन करता है एव एक प्रकार से वातुल (बाउल) इसका ही समानार्थक है। इस शब्द का प्रयोग केवल मुसलमान साधको के लिए ही प्रयुज्य होने का कारण परवर्ती काल का सूफी प्रभाव है। अरबी शब्द उयाली (अर्थ निकट बहुवचन में उयालिया) सूफी साहित्य में भगवत् स्वरूप प्राप्त पूर्ण मानव को बताता है। सूफी प्रभाव मुसलमान बाउलों पर अधिक पडा जिसके साधना पथ मे विशेष अ सर ८ त्वज्ञानी के परिचा क रूप मे औलिया शब्द प्रचलित हुआ। बाउल और आउल अर्थ मे सामाजिक रीति नीति के उर्ध्वगत जो आ मभोला और त्तवत् व्यक्ति को स्पष्ट करत है सूफी हित्य मे ही अर्थबोध ब्द दी अर्थात् पागल है।

इस श्रेणी के साधकों को केवल इसी नाम से अभिहित नहीं किया जाता। इस धर्ममत मे हि दू और मुसलमान दोनों श्रेणी के लोग हैं। । दे । ९१ पश्चि में मु लम न जाति के सभी साधकों को फकीर कहा जाता है। साधारण फकीरो से भेद ज्ञापन के लिए इ हें नेडा फकीर कहा जाता है। दो एक जगहो पर इन्हे बे शरा फकीर या मारफती या बेदाती फकीर भी कहते हैं। बौद्ध साधको की तरह धर्माचरण के कारण इ हे नेडा फकीर कहा जाता है। निम्न श्रेणी के एक और अश जो मुसलमानो मे रूपान्तरित नहीं हुए कि तु ब्राह्मण आदि उ च वर्ण द्वारा अवहेलित एव समाज से बहिष्कृत अवस्था में थे वे तान्त्रिक बौद्ध साधना को मूलत बनाए रखते हुए वैष्णव धर्म का आश्रय ग्रहण किए रहे। बौद्ध धर्म से वे वैष्णव धर्म मे आ गये। उ हे ही ज्ञापित करने के लिए उन

सब साधक साधिकाओ को नन्ना नेडी कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि नित्यानन्द के पुत्र वीरभद्र इसी बौद्ध सहजिया धर्म को वैष्णव धर्म की ओर ले आये। बे शरा शरीयत या अनुष्ठानिक इस्लाम धर्म से वहिर्भूत होते हैं। ये जाति से मुसलमान होने पर भी धर्म साधना की दिशा मे इस्लाम के धर्म विश्वास और आचार व्यवहार को ग्रहण नहीं करते।

अनेक स्थानो पर बाउलो को रसिक वैष्णव रागानुगापथी वैष्णव भी कहा जाता है एव ये लोग भी अपने को इसी नाम से अभिहित करते हैं। साधारण लोग इन्हे मात्र वैष्णव कहते हैं। रसिक शब्द वैष्णव सहजिया साहित्य मे एक विशिष्ट अर्थ मे पाया जाता है। चण्डीदास के रागात्मक पदो एव सहजिया साहित्य मे इनका बहुत प्रयोग है। वैष्णव सहजिया साधना पूर्ण प्रेम और माधुर्य रस की साधना है। दुरूह साधना मे सिद्ध साधक ही प्रकृत रसिक हैं। बाउल गान मे इसी सहज भजन की पद्धति और इसी तत्वाश का एक विशिष्ट रूप में रूपायित व्यावहारिक प्रयोग अधिक पाया जाता है। बाउलो के तत्व और दर्शन के सन्दर्भ मे अलग से चर्चा होगी। मुसलमान फकीर और हिन्दू बाउल या रसिक वैष्णव सभी एक ही तत्व के उपासक हैं साधना की पद्धति मे भी एक एव साधना सक्रान्त आचार व्यवहार में भी समान हैं। अत बगाल के इसी श्रेणी के समस्त साधकों को ही एक बाउल नाम से अभिहित किया जाता है। बगला सहित्य मे बाउल आउल नेडा सहजी कर्त्ताभजा साई दरवेश आदि लोकसम्प्रदाय का विवरण मिलता है।

आज भी बाउलों की रागिनी उनका एकतारा बगाल में झनझनाता है मन आकृष्ट करता है। गाडियों मे रास्ते पर मेलों में उनकी रागिनी की झकार मन को आकृष्ट करती है चाहे वे शौकिया बाउलो द्वारा रचे गान हों चाहे बाउल राग और छदो के आधार पर रचे गान हो अपने अपने लोकगीतो के रस के परिप्रेक्ष्य मे एक सहज रस का सचार करते हैं। अनायास इन बाउलो की स्थिति के साथ उनकी उत्पत्ति से लेकर आज तक की विकास धारा की पहचान की ओर मन आकृष्ट होता है। बाउलो का ऐतिहासिक परिचय ही उनका प्रकृत परिचय है क्योकि आज उनका वास्तविक स्वरूप नहीं रह गया है। हर धार्मिक सम्प्रदायो की तरह इनका भी अस्तित्व खतरे मे है। अत उनके ऐतिहासिक विकास के निदर्शन मे बाउलो की सच्ची परख हो सकेगी।

बाउल सम्प्रदाय के विकास को निर्धारित करने के लिए बौद्ध तत्र साधना। शैव तत्र सहजिया भक्ति के विकास को निर्धारित करते हुए सूफी साधना का प्रभाव को भी निर्धारित करना आवश्यक है। क्योकि बाउल धर्म इन समस्त धर्म साधना का समन्वित परिणाम है। बाउल गान एव साधना का पूर्ण रूपेण अस्तित्व अठारहवीं उन्नीसवीं शताब्दी मे सामने आया। असित कुमार वन्द्योपाध्याय ने बगला साहित्येर सपूर्ण इतिवृत्त ग्रथ मे इसी प्रकार का

विचार प्रस्तुत किया है। अठारवीं उन्नीसवीं शताब्दी मे ओर एक ा र स्यआ ी साधक जो बाउल नाम से परिचित थे ओर सी नाम से एक उपसम्प्रदाय निर्मि ा आ उन्होने जो अनेक उत्कृष्ट अध्या म सगीत की रचना की थी वे अठार वीं श ाब्दी ह लिए अभिनव हो सकते है। (पृ ३३१) यद्यपि इन बाउल गानो के ा ा ा ा आधुनिक काल मे ही ज्यादा जोर पकडा। काव्या मकता एव प्रासगिकता । स ो इसकी चर्चा की जाएगी। यद्यपि इस बात को असित कुमार ने भी स्वीकार किया है। असि त कमार भी बाउल शब्द को चैत य के साथ जोडते हुए इसकी प्राचीनता म ाप्र ो। य तक ले गये हैं। बाउल शब्द की उत्पत्ति सम्बन्धी चर्चा के साथ असित कुमार ने बाउलो की प्राचीनता को माना है। चाहे जिस दिन से ही क्यो न ो ईश्वर प्रेमी स्वाधीन चित्त जाति सम्प्रदाय के चिनह् से रहित एक भक्त दल विशुद्ध ईश्वर प्रेम मे विश्वासी होकर बाउल नाम से परिचित हो गया था प्राय चार सौ वर्ष आगे से ी। सत्रहवीं या अठारहवीं ाब्दी मे वैष्णव सहजिया सम ा मे जो प्राधा य अर्जन किए थे। उ ोने बाउल स प्रदाय को तत्व द्वारा प्रभावित किया इनमे से कोई कोई बाउल नाम से ी परिचित थे। मा ू ा होता है कि बाउल सम्प्रदाय इनके द्वारा ी परिपुष्टि लाभ कर सका ाक बीव से ी उत्थित हुआ है। (पृ ३३२)। इस प्रकार असित कुमार ने सहजिया वैष्णवो क सा ा बाउल सम्प्रदाय का सम्बन्ध जोडा सूफी साधना का प्रभाव ी स्वीकार किया गया । प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक बाउल सम्प्रदाय चला आ र ा । सहजिया वैष्णव भक्ति बौद्ध तान्त्रिक हिन्दू तान्त्रिक एव सूफी साधना के प्र ाव को ग्र ण करते हुए प्राचीन बाउलो का (अठारहवीं उन्नीसवीं शती के बाउलो का) खूब परिचय प्राप्त नहीं है। ये गोपनीयता का अवलम्बन करते रहे । केवल पदो की भणिता ा ही आधार रहा है। जनश्रुति भी सहायक होती है। प्राय मध्यकालीन साधको क लिए ी यह बात स य है। असित कमार ने प्रमुख बाउलो मे जो प्राचीन काल के थे दो का ाम लिया है और उनकी चर्चा ी की है। प्रथम हैं लालन शा फकीर (ा म स ा् १७७५) दूसरे हैं पाजशाह (जिनके ज म आदि का विवरण नहीं दिया गया ।) बस इतना ी कहा गया है कि लालन के तिरोधान के बाद पा ाशा अत्य त प्रसिद्ध ए थे। इन बाउलो का सक्षिप्त परिचय द्वितीय खण्ड मे दिया गया है।

भूदेव चौधरी के बगला साहित्येर सक्षिप्त इतिहास मे बाउलो के का ा क्रमिक विवेचन से ज्यादा उनकी लोकगीता मकता हिन्दू एव मुसलमान सस्कृति का सम्मिश्र ा और बाउलो के गानो मे उसका सवहन उनके मुर्शीदी एव मारिफती गानो की चर्चा है। बाउलो की साधना और रवीन्द्रनाथ की दृष्टि का बाउल साहित्य की ओर आकृष्ट होना इनकी चर्चा का मुख्य बिन्दु है। बगाल का यह सस्कार किसी भी विषय के विश्लेषण मे प्राय बाधक होता है कि वे लोग रवीन्द्रनाथ को ही केन्द्र बिन्दु बनाकर किसी साहित्यिक धारा की चर्चा करते और विश्लेषण की पूरी धारा रवीन्द्रनाथ तक आकर रुक जाती

है। भूदेव चौधरी के काल क्रमिक विवेचन को यहा प्रस्तुत करना आवश्यक है। बाउलो की साधना गुरु परम्परा सिद्ध है। फलत गुरु प्रवर्त्तना के अनुसार ये विभि न गोष्ठी और सम्प्रदाय मे विभक्त हैं। पूर्वोक्त गगन हरकरा कष्टिया के लालन फकीर की शिष्य परम्परा के अ तर्गत थे। स्पष्ट देखते हैं कि बाउलों मे जाति भेद नहीं था मन के मानुष की साधना मे ये सभी मनुष्य की प्रीति और उपदेश हृदय बद्ध करते हैं। (पृ १२३)

वे आगे कहते हैं कि बाउल साहि य का प्रथम अकरोद्गम लगभग सोलहवीं शताब्दी के अत मे अथव स रहवीं ।त ब्दी के ु रू मे हुआ था। उसका विकास एव परिणति अठारहवीं शताब्दी एव उसके बाद घटा था। अनेक बाउल महाप्रभु (चैतन्य) की आदि गुरु रूप में व दना करते हैं। इससे ही ज न प त है कि ८के न्त शिथि भाव मे होने पर भी चैतन्य की प्रेमानु वित के इतिहास ने ब लों के मने र नुष की स धित्स को आमूल आलोडित किया था। (पृ १२३)

जगमोहिनी सम्प्रदाय की चर्चा करते हुए उ होने जगमोहन को आदि प्रवर्त्तक माना है किन्तु समय का सकेत नहीं है। उन्होने उद्घोषित किया है बाउलों के विभि न सम्प्रदायो के बीच जगमोहन प्राचीन धारा के एक प्रवर्त्तक थे उनके बाद के लोग जगमोहनी नाम से विख्यात हुए। एकतारा बजाकर बाउल गान करने का प्रचलन किया था गुरू आउल चाद ने। अ । हवीं तीब्दी के ु रू में पूर्व । ब्दी की ा्प्ति सी मे ये आभिर्भूत हुए थे। आउल चाद के समय से गुरु-प म्पर ब्ध ब ल स ध का इतिह क । स्पष्ट और प्राजल होता आया है। (पृ १२३)

मु नों में ल स ध क सू को वे निम्नवत् दे ते हैं मुसलमानो के लोक समाज में बाउलों के अनुरूप सहज साधना के पथ को ही मुर्शीदी या मारिफती धारा नाम से अभिहित किया जाता है। बाउल साधना आनुष्ठानिक शास्त्र धर्म निरपेक्ष है। मुर्शीदी मारिफती साधना मे भी शास्त्राचार वर्जित हुआ है। ानुभव प्रधान स्वाधीन सहज इस्लामी सूफी भजन पद्धति के द्वारा मुर्शीदी मारिफती प्रभावित थे। बाउलो की तरह इनकी भी सपूर्ण साधना का वाहक था गुरु या मुर्शीद। मारिफत शब्द का अर्थ पथ है। गुरु गम्य साधना पथ को ही मुर्शीदी मारिफती गान मे व्यजित किया गया है। (पृ १२३)

बागलार बाउल काव्य ओ दर्शन मे प्रोफेसर सोमे द्रनाथ व द्योपाध्याय ने बाउल साधना और बाउल गान का इतिहास विषय पर चर्चा की है। इस प्रसग में इतिहास क्या है की चर्चा करते हुए कहा है कि इतिहास वस्तु ही कर्म सापेक्ष है। कर्म के धारानुसरण मे इसकी सृष्टि होती है और इसका ज म कर्म आधारित है कि तु जहा कर्म की धारा अनुपस्थित है वहा इतिहास की सृष्टि कैसे सम्भव है ? इतिहास तो निराश्रय नहीं होता कर्माश्रित कर्म निर्भर और रूप सापेक्ष होता है। (पृ १२९) बाउलो के इतिहास को वे सोने के पारखी पत्थर की तरह मानते हैं। साथ ही वे मानते हैं कि बाउल कर्म

सापेक्ष नहीं हैं। उन्हे सहजिया मानते हैं। अत उनके कर्म सहज कर्म हैं। इसी प्रसग मे उन्होंने वैष्णव सम्प्रदाय क्त सम्प्रदाय ८ । सम्प्र ों मे इतिह स होने की स्वीकार की है। वे मानते हैं कि वैष्णव या तान्त्रिक साधको की तरह बाउल सहज साधकों की कोई सुनिर्दिष्ट कर्म प्रणाली या चर्चानीति नहीं है। उनका काम हल्के मन की खुशी के खयाल का प्रवाहित काम है। वह परिकल्पना विहीन है। इसीलिए म्प्र य की तरह इसकी कर्म साध के इतिवृत्त की और अवकाश नहीं है। यही नहीं उन्होंने बाउल सम्प्रदाय को अन्य सम्प्रदायों से सम्पूर्ण स्वतत्र माना है। इसीलिए वे बाउलों के इतिहास को असभव मानते हैं। फिर भी इस गायक दल के लिए बाउल नाम कब से आरोपित हुआ और कब से गौण रूप मे सम्प्रदाय की रचना हुई इसकी चर्चा करते हुए न्होने ो हवीं श ब्दी के चै न्य चरि मृ भृति ाहित्य के चर्चा प्रसग से खुद जोडा है। लिखित साहित्य न होने के कारण बाउलों के आविर्भाव काल के निर्धारण को प्रो सोमेन्द्र वन्द्योपाध्याय असभव मानते हैं। इतिहास न होने की सारी सम्भावनाओ को प्रोफेसर सोमेन्द्र नाथ वन्द्योपाध्याय ने प्रस्तुत किया। यही नहीं यह भी कह है कि बहुत से लो। बा ल स ध । सा क भ देखते हैं किन्तु ऐसा नहीं है। फिर भी उन्होंने बौद्ध तत्र की चर्चा के समानान्तर बाउल साधना की चर्चा की है। सूफी साधना की भी चर्चा की है किन्तु कोई ऐतिह सिक परि नहीं मिलता है। बाउल काव्य दर्शन साधना आदि के विश्लेषण के स दर्भ मे प्रोफेसर सोमे द्रनाथ व द्योपाध्याय का आग्रह हमेशा इस बात में हा है कि वे ो की को सूक्ष्म प्रदान कर सकें और उनके कर्म निरपेक्षवाद को आगे बढा सके। अत उन्होंने बाउलों को इतिहास मे न बधने दिया। सत्य ो यह है कि दि कोई है ो उसकी ाजिक मान्यता है औ सम ज की चीज क ह परम्प क नि ा। करती है। अत उसका इतिहास होता है। बाउल गान तो मन की मानुष की चिता या खोज कितना भी करे वे लोक समर्पित हैं। सामाजिक रूढियों ध र्मिक रूढियों के वि से म्बधि अनेक गानो मे यह लोकार्पण देखा जा सकता है। इसकी चर्चा आगे की जाएगी।

उपे द्रनाथ भटटाचार्य ने 'बगलार बाउल ओ बाउल गान ग्रथ मे अपने विशेष अध्ययन को प्रस्तुत किया है। वे बाउल धर्म एव साधना के विकास को विभि न भारतीय एव विदेशी सम्प्रदायों के विकास क्रम मे देखते हैं। वे बाउल धर्म को समन्वय मूलक धर्म मानते हैं। बाउल धर्म एक सम वय मूलक धर्म है। उसकी मूल साधना पद्धति तान्त्रिक बौद्ध धर्म के ऊपर प्रतिष्ठित है। उसके ऊपर शिव शक्तिवाद राधाकृष्ण वाद वैष्णव सहजिया त व सूफी दर्शन और त व गौडीय वैष्णव धर्म तत्व आदि का प्रभाव पडा है एव इसके साथ कितने ही निजस्व वैशिष्टय के सम वय में यह एक विशेष धर्म रूप मे गठित हुआ है (पृ १२६) अत बाउल धर्म क इतिह स इ तमाम सम्प्रदायों क विक स की परि ाति है।

इस सम्प्रदाय की विकास धारा को निर्देशित करने के लिए उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य के वक्तव्य को आधार बनाना ही समीचीन होगा। बौद्ध सहजिया धर्म ही अन्य प्रभावो के साथ बाउल धर्म की सृष्टि का उपादान है। वस्तुत पाल वश में ही बगाल मे बौद्ध धर्म विशेष रूप मे व्याप्त हो गया था। वि ो क के वीं से द वीं ।त ब्दी के बीच बौद्धधर्म एक विशिष्ट क्रिया मूलक तान्त्रिक धर्म के रूप में परिग्रह करके जन साधारण के बीच विस्तृत हुआ। हिन्दू शैव आगम एव प्राचीन तत्र का शिव शक्तिवाद एव हठयोग पद्धति के साथ बौद्ध धर्म का प्रज्ञा उपायवाद मिलकर वज्रयान एव अन्त मे सहजयान के रूप मे पूर्णत रचित हुआ। इस धर्म मे भोग मोक्ष के समन्वय रहने से साधारण लोगो ने विशेष रूप मे इसे ग्रहण किया। बगाल में अपेक्षाकृत निम्न स्तर के लोगों मे ही यह बौद्ध सहज धर्म अधिक मात्रा मे विस्तृत हुआ था।

उसके बाद द्वादश शताब्दी के प्रथम भाग से प्राय तेरहवीं शताब्दी के मध्य भाग तक सेन वश ने बगाल में राज्य किया। सेन वशी वैष्णव थे। राधा कृष्ण लीला की कथा इनके पूर्व बगाल से बाहर प्रचारित थी किन्तु सेन वश के शासन काल मे यह विशेष रूप से बगाल में प्रचारित हुई। इसकी उल्लेख योग्य अभिव्यक्ति जयदेव के गीतगोविन्द मे एव इसी युग की अनेक राधा कृष्ण विषयक कविताओं में हुई। हिन्दुओ का शिव शक्तिवाद पाल युग मे बौद्धों के प्रज्ञा पव द के ।थ एक प्रक। से मिल । । था। अब सेन युग में प्रज्ञा उपाय के स्थान पर प्रकृति पुरुष रूप में राधाकृष्ण प्रतिष्ठित हुए। पहले से ही प्रकृति मिलन एव योग साधना धर्म की क्रिया पद्धति की अगीभूत थी। वैष्णव शासन काल में वही मूल क्रिया रक्षित हुई थी। इस प्रकार बौद्ध एव वैष्णवों के बीच एक समन्वय साधित हुआ ए बुद्ध हिन्दुओं के अ तार में परि ।त हुए। इसी समय में ही वैष्णव सहजिया धर्म का उद्भव हुआ। नेक ।र लो स्वाभाविक रूप में ही बौद्ध सहजिया से वैष्णव सहजिया में रूपान्तरित हुए। कारण दोनो सम्प्रदायो के बीच मूल साधना क्रिया मे विशेष पार्थक्य नहीं था। श्रीकृष्ण कीर्तन की योग क्रिया वर्णनात्मक पद इस अनुमान का समर्थन करता है। यही वैष्णव सहज साधना चैतन्यदेव के आविर्भाव के बाद नूतन शक्ति और वैशिष्टय लेकर आविर्भूत हुआ था किंतु इसका बीज पूर्व ही अकरित एव अनेक वर्धित हुआ था।

इसके बाद त्रयोदश शताब्दी के मध्य भाग से बगाल मे मुसलमान राजत्व प्रतिष्ठित हुआ। नाना कारणों से राजधर्म ने चि क तक सम क ऊपर प्राधान्य विस्तार किया। पाल युग का राजधर्म बौद्धधर्म एव सेन युग का राजधर्म वैष्णव धर्म दोनों ने जन साधारण के ऊपर प्रभाव विस्तार किया था एव नाना रूप मे दोनो धर्म का एक समन्वय साधन किया गया किन्तु भारत के बाह क इस धर्म के साथ कोई सम य या आपोष तब असभव हुआ। म्पू । रक्ष शील ।क हिन्दुओ के दल ने समाज के एक वृहत् पिछडे

एव तथाकथित निम्न श्रेणी के लिए अ   र ीय ८व   माजिक सी   क   हर र । था। इस श्रेणी के अधिकाश ही सहजिया धर्मावलम्बी थे। वे नाना सामाजिक सुख सुविधा की विवेचना करके एव उच्चश्रेणी की घृणा एव निर्यातना के हाथ से रक्षा पाने के लिए मुसलमान धर्म मे दीक्षित होकर मुसलमान हो गये। इनमे से अधिकाश शरीयत निर्दिष्ट धर्म ग्रहण करके खाटी मुसलमान हो गये। दूसरा अश नाम से मुसलमान होकर आ मरक्षा करने पर भी धर्म साधना विषय में। पूर्व के सहज धर्म का पालन करने लगा। यही बगाल के फकीर सम्प्रदाय का आदि रूप है।

भारत मे मुसलमान शासन के आरम्भ होते ही सूफी नामक एक धर्म सम्प्रदाय भारत मे आना आरम्भ हुआ। सूफियो का मतवाद आनुष्ठानिक इस्लाम से पृथक था। ये मरमिया पथी थे इनका धर्म आ मोपलब्धि मूलक था अनेक रूप मे वेदात के अनुरूप था। मनुष्य के हृदय स्थित आ मा को प्रेम के पथ से उपलब्ध करके अपनी दिव्य सत्ता या परिपूर्ण सत्ता की अनुभूति ही इनकी धर्म साधना का लक्ष्य था। गुरुवाद इस्लाम के आदिष्ट आचार अनुष्ठान का त्याग अन्यान्य धर्म सम्प्रदाय के प्रति उदार दृष्टिभगी आदि इनका वैशिष्टय था।

तेरहवीं शती के अन्तिम भाग से ही इ होने बगाल मे आना आरम्भ किया एव सतरहवीं शताब्दी तक इनकी गति अव्याहत थी। ये मनुष्य मनुष्य मे जाति जाति मे धर्म धर्म में कोई प्रभेद नहीं मानते। सभी जगह उदार सार्वजनीन धर्म का प्रचार किया। इ होंने हि दू और मुसलमान दोनो श्रेणी मे ही श्रद्धा ज्ञापित की।

इनके आने पर सहजिया मत के मुसलमानो को एक बडा आश्रय मिला। सूफियों के धर्म त व के साथ इनके धर्म त व का अनेक विषयो मे मेल था। मनुष्य की देह में परम त व का वास धर्म के अनुष्ठान का त्याग साधना की अन्तर्मुखीनता आदि मे सादृश्य वर्तमान है। मुस   हजियो ने इसी सादृ य के अन्त   में आ मगोपन करके कितने मुसलमान स   के ह   हक किसी प्रक   अस्तित्व बनाये रखा। उनके ऊपर अनेक सूफी प्रभाव पडे एव उसी प्रभाव के कारण उनके स्थान पर अभिषिक्त परवर्ती मुसलमान बाउलो द्वारा रचित गान मे भी सूफी धर्म के अनेक पारिभाषिक शब्द व्यवहृत होते देखे जाते हैं।

चैतन्य देव के आवि ि क   हले के सहजिया वै व सम्प्रदा ने जो मुस म   नहीं हुए किसी प्रकार अपनी सत्ता को बनाए रखा। वे ये प्रक र से ८   यी क्ति से अ विर्भू हुए। वैष्णव गोस्वामियो का चैतन्य तत्व चैतन्य चरितामृत आदि ग्रथ के प्रचार मे एक आदर्श प्रेम की आबोहवा सृष्टि मे सहजिया वैष्णवो ने एक नूतन अनुप्रेरणा प्राप्त की। इसी समय नाना पद आगम कडचा (हस्तपोथी) प्रभृति विविध ग्र थो में उनका धर्म त व एव दार्शनिक तत्व प्रकाशित हुआ। पहले ज्ञान मूलक एव योग क्रिया मूलक धर्म में

अधिक मात्रा मे प्रेम अवतारणा की गयी। वैष्णव सहजिया धर्म एक निर्दिष्ट भित्ति के ऊपर प्रतिष्ठित हुआ।

चैतन्य परवर्ती युग मे मुसलमान सहजिया फकीर सम्प्रदाय जिसने सूफी धर्म का वाह्य वेश धारण किया था वे भी वैष्ण हजियो क मत द्वा । वि । रूप में प्रभावित हुए थे।

चैतन्यदेव की मृ यु के बाद गोस्वामियो के गौडीय वैष्णव धर्ममत के प्रचार एव कृष्णदास कविराज के चैतन्य चरितामृत के प्रकाश के बाद अनुमानत १६२५ ई तक हम बाउल नामक धर्म सम्प्रदाय की कल्पना कर सकते हैं जिनके धर्म का त व और दर्शन राधा कृष्ण का या प्रकृति पुरुष का युगल तत्व उपनिषद एव सूफी धर्म के परमा मावाद एव व्यक्तिगत भगवान का मिश्रण था अश प्रधानत बौद्ध सहजिया मत का या रूपान्तरित वैष्णव सहजिया मत का था।

जब एक नए धर्म मत का अविर्भाव होता है तब उसका कछ अपना वैशिष्टय होता है। बाउल धर्म भी इसी प्रकार का कछ निजस्व वैशिष्टय लेकर उद्भूत हुआ था एव गुरु परम्परा से वही चला आ रहा था। बगाल में इस धर्म समाज मे नितान्त साधारण लोग गृहीत हुए थे एव इन धर्मावलम्बियो का आचार व्यवहार या धर्म निर्देशित वेशभूषा साधारण लोगो की आख मे अस्वाभाविक लगने से वे सर्वदा आ मगोपन करके साधारण समाज से पृथक होकर अपनी सीमा में ही आबद्ध रहते थे।

बाउलो ने अ ने तत्व या द्धति का वि र । आदि का ो से लिपि द्ध हीं किया। सबकछ को उ होने अपने गानों मे ही प्रकाशित किया है। गान ही उनके भाव कल्पना साधना सकेत आदि के प्रकाश का माध्यम हैं।

बौद्ध सहजिया भी अपने धर्ममत एव साधना पद्धति को नाना सकेत एव इगित व्यजना की सहायता से गान के द्वारा ही प्रकट किए हैं। 'चर्यापद उसके ही निदर्शन हैं। ये गाने राग रागिनी के सहयोग से गाये जाने के लिए ही रचे गये थे इसका भी उल्लेख इन गानों में ही है। चर्यापद के सम्पादक महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने कहा है से सब (गान समस्त) कीर्तन के ही पद हैं। उस समय भी सकीर्तन था एव सकीर्तन गानो को पद ही कहा जाता है। फिर भी इस समय कीर्तन पद को मात्र पद बोला जाता है तब चर्यापद कहा जाता था।

(उद्‌धृत वही पृ १३)

सूफीमत के फकीर गण भी निभृत रूप में एकत्र मिलकर उनके धर्म त व और साधना के अभिज्ञता मूलक गान गाते और नृत्य करते। इसी को सामा कहते हैं। चैतन्यदेव के आविर्भाव के बाद नाम कीर्तन वैष्णव पदावली कीर्तन आदि मे बगला एक सगीत की आबोहवा मे निमज्जित हुआ था। इ हीं सब कारणो से धर्म के सम्ब ध मे कोई भाव व्यक्त

करने तक सगीत ही उनका उपयुक्त माध्यम है इस प्रकार की धारणा ने जन समाज के बीच विस्तार लाभ किया। बाउल सम्प्रदाय के लोगो ने भी गान को अपने आ म प्रकाश के एक मात्र माध्यम के रूप मे ग्रहण किया। मुसलमान फकीर एव हिंदू बाउल नाना कारणो से ग्राम्य क्षेत्र से दूर आवास बनाकर निर्दिष्ट अखाडे मे एकत्र होकर अपने धर्म (नि ू स धना के केत मू क । कर अपने मनोभाव को व्यक्त करते थे। गान ही था उनके अन्तरग जीवन का अगस्वरूप गान ही उनका आ म प्रकाश था।

इसी समय को हम बाउल गान का उ पत्तिकाल मान सकते हैं। यह अनुमानत १६५ ई था। सतरहवीं शताब्दी के मध्यभाग से आरम्भ करके उ नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भा। क इ की सृष्टि (व्य प्ति क कर ह ह क कते हैं। लगता है बीसवीं शताब्दी के प्रथम पाद पर्यन्त भी इसकी धारा चली आ रही है। ऐसा होने पर अनुमानत १६५ ई से १९२५ ई तक अ ात् पौने तीन ो र्ष इ की त्पत्ति विस्तृति एव परिणति की अन्तिम अवस्था मान सकते हैं। ों मे प्र ची क कोई निर्दे हीं । हो सकता है पहले कछ कछ रहा हो किन्तु मुख से मुख मे चलते रहने के कारण वह समाप्त हुआ हो और भाषा ने युगोपयोगी वेश धारण किया हो। इनमें से जिन गानों को हम प्राचीनतम मानते हैं उनका रचनाकाल अष्टादश शताब्दी के पहले भी नहीं है।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम पाद मे ही बाउल गान का अत ज्ञात होता है। इसके बाद यह धर्म सम्प्रदाय सकुि होक विलुप्ति के थ अग्रसर हुआ। क्या मुसलमान क्या हि दू श्रेणी मे कदाचित् ही कोई इस नूतन धर्म में दीक्षित होता। बीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग से री दि ो के से फकीर म्प्र विलुप्ति के च । आ रहा है। फिर भी पहले जिसने इस पथ का अवलम्बन किया था उनके विश्वास की दृढता मे धर्म क्रिया की फलोपलब्धि में इसी बात को चरम म क कसकर पक । इसके बाद इस सम्प्रदाय की विस्तृति की क पना का अतीत हुआ विलुप्ति ही स्वाभाविक एव स्वत सिद्ध लगती है। हि दुओ मे भी बाउलो की सख्या एकदम कम हो गयी और नये बाउलों की सृष्टि नहीं हुई। सामाजिक धार्मिक नैतिक अर्थनैतिक आदि नाना कारणो से यह अवलुप्ति के पथ पर गया। अब कोई नया अखाड़ा नहीं निर्मित हो रहा है। कवित्व शक्ति सम्प न त वज्ञानी गुरु स्थानीय बाउल भी विरल हो गये हैं। अत नये नये बाउल गान की रचना एक प्रकार से ब द हो गयी है।

(उपे द्रनाथ भटटाचार्य पृ १२ १३२)

ऐतिहासिक चर्चा के क्रम मे बगाल मे धार्मिक विकास के स दर्भ मे बाउल धर्म की उ पत्ति एव स्थान की भी वृहत् चर्चा उपे द्रनाथ भटटाचार्य ने की है। सक्षेप में उसकी ओर दृष्टिपात करना भी समीचीन जान पडता है। भारत अपने अनेक वैदेशिक आक्रमणो के फलस्वरूप प्रभावित हुआ किन्तु अपनी धर्म सस्कृति को अक्षुण्ण भी रखा। क्योकि मनुष्य

भौगोलिक गुलामी को स्वीकार भी कर लेता है किन्तु सास्कृतिक गुलामी नहीं स्वीकार कर पाता। अनेक आक्रमणो के फलस्वरूप भी भारतीय सस्कृति का विनाश नहीं हुआ किन्तु उसने विदेशी प्रभाव को पचाया तथा परिवर्तन एव विकास की युग सापेक्ष स्थिति भी दिखाई दी। समन्वय की अपार क्षमता ने भारतीय धर्म को बदलने का मौका भी दिया। विभि में एकता ो प्रतिपादित करते हुए धर्म में नवीनता का भी प्रक्षेप हुआ। भारतीय सस्कृति ने सबको एक देह में समाहित किया।

आक्रमणकारी भी कमोवेश भारतीय हि दू भ्यता एव सस्कृति द्वारा प्रभ वित हुए हैं। भारत के अधिवासी भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं रहे हैं। जैन एव बौद्ध धर्म का आविर्भाव हि दू धर्म के विरोधी रूप में हुआ था किन्तु अन्त में हि दू धर्म के निकट उनकी स्वेच्छा एव स्वत त्रता काफी विसर्जित हुई। यह हि दू धर्म की अच्छाई के लिए ही नहीं हुई वरन् सामन्ती व्यवस्था की चपेट भी मानी जा सकती है। विदेशी राजागण भी भारतीय धर्म में दीक्षित हुए थे। विदेशियों एव भारतीयों में हर क्षेत्र मे प्रभावगत सक्रमण हुआ। अपने धर्म के प्रति अध अनुराग रखने वाले मुसलमानो ने भी अपने को प्रभाव से मुक्त नहीं रखा। इस प्रकार समन्वय की क्रिया में मध्ययुग के साधक गण रामान द कबीर दादू, रामदास नानक चैतन्य आदि ने विशेष रूप मे सहायता की। अपने अभिनव भक्तिवाद मे इन्होंने जाति पाति भेद भाव आदि का परिहार किया। बगाल के स्वाधीन सुलतानो के अमल मे हि दू मुसलमानों के मिलन का पथ काफी प्रशस्त हुआ। होसेन शाह ने ही बगाल में सर्वप्रथम हि दू मुसलमान धर्म क मि मक सत्य पी की पूजा प्रचलित की। इनके ही राज व काल में मालाधर वसु ने भागवत का अनुवाद एव विजय गुप्त ने मनसामगल की रचना की। इ होने चैतन्य देव को भी विशेष श्रद्धा अर्पित की थी।

हि दू मुसलमान सस्कृति के सम वय की प्रचेष्टा सूफियो के आगमन द्वारा दृढ हुई। सम्राट अकबर भी सूफी मतवाद द्वारा विशेष प्रभावित हुए थे। सभी धर्मों के प्रभाव में आने के बाद उन्होंने सभी धर्मों के एक ही गन्तव्य का निर्णय लिया। अकबर ने सारे धर्मों के सार रूप में दीन इलाही धर्म की स्थापना की।

सम्राट अकबर के बाद सम्राट शाहजहा के ज्येष्ठ पुत्र द्वारा शिकोह ने हि दू एव मुसलमान धर्म के समन्वय की प्रबल प्रचेष्टा की। सच पूछा जाए तो यही सर्वश्रेष्ठ एव अन्तिम चेष्टा थी। इसी चेष्टा मे दारा को अपने प्राण की आहुति देनी पड़ी। अपनी विचार शक्ति के प्रयोग द्वारा करान एव हदीस मे उ होंने नूतन सत्य का दर्शन किया एव निर्भीक भाव से स्वाधीन विचारों को प्रकट किया। सूफी शास्त्र के अध्ययन से वे इस सिद्धा त पर पहुचे थे कि सत्य किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय की अपनी चीज नहीं है सब समय सभी धर्म मे ही सत्य निहित है। काशी के पण्डितो की सहायता से दारा ने श्री अकबर नाम से उपनिषद का अनुवाद किया था। वे एकेश्वरवाद के सम्ब ध मे करान एव उपनिषद

मे कोई अतर नहीं देखते। इस प्रकार मुगल युग में अकबर एव दारा के द्वारा धर्म और सस्कृति के सम न्वय की प्रचेष्टा की गयी जो हिंदू एव मुसलमान बाउलो की एकनिष्ठता का नियामक बना।

इस प्रकार भारत मे धर्म एव सस्कृति विभि न परिवेश के परिवर्तन में विभि न प्रभाव के वशीभूत होकर एव जीवन के अनुकल होने की आवश्यकता वश विचित्र समन्वय के पथ र अ सर हु ८ ६ व स्थ से ना समय के प्रभ को स्वीक र करके यु ो यो ी रूप धारण किया।

भारत मे धर्म का यही वैशिष्टय बगला धर्म के इतिहास में भी हम देखते हैं। यह सम वय नीति बगाल मे विशेष रूप मे अनुसृत हुई है। जिस बाउल धर्म की उ पत्ति की आलोचना मे हम प्रवृत्त हुए हैं वह धर्म आर्येतर धर्म एव आर्य हिंदू धर्म बौद्ध तत्र एव योग साधना हि दू त त्र एव योग साधना मुसलमान सूफी धर्म वैष्णव धर्म आदि के सम वय से साधित हुआ है एव वह एक श्रेणी के साधकों के लिए एक नूतन निजस्व रूप एव वैशिष्टय लेकर परिस्पुट हुआ है।

इस प्रसग को आगे बढाते हुए उपे द्रनाथ भ च र्य ने धर्म के इतिहास की आ ो । वेद से आरम्भ की है। अपनी श्रुति परम्परा में वेद भगवान की वाणी और अनादि माने गये हैं। यद्यपि उपे द्रनाथ ने यह स्वीकार किया है कि वेद के समय आर्य लोग लिखना नहीं जानते थे। इसीलिए गुरु परम्परा मे मुखस्थ होते हैं। किन्तु यह बात ठीक नहीं है कि आर्य लिखना नहीं जानते थे। अपितु आज भी धार्मिक मन्त्रो को मुखस्थ करने की परम्परा विद्यमान है। भारत मे आस्तिक धर्म एव दर्शन नाम से जिसे समझा जाता है वैदिक साहित्य उसका उ पत्ति स्थल एव सकल आस्तिक धर्म एव दर्शन वैदिक साहित्य को प्रमाण रूप मे स्वीकार करते हैं। भारत वर्ष मे दर्शन आध्या म विद्या या मोक्ष शास्त्र माना गया है। भारतीय दर्शन को आस्तिक एव नास्तिक दो भागो मे विभाजित किया गया है। ो वेद की िक स्वीक क ते हैं वे आस्तिक एव जो नहीं करते वे नास्तिक नाम से अभिहित होते हैं। नास्तिक दर्शन एव धर्म प्रधानत दो हैं जैन एव बौद्ध। चार्वाक मतवाद को भी नास्तिक दर्शन कहा जाता है।

वेद के चार भाग हैं सहिता ब्राह्मण अरण्यक एव उपनिषद। ऋग्वेद एव अथर्ववेद दोनो मौलिक हैं। ये दोनो वेद कविता मे रचित हैं। कई कविताओ एव श्लोको को लेकर एक वृहत् कविता रची गयी। कविता या श्लोक एव उसके अश को म त्र कहा जाता है एव उसकी समष्टि को सूक्ति कहते हैं। ऋग्वेद एव अथर्ववेद कई सूक्तियो के समष्टि मात्र हैं। इसीलिए इन दो वेदो को सहिता (अर्थात समष्टि) कहा जाता है।

'ब्राह्मण नामक वैदिक साहित्य के साथ आर्यों की दृष्टि यज्ञ कर्म एव उसके वैशिष्टय

को ओर आकृष्ट हुई थी। विभि न सहिता के साथ विभि न ब्राह्मण सश्लिष्ट हैं। ऋग्वेद सहिता के साथ ऐतरेय एव कौशीतकी ब्राह्मण यजुर्वेद सहिता के साथ शतप ा ब्राह्मण एव तैत्तिरीय ब्राह्मण सामवेद के साथ ताण्डय म ाब्राह्मण या पचविंश ब्राह्मण एव तलवकार ब्राह्मण एव गोपथ ब्राह्मण अथर्ववेद के साथ जुडे हैं।

ब्राह्मण के अलावा वैदिक साहित्य का और एक विभाग है। उसे अरण्यक कहा जाता है। ऋषि जब वानप्रस्थ अवलम्बन करते तब बहुव्यय साध्य याग य ा करना उनके लिए सभव नहीं होने पर वे अनेक क पनाओ के द्वारा उ हीं क पनाओ का ध्यान करते। अश्वमेध यज्ञ न करके यदि पृथ्वी को अश्व मान लिया जाये ताराओ को अश्व की अस्थि माना जाये एव उसी प्रकार ध्यान किया जाये तो उससे अश्वमेध यज्ञ का फल पाया जाता है। विभि न ाह्म ों के स थ विभि अ यक सश्लि ष्ट हैं। आर्यगण यज्ञ के अनुष्ठानिक क्रिया कलाप का त्याग करके क्रमश सूक्ष्म ध्यान धारणा के पथ पर अग्रसर हुए थे।

वेद के चतुर्थ अश को उपनिषद कहा जाता है। उपनिषदो मे पारमार्थिक सत्य इस जगत् ए जीवन के ाथ स सत्य का सम्ब ध अर्थात् आ मा ब्रह्म जीवा मा परमा मा के स्वरूप सपर्क मे ऋषिगण अपने अपने मत व्यक्त किए हैं। उपनिषदो मे अन्यान्य दर्शन की तरह युक्ति बद्ध प्रणाली से कोई आलोचना नहीं है। कवियों की भाँति ऋषियों ने भी सत्य की आलोचना की है। अन्तर्दृष्टि सम्प न ये समस्त ऋषि या कवि किसी युक्ति तर्क में न क हृद की ब्धि द्वारा प्रत्यक्ष न्य से अभ्रान्त सत्य की उपलब्धि किए हैं। भि न मतावलम्बी भारतीय दार्शनिक भी पनि दो की ामाणिकता स्वीकार किए हैं एव अपने मतानुकल उपनिषदों की व्याख्या भी किए हैं। उपनिषदो मे ग्यारह प्राचीन एव प्रामाणिक माने जाते हैं। ईश केन कठ प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य ऐतरेय तैत्तिरीय वृहदारण्यक छा दोग्य एव श्वेताश्व। अनेक प्रमाणो से पता चलता है कि २५ से २ ई पू में वेदो की रचना हुई। यहा से लेकर पूरा वैदिक साहित्य ई पू १५ एव ५ ई शती तक रचा गया।

ऋग्वेद तक बगाल अन्तर्भुक्त नहीं हुआ था। वैदिक धर्म भागलपुर तक ही याप्त था। उसके पूर्व आर्य भूमि के प्रान्तवर्ती अचल के आदिवासी वैदिक धर्म और सस्कृति के बाहर थे। बाद मे पुण्ड्रजाति के साथ बगाल तक आर्यों के विस्तार की बात मानी जाती है। यही पु ड्र ाति ही के इतिह स मे स से प्राची उल्लेखित है। ऐतरेय अरण्यक मे बग का उल्लेख मिलता है। वे लोग अनार्य भाषा भाषी थे। बोधायन धर्म सूत्र मे पुण्ड्र एव बग के अधि सियो का ले ा है जो वैदिक सस्कृति के बाहर एव अनाचारणीय माने गये हैं। जैनो के सबसे प्राचीन शास्त्र ग्रथ आयरग सूत्त (आचार सूत्र अनुमानत ई छठी शती) में बाढ वासियों का उल्लेख मिलता है। उस समय भी बाढवासी वैदिक सभ्यता से बाहर थे। ईशा पूर्व ५ वीं शती से तृतीय ई तक के समय । एव महाभारत मे ब । वासियो

को असभ्य अनार्य या आर्य समाज मे अपाक्तेय नहीं माना गया है। पाणिनि के यहा (५वीं शती ई पू) गौडपुर का उल्लेख है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भी गौड देश मे उ प न क्षौम वस्त्र का उल्लेख है।

इन विश्लेषणो के साथ उपे द्रनाथ भट टाचार्य मानते हैं कि ई पू पाचवीं शती से बगलादेश आर्य सस्कृति के साथ किसी न किसी रूप मे युक्त होकर सर्व ।रतीय परिचय के पथ पर अग्रसर हुआ। (पृ १५१) ई सन के बाद चौथी शताब्दी से गुप्त सम्राटो के शासन के अधीन आने पर पर बगाल ने एक नये रूप मे आ म प्रकाश किया। इस समय बगाल ने अ र्य सभ्यता ्व सस्कृति क स्प । पाय ्व इ समय से ही ।ल दे । क र। नैतिक शासन तान्त्रिक सामाजिक एव धर्म सम्ब धी प्राचीन इतिहास का सूत्रपात हुआ।

उस आर्य प्रभाव के बाद भी बगाल का धर्म अवैदिक एव आर्येतर था। उपे द्रनाथ मानते हैं कि बगला धर्म का वैशिष्ट्य यही है कि वह धर्म आर्य एव वैदिक धर्म द्वारा प्रभावित होने पर भी आर्येतर एव अवैदिक अश के प्रवेश के कारण विशिष्ट हुआ। वस्तुत बगाली जाति नाना जाति के समन्वय से उद्भूत एक सकर जाति है। निग्रोटों आदि आस्ट्रेलीय एव आलपाइन जाति के सम वय से मुख्यत गठित है। जिसमे अन्य जाति की रक्त धारा भी मिली हुई है।

ली ति के विक ् । की वि ष । में के अनार्यत्व की खोज की गयी। प्राचीन धर्म के साथ ही बगाल का धर्म भी विकसित हुआ। उपे द्र नाथ ने इस बात को स्वीकार किया कि पृथ्वी के प्राय सभी प्राचीन धर्मों से ही यौन प्रसग का निकट सम्ब ध था एव आदि मातृ देवी एव आदि पितृदेव क ्व के ति त्नीत्व की कल्पना पायी जाती है। आदि देव या भगवान की यही प नी सम्मिलित अवस्था की बात जन साधारण के मन मे प्रथम उदित हुई थी। सि धु सभ्यता की स्त्री पुरुष देवता की पूजा एव लिग पूजा ने खूब सम्भव है परवर्ती काल में वैदिक आर्य मानस की ध्यान धारणा के साथ युक्त होकर प्राय सकल भारतीय धर्म शाखा के ऊपर प्रभाव विस्तार किया हो। बाद के शिव शक्तिवाद या पुरुष प्रकृतिवाद की धर्म साधना मे स्त्री के प्रयोजन एव स्त्री पुरुष के मिलन के बीज निहित हैं। अ दे है कि कैसे आर्येतर जाति का यह धर्म विश्वास वैदिक आर्यों को प्रभावित कर सका। साथ साथ हने के क र आ ों र आर्योतर प्रभ पडा। मत्र मे विश्वास वशीकरण भूत प्रेत अपदेवता की दृष्टि निवारण अलौकिक क्रिया द्व स के ऊ ।व विस्त की चेष्ट अ दि मिक र्म वि व स का अग है। ऋग्वेद मे भी दस्युगण कृत गृहस्थो के निद्रा मत्र स्त्रियो के गर्भपात निवारण मत्र रोग निवारण मत्र सप नी विनाश एव पति वशीकरण मत्र आदि हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल मे इस प्रकार के अनेक मत्र हैं। इससे प्रतीत होता है कि प्रार्थना यज्ञ आदि के अलावा भी पुरोहित गण मत्र एव इ द्रजाल आदि के द्वारा देवताओ को वशीभूत करने की चेष्टा करते थे।

ो। ।ी।रा। ।।मे साग्र`णी `ामक एक इष्ट का विवरण है वह एक प्रकार से वशीकरण ।ि.।। । ।़ य ै। यह आ`मि आर्येतर जाति का प्रभाव जान पडता है। आगे यही प्रभाव ।ार्य ी।ग्न के अगीभूत हो गये। अथर्ववेद मे आर्येतर आदिम अधिवासियो का धर्म विश्वास तत्र ।त्र एव `ादू विद्या के प्रति आस्था आदि के साथ आर्य धर्म विश्वास का मिलन हुआ। आर्येतर जाति का आदि स्व ाि य़ु ल वि ।स या शि क्तिवाद आर्यधर्म एव सस्कृति के ऊपर विशेष प्रभावी हुआ। नाना प्रकार के धर्मों मे परिणत होकर यही चेतना भारतीय अध्या`म सस्कृति के क्षेत्र मे विराजमान हुई।

देवी के बिना देव का पूर्ण रूप प्रकट नहीं होता। देवी ही मूलत शक्ति का आधार है। नारी ही शक्ति है। यही नारी महाबल धारिणी नाना ऐश्वर्य प्रदर्शन कारिणी विश्व प्रसविनी है। देव इसी शक्ति से सम`वित होने पर प्रकृत देव पद वाच्य होते हैं। देवी के बिना देव मूल्य हीन है। शक्ति के बिना शिव शव है।

जिसे त्व या ई के हि से ८क कहा । । है उसमे ही दो सत्ता हैं दो खण्ड हैं एक देव सत्ता एव दूसरा देवी सत्ता जिससे एक पुरुष खण्ड एव दूसरा नारी खण्ड हुआ। इसी दो ों त्ता क मि न ही सका पू ि रू है। शक्ति के साथ युक्त होने प ही शिव यथ र्थ स्वरूप मे प्रतिष्ठित होता है। उसका यथार्थ स्वरूप प्रकटित होता है। इसी धारणा को शिव शक्तिवाद या पुरुष प्रकृतिवाद कहा जाता है। परवर्ती काल में शैव शाक्त वैष्णव वज्रयान बौद्धधर्म मे बगाल के बाउल धर्म आदि मे वह अनुसृत हुआ है एव नाना तत्र एव पुराणादि के ऊपर उसने गभीर प्रभाव विस्तार किया है। भारत में धर्म के इतिहास मे यही शिव शक्तिवाद या पुरुष प्रकृतिवाद या एक अद्वैत सत्य का अतर्ली द्वैतरू द्वै सत्त ने ८क विशिष्ट स्थ ्रह कि । है ८व अभिनय की दार्शनिक चिता एव अध्या`मिक उपलब्धि सहित युक्त होकर विशिष्ट धर्म की भित्ति का निर्माण किया है।

अब देखना उचित होगा कि पुरुष देवता एव शक्ति देवी के सम`वित होने की कल्पना का कैसे आधिपत्य किया गया। शिव की शक्ति या प`नी उमा पार्वती या दुर्गा विष्णु की लक्ष्मी राम की सीता कृष्ण की राधा य़ु ।ल रू के ये निद ि न तो भारत के कई सुप्रतिष्ठित धर्म मे पाया जाता है। हि`दुओ के सभी धर्म कर्म मे सर्वाग्र पूज्य गजानन महागणेश की शक्ति आलिगित मूर्ति का भी उल्लेख पाया जाता है। इसके अलावा पुराणों में नाना पुरुष देव । ो की ।क्ति प नी क`पित हुई है जैसे इ`द्र की शची च`द्र की रोहिणी वायु की स्वास्ति अग्नि की स्वाहा सूर्य की सज्ञा मदन की रति यम की क्षमा वृहस्पति की तारा इत्यादि। यह शिव शक्तिवाद भारतीय धर्म एव दार्शनिक चिता मे जन जीवन की मानसिकता को आबद्ध किए है। वेद मे पुरुष देवता का ही प्राधान्य अधिक है। देवगणों की माता अदिति देवी का वेद में एक सम्मानित स्थान है किन्तु इ`द्र वरुण अग्नि आदि

की तरह वे पूजित नहीं हैं। किन्तु आगे चल कर दशम मण्डल मे यह प्रतिष्ठा वाकदेवी के माध्यम से हुई है।

परवर्ती समय के अथर्ववेद मे आर्येतर प्रभाव अवश्य ही अधिक है तब आर्यगण ने आर्येतर जाति के धर्म विश्वास एव उनके अनेक देवताओ को ग्रहण किया है। अथर्ववेद के एक सूक्त को भी देवी सूक्त कहा जाता है सर्वभूताधिष्ठात्री देवी को इ द्र जननी ाम से अभिहित करके उनकी प्रार्थना की गयी है। लगता है यही मार्कण्डेय पुराण के अतर्गत देवी माहा म्य का प्राचीन रूप है।

उपनिषद युग में आर्यमन की दार्शनिक चिता अनेक सूक्ष्म ५व च स्ता ५ ५हु ाथी थी परमा मवाद या अ दृ भित्ति के ऊ र तिष्ठित हुआ है ऐसा अनुमान किया जा सकता है। अत उपनिषद मे जो चिता धारा देखी जाती है उसे आर्यमन की चि र । क स्वीकार किय जा सक है। इसके मूल मे अन्य प्रभाव होने पर भी यह नि स देह आर्यीकृति हुआ है इस प्रकार का अनुमान स्वाभाविक है। यह जो एक परम तत्व की द्विधा विभक्ति है ईश्वर की अन्तर्निहित युगल सत्ता है शक्तिमान एव शक्ति का अभेद व है जिसे हम परवर्ती युग में विभि न धर्म मे दृढ रूप मे प्रतिष्ठित देखते हैं उसका स्पष्ट उल्लेख एव निर्दिष्ट रूप हम वृहदारण्यक उपनिषद में पाते हैं।

आ मैवेदमग्र आसीत्

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत।

स हैतावनारा यथा स्त्री पुमासौ सम्परिष्ट औ स

हेममेवा मान द्वेधापातयत् तत पतिश्च प नी चाभवता।

(पहले वह आत्मा एकाकी थी वह कभी भी रमण नहीं कर पायी कारण कोई भी अकेले रमण नहीं पर पाता उसने दूसरे किसी की भी (स्त्री) कामना की। उसका आ मभाव स्त्री पुरुष का परस्पर गभीर आलिगित एक मिथुनीभूत भाव है। इस प्रकार भावाप न होकर उसने स्वय को दो भागों में विभक्त किया उसका एक भाव पुरुष एव एक भाग स्त्री पति एव प नी हुई।)

(हामहोपाध्य दु । । य वेद त कृत ाकर भाष्य सम्मत अनुवाद उद्धृत उपे द्रनाथ भटटाचार्य पृ १७२ ७३)

मनुष्य की अन्तर्निहित आ मा ही ब्रह्म है यही उपनिषद की वाणी है। यही आ मा या परमा मा या ईश्वर की जो एक अद्वय सत्ता है। वह एक मिथुनीभूत सत्ता है स्त्री पुरुष की एक मिलना मक सत्ता है। यह मिलना क नित्यान द य सत्ता ही सक स्वरू

है।

ऐसा होने र इसी प ा । ब्रह्म या ई वर में ती अवस्था या सत्ता निहित हैं एक भोक्ता रूप में पुरुष सत्ता दूसरी भो प रूप में स्त्री सत्ता एव एक दोनों की मिलन जात एकीभूत आनन्द मय सत्ता।

इसी आ मा या ब्रह्म का जो आनन्दमय स्वरूप है वह उपनिषद की अनेक उक्ति मे पाया जाता है

आन दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आन दाद्धेव खल्विमान भूतानि जायन्ते। आन देन जातानि जीवन्ति। आन द प्रयन्त्यभिसविश तीति।

(आन द ही ब्रह्म है। आन द से ही यह प्राणी समूह ज म ग्रहण करता है आन द द्वारा ही जीवन धारण करता है एव आन द में ही प्रतिगमन एव प्रवेश करता है।)

रसो वै स । रस ह्येवाय लब्ध्वान दी भवति। को ह्येवान्यात्
क प्राण्यात्। यदेष आकाश आन दो न स्यात्। एष ह्येवान दयति।

(वही रस स्वरूप है। जीव इसी रस स्वरूप को प्राप्त करके सुखी होता है। यदि आकाश में यह आनन्द स्वरूप नहीं रहता तो कौन अपनी चेष्टा करता या कौन प्राणों का कार्य करता ? अर्थात् कोई भी नि श्वास प्रश्वास लेकर प्राण धारण नहीं कर पाता।)

आ मा की पुरुष री रूप मे दो सत्ता है और इसी दो सत्ता । स की एक सम्मिलित परमान दमय सत्ता है ही पनिषदिक तत्व या क पना। विभि न रूप में वैशिष्टय लेकर शैव शाक्त वैष्णव बौद्ध तान्त्रिक एव बगाल के बाउलो की साधना मे रूपायित हुई है। लगता है स्त्री पुरुष की सम्मिलित धर्म साधना का बीज यही निहित है। उपनिषद की इसी त व क पना मे प्रधानत वज्रयान बौद्धयान एव बाउल साधना की मूल भित्ति प्रतिष्ठित हुई है। साधारण मनुष्य की कल्पना एव विचार बुद्धि में ईश्वर का अतर्निहित तत्वाश यही आदिमतम स्त्री पुरुषवाद ससार के नर नारी मे विस्तृत होकर एक समग्र मानवीय तत्वाश में रूपान्तरित हुआ है। ऐसा जान पडता है कि जिस त व मे भगवान के स्वरूप के सम्ब ध में कहा गया है वही तत्व ही पार्थिव नर नारी के सम्ब ध मे भी कल्पित हुआ है एव उनकी मिलित अद्वय सत्ता ही साधना के उद्देश्य रूप में परिगणित हुई है। उसकी परिणति में बौद्ध तान्त्रिकों का युगनद एवं बगाल के बाउलो का युगल मिलन मानव आत्मा की आन दमय सत्ता के स्वरूप उपलब्धि की नींव है।

वृहदारण्यक उपनिषद मे और कितने अश हैं जि हे बाउल धर्म के अनेक वैशिष्टय के मूल रूप में ग्रहण किया जाता है।

बाउल स्त्री शक्ति के प्रतीक रूप मे रज एव पुरुष शक्ति के प्रतीक रूप में बीज को ग्रहण

करते हैं। देह के अभ्यतन्तर मे एव देह के बाहर भी वे इ हीं दो वस्तुओ के मिलन की चेष्टा करते हैं। वे बीज को हृ बिह री मा रूप मे ग्रह । क ते हैं। यही उनका अटल मानुष है। बौद्ध तात्रिकों मे जो बोधि चित्त है बाउलो मे वही अटल मानुष है।

वृहदारण्यक उपनिषद मे देखे बीज अमृत या अविनाशी आ मा या ब्रह्म नाम से अभिहित हुआ है।

यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोहन्तरो य रेतो न वेद यस्तरेत शरीर यो रेतोहन्तरो यमयत्येष त आ मान्तर्याभ्यमृतोह दृष्टौ

(जो रेत मे अर्थात् उत्पादन शक्ति मे हैं अथच रेत के अन्तर मे रेत जिसको नहीं जानता रेत जिसका शरीर है वही तुम्हारा अन्तर्यामी अविनाशी आ मा है।) (महामहोपाध्याय दुर्गाचरण साख्य वेदान्त तीर्थ कृत शकर भाष्य सम्मत अनुवाद उद्धृत वही उपे द्र नाथ भटटाचार्य पृ १७५)

धर्म साधना मे जो प्रकृति सेवा की प्रथा हि दू एव बौद्ध तात्रिकों की एव अन्यान्य कई धर्म सम्प्रदाय मे प्रचलित है लगता है सक भी बीज ही वृह र यक निष मे वर्तमान है। म थ कर्म मैथु जो ५क प्रक र से स क अ ीभूत है इसका स्पष्ट उल्लेख दिखायी देता है।

एषा वै भूतानि इत्यादि

(पृथ्वी ही इसी स्थावर जगम भूत वर्ग का रस अर्थात् सारभूत कारण पृथ्वी ही इसकी देहोपादान पुन जल पृथ्वी का सार है कारण जल से ही पृथ्वी का ज म पुन जल का सार औषधि है तृण लता समूह पुष्प का सार है पुष्प समूह पुष्प का सार धान्य यवादि फलसमूह फल का सार पुरुष क्यो नहीं पुरुष की देह अ नमय है पुन पुरुष का सार शुक्र कारण यह पु के सर्वां से निसृत होकर ह है।) स ह प्रजापतिरीक्षा चक्रे हन्तास्मै प्रतिष्ठा क पयानीति स स्त्रिय ससृजे इत्यादि।

(अत यह सर्वभूत के सारभूत शुक्र के आधान पात्र निर्माण की प्रणाली कही गयी है। वही प्रजापति) (विधाता) ने क्त रेत की प्रतिष्ठ क म्ब ध में चित की है अच्छा इसकी/रेत की/प्रतिष्ठा या आधान पात्र का निर्माण करूगा उ होने स्त्री सृष्ट किया उसी स्त्री को सृष्ट करके नीचे रखकर उपासना (मिथुन व्यापार) किए। इसीलिए अब भी स्त्री को नीचे रखकर ही उपासना करना होता है। वह प्रजापति स्वय ही स्प दमान इसी पाषाण तुल्य पु चिन्ह/स्त्री चि ह में/पूरण किए थे उ होने उसी प्रकार ही स्त्री ससर्ग किया था। म दु सा कृत शकर भाष्य सम्मत अनुवाद वही पृष्ठ १ ५)

वृहदारण्यक के एक और श्रुति वचन मे है कि यज्ञक्रिया रूप धर्मानुष्ठान के द्वारा जो फल

लाभ होता है उसी प्रकार मैथुन क्रिया से भी यज्ञानुष्ठान की तरह फल लाभ होता है।

तस्मा वेदिरूपस्थो लोमानि इत्यादि।

(स्त्री उपास्थि को/जनेद्रिय को/वेदी माना जाएगा/लोमसमूह को कश नाम से/चर्म को एव दोनों नितम्ब को/दोनो ओर दो स्थूल मासखण्ड/दो अधिषवन/सोमरस निकालने के दो माषाण खण्ड/द/ रूप मे चिता करोगे/यजमान/याज्ञिक पुरुष/वाजपेय योग के द्व रा जिस परि ॥ मे ोक फ प्र प्त होता है उसी प्रकार विज्ञान सम्पन्न पुरुष मे भी फल लाभ होता है।/अतएव इस विषय मे घृणा या कत्सा नहीं करते। (वही म दु सा पृ १ ६)

छा दो य नि द में दे ज है कि वा देव्य सामोपास । ना क एक प्रकार की स । प्रचलित थी। इसमें मैथुन एव परदारा ग्रहण कर्तव्य कर्म था।

स य एवमेतद्वामदेव्य मिथुने प्रोत वेद मिथुनीभवति
मिथुनामिथुनात् प्रजायते। सर्वमायापुरेति ज्योग जीवति महान प्रजया
पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या। न काचन परिहरेत् तद् व्रतम्।

(जो कोई व्यक्ति मिथुन प्रतिष्ठ इस वामदेव्य साम को यथोक्त प्रकार से अवगत होता है वह विरहकातर नहीं होता प्रयेक मिथुन से ही सतान उपन करते हैं। सम्पूर्ण आयु प्राप्त करते हैं उज्जवल जीवन प्राप्त करते हैं सतान एव पशु द्वारा महान होते हैं एव कीर्ति से भी महान होते हैं कोई भी स्त्री का परित्याग नहीं करेगे यही उसका व्रत है। (म दु सा कृत शकर भाष्य सम्मत अनुवाद)

न काचन परिहरेत् इस वाक्याश का शकर भाष्य इस प्रकार है

न काचन काचिदपि स्त्रिय स्वा मत पप्राप्ता न परिहरेत् समागमार्थिनीम्।
वामदेव्यसामोपासनागत्वेन विधानात्।

(सगम के लिए अ नी ।य्या पर समा ।त किसी स्त्री का ही ।रिहार या पेक्षा न करना कारण यह वामदेवी के समोपासना का अगरूप वहन करती है। (म दु सा कृत शकर सम्मत अनुवाद वही पृ ११६)

छा दोग्य उपनिषद मे भी देखा जाता है कि मैथुन कर्म की यज्ञ कर्म के साथ तुलना की गयी है।

योषा बाव गौतमाग्निस्तस्या एव समिद्यदुपम त्रयेत स धूमो योनिरर्चिर्यदत तेहगारा अभिनदा विस्फलिगा।

स्त्री अग्नि उपस्थ समिध रतिसभाषण धूम योनि शिखा सगम अगार एव आनद

विस्फुलिग। (५ १)

ऐतरेय उपनिषद मे भी देखा जाता है कि रेत को आ मा नाम से अभिहित किया गया है।

पुरुषे या अयमादितो गर्भो भवति। यदेतद्रेतस्तदेतत्
सर्वेभ्योहगेभ्यस्तेज सम्भूता म येना मान विभाति ।

(यह आ मा पहले से ही पुरुष के शरीर मे बीज रूप मे रहती है। यह जो रेत है यह सपूर्ण अगो से सग्रहीत तेज होता है इसी रेत रूप आ मा को पुरुष अपने शरीर मे धारण करता है। (२ १) धर्म के थ यौ व्या र सम्ब घ क हम ्र ची आर्येतर जाति का प्रभाव निदर्शन मान भी ले तो उपनिषद युग मे इस प्रभाव ने आर्य धर्म सस्कृति के साथ मिलकर एक नूतन रूप धारण किया था--ऐसा मानना होगा।

उपे द्रनाथ भटटाचार्य ने सि धु सभ्यता से लेकर उपनिषद युग तक धर्म के इतिहास को निम्न रूप मे प्रस्तुत किया है।

(क) स्त्री देवत ८व पु । दे का सके र्तम है। सम्भवत इनका सम्ब घ स्वामी स्त्री की तरह है। सिधु सभ्यता के ध्वसावशेष मे बहुमातृका मूर्ति आर्य पूर्व एव ार्येतर जाति के मातृतत्र के प्राधा य सूचक देवी पूजा के सकेत को वहन कर सकते हैं। पुरुष मूर्ति पशुपति शिव लगती है। लगता है वे योगासन मे बैठे हैं। लगता है योग साधना का एक प्रधान अग रहा हो। वेद मे पुरुष देवता का प्राधान्य रहने पर भी सर्वशक्तिमयी स्त्री देवता का आसन प्रतिष्ठित हुआ है।

(ख) मत्र की अलौकिक शक्ति मे विश्वास किसी देव प्रक्रिया द्वारा इ छानुरूप फल लाभ मारण उ चाटन वशीकर । इ यादि जो क्रिया कलाप प वर्ती त त्र दि में देखते हैं उसका मूलरूप या बीज हम कई स्थान पर एव अथर्ववेद मे प्राय सर्वत्र ही देखते हैं। यह आदिम आर्येतर ाति का विश्वास था किन्तु इनके परवर्ती भारतीय ता त्रिक साधना के अग मे विशेष रूप में जड़ित हो गया है। ता त्रिक धर्म नाम से जो प्रचलित है उसके मूल मे नि स देह आदिम आर्येतर जाति का धर्म विश्वास एव सस्कार नि ित है।

(ग) वृहदारण्यक छा दोग्य आदि उपनिषदो मे ाभास मिलता कि स्त्री पु ष का यौन मिलन धर्म या साधना का एक अग था। परवर्ती काल मे त त्रो वी साध ा रा ि ग्रहण का बीज यही हो सकता है। वेद मे सुरापान एव पके मास के उ सर्ग ा । । सा दृष्टात है। ये सब पचमकार के आदि रूप भी हो सकते हैं।

(घ) समस्त सृष्टि की मूल प्रजनन शक्ति के विकास से सा ारण मन ने ोतू । ८ह्रय एव विस्मयाविष्ट होकर इसमे एक अलौकिक व का आविष्कार किया एव ्र ा ा ा ो

पक्षों के ऊपर देव व आरोप करके इ हे आदिम पिता माता या आदिम स्वामी स्त्री रूप मे रूपायित किया है। इस प्रकार पृथ्वी के प्राय समस्त प्राचीन जाति के धर्म इतिहास के आदिम स्तर पर प्राथमिक धर्म विश्वास यौन मिलन के ऊपर जडित हुआ है। यह क्रम परिवर्तन के सन्दर्भ मे पुरुष एव स्त्री जनेन्द्रिय की प्रतीक पूजा लिग योनि पूजा आदि भारतीय धर्म का अगीभूत हुआ। अब शैव एव शाक्त धर्म मे इसका स्वरूप पूर्णरूप मे विद्यमान है।

(च) यह प्रभाव आर्येतर आदिम आदिवासियो का या वहिरागत वैदिक धर्म एव सस्कृति से बाहर का कोई प्रभाव नहीं जान पडता। परवर्ती काल मे आर्य वैदिक धर्म एव सस्कृति एव आर्य नशीलत थ क पना का प्रलेप देक इसे शुद्ध क के ५व इसकी दृष्टि त स्थूलता का परिहार करके आर्य धर्म का अगीभूत कर लिया गया।

यह अनुमान भारत के सभी प्रदेशों के धर्म के लिए प्रयोज्य हे। आदिम वासियो के नाना धर्म विश्वास सस्कार रीति नीति मतवाद धर्म के विशिष्ट अनुष्ठान देव देवी के रूप एव कल्पना ने आर्य भारतीय रूप को ग्रहण किया है किन्तु इनमे आदिम या आर्येतर अश अनेक प्रभाव विस्तार करके विराजमान है।

(उपे द्रनाथ भटटाचार्य पृ १८१ १८३)

बगाल के धर्म के इतिहास में यह सगत अनुमान एक स य का रूप धारण कर चुका है। ब के ज ष्टि के प दा) को दे ने से पता च त है कि ली ाति मे प्रकृत आर्य रक्त अति सामान्य है। भारत के इसी प्रा तवर्ती स्थान पर वैदिक ब्राह्मण सस्कृति का प्रवाह जिसने ग्राम्य मिटटी का कटाव किया है उसने बगाली जीवन के ऊपर एक स्तर मात्र निर्माण किया है किन्तु भीतर प्रवेश करके मूलमृत्तिका मे कोई परिवर्तन न कर सका। यह धर्म एव सस्कृति समाज के एक श्रेणी विशेष मे आबद्ध हुआ है कि तु जनसाधारण उसी धर्म और सस्कृति को समग्र रूप मे ग्रहण नहीं करता। यहा भी जन साधारण अपने धर्म कर्म मे ऐसे कितने अनुष्ठान प्रथा एव सस्कार का पालन करता है या ऐसे कितने ही लौकिक देव देवियो की पूजा करता है जो आर्य ब्राह्मण धर्म सस्कृति के द्वारा अनुमोदित नहीं है किन्तु अ त मे जनसाधारण की दावी एव माग मे इनके साथ आपोषण करके इनके अनेको की एक एक सस्कृति ध्यान एव म त्रादि द्वारा आर्य धर्म सस्कृति ने इनका अनुमोदन एव आवाहन कर लिया है। इसी प्रकार शीतला मनसा षष्ठी चण्डी चडक गाछ (वृक्ष) श्मशान काली धर्म ठाकर पर्णशबरी जागुली पचान द ठाकर श्मशानेश्वर शिव आदि की पूजा एव अनुष्ठान बगाली धर्म कर्म मे अतर्भुक्त हुआ है।

अब आवश्यक है कि इसी पटभूमिका मे इतिहास की धारा का अनुसरण करके बगाल मे धर्म विवर्त्तन की गति एव प्रकृति को लक्ष्य किया जाये। आलोच्य विषय की दृष्टि से

उपेन्द्रनाथ भ ।र्य ने ब ।ाल के इतिह स को प व ि था यु । मे विभजित कि । है।

१ गुप्त पूर्व युग (ई पू ५ से ३ ई तक)

२ गुप्तयुग (३ ई से ५ तक)

३ पालयुग (७५ ई से ११५५ ई)

४ सेन युग (११५५ ई से १२६ ई १३ ई)

विभिन्न कालों मे उन्होने बगाल के धर्म एव सस्कृति की समीक्षा की है। उतने विस्तार मे जाने की आ कता हीं है अपितु न्होंने सक्षिप्त ।श दि है जिससे थोड़ी सू मिल सकती है। विभिन्न कालों में धर्म परिवर्तन को निम्नवत उन्होने रेखाकित किया है।

	मूर्ति	पूजा एव साधना
गुप्त युग	१ विविध पुराण रामायण महाभारत महाकाव्य आगम प्रभृति से देव देवी। २ हिन्दू तत्र से देव देवी।	१ सामान्य अश वैदिक एव २ अधिकाश ही हिन्दू तान्त्रिक।
पाल युग	१ पौराणिक देव देवी। २ हिन्दू तत्र के देव देवी। ३ बौद्ध तत्र के देव देवी।	१ सामान्य अश हिन्दू तान्त्रिक। २ अधिकाश ही बौद्ध तान्त्रिक।
सेन युग	१ पौराणिक देव देवी २ हिन्दू तन्त्र एव बौद्ध तत्र के रूपायित देव देवी।	बौद्ध तान्त्रिक एव हिन्दू तान्त्रिक मिश्रित किन्तु हिन्दू परिचायित।
परवर्ती युग	पौराणिक एव हिन्दू तन्त्र के मिश्रित देव देवी।	हिन्दू तान्त्रिक।

देखा जाता है कि इस प्रकार विवर्जित होकर तेरहवीं चौदहवीं शती में हिन्दू बगाली का मूल धर्म एक बारगी पौराणिक तान्त्रिक रूप धारण कर लेता है एव अब तक वही रूप ही अपरिवर्तित है।

इस यु । क धर्म की वस्था की आलोच । के पूर्व ८क तथ्य ।ीय है। पौराणिक ब्राह्मण धर्म एव बौद्ध धर्म न्तर ८क समान रूप में तिशील रहा है अत दोनो को समान स्वीकृति मिली। वि ोध से ज्य द वय का ही प्रयास अधिक हु है। लगता है शिक्षित बुद्धिजीवी बगाली सम्प्रदाय पौराणिक धर्म पुराण कथाओ की नीति एव आदर्श द्वारा अनुप्राणित हुए हैं किन्तु नाना कारणो से जनसाधारण बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट हुआ एव इसे ग्रहण किया।

इस युग मे (तिरहवीं चौदहवीं शती) अनेक प्रमाणा से ता ाा कि गुप्त यु । की तर वैदिक धर्म एव क्रिया काण गौरव के साथ प्रचलित हैं कि तु पोराणिक धर्म ो विशेष प्रसारित हुआ। नाना स्थान से विष्णु मूर्ति के पाने से लगता हे वैष्णव धर्म विशेष रूप से प्रचलित था।

शैव धर्म का भी प्रमाण मिलता है। नारायण पाल के भागलपुर ताम्रशासन शिव मन्दिर की प्रतिष्ठा तथा र जधानी मे शिव के ती मन्दिर एव शिव की नाना मूर्तियो की प्राप्ति से प्रमाणित होता है। ।क्तदेवी की उपासना का वि ो । ल्ले न मिलता है। इसके अलावा विभि न प्रकार की मूर्तिया मिलती हैं। लक्ष्मी चण्डिका ब्राह्मणी माहेश्वरी कौमारी इन्द्राणी वैष्णवी वराही चामुण्डी एव सूर्य प्रतिमाए भी मिलती हैं। इससे लगता है कि इस युग की राजशक्ति हि दू एव बौद्ध धर्म मे बि दुमात्र भी प्रभेद नहीं करती एव मूल मे प्रभेद होने पर भी दो धर्म एक दूसरे की दो शाखाओ के रूप मे स्थान पाये हैं।

पाल राजागण परमसौगत महायानी बौद्ध थे। वैष्णव एव अन्य धर्म के प्रति भी उनकी उदार दृष्टि थी। पालयुग मे बौद्ध धर्म का परिवर्तन बगाल के धर्म के इतिहास मे एक उल्लेख योग्य घटना है। वीं से ।रहवीं ।ती का क ब ।।ल मे बौद्धधर्म क ो मय युग था। इस युग का बौद्ध धर्म तान्त्रिक बौद्ध धर्म था। इस तान्त्रिक धर्म के स्वरूप एव ऐतिहासिक विवरण की चर्चा करना आवश्यक है।

म त्र अर्थात् एक वर्ण या एक शब्द या एकाधिक शब्दो के गूढ शक्ति मे विश्वास मुद्रा अर्थात् हस्त एव अगुली की विभि न भगी एव उनका स्पर्श न्यास प्रणायाम अर्थात् श्वास प्रश्वास निय त्रण या योग क्रिया यन्त्र अर्थात् देव देवी के स्वरूप के चित्र विचित्र साकेतिक चिनह् धर्म साधना में या देव देवी की पूजा में स्त्री सग की प्रयोजनीयता की धारणा विभि न गुह्य क्रिया कलाप द्वारा अलौकिक व्यापार का सघटन करने या इ द्रजाल सृष्टि के ऊपर आस्था इ द्रियज भोग मे से होते हुए धर्माचरण आदि साधारण तया तान्त्रिक धर्म के नाम से जाना जाता है। इस तान्त्रिक धर्म की एक धारा बहुत दिन पूर्व से आर्य ब्राह्मण धर्म स्रोत के साथ मिलकर प्रवाहित होती आ रही है। अनुमानत प्रथम ई सदी तक इसने प्रचलित हि दू धर्म के देव देवी का आश्रय करके एव तृतीय चतुर्थ शताब्दी में शैव ।ागमो मे एक प्राथमिक रूप धारण करके एव बाद मे यामल प्रभृति ग्रथो के द्वारा त त्रादि मे पूर्ण रूप में प्रकट होकर हि दू देव देवी पूजा एव हि दू दर्शन को आश्रय करके यह धर्म हि दू तन्त्र नाम से अभिहित हुआ। ठीक इसी प्रकार यह धार्मिक धारा बौद्ध धर्म एव सस्कृति के आश्रय में आयी। जन साधारण का बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षण बढा। परवर्ती काल मे पचध्यानी बुद्ध की सृष्टि हुई। अब ससार मे बोधिस त्व अवलोकितेश्वर का अधिकार हुआ वे ही वर्तमान जगत के सृष्टि कर्त्ता वे ही अपार करुणामय एव सबके वरेण्य हैं। अत उनकी पूजा ही सवपिक्षा अधिक प्रचलित हुई। इस पूजा में मत्र का प्रयोजन

अन्यान्य पूजा की आनुषगिक क्रियादि का भी प्रयोजन हुआ। तब अगणित जन साधारण की बौद्ध धर्म मे मुद्र भृति क र्त्त हुअ ५व धीरे धीरे अन्यान्य क्रियाए भी इसके अ दर अन्तर्भुक्त हुई। बौद्धाचार्य गण भी महायान को जनप्रिय करने के लिए इनके विश्वास एव अनुष्ठान को ग्रहण किए। इसी प्रकार बौद्ध धर्म में तान्त्रिकता प्रविष्ट हुई। विराट प्रज्ञा पारमिता धर्मशास्त्र को एक बीजमत्र प्रइ् में रूपान्तरित किया गया। ह बी हि दू पू । क ५क अ रिह र्य अ । है। हि दू धर्म मे यही तान्त्रिक अश अन्यान्य तान्त्रिक अश के साथ समान रूप से आधिपत्य विस्तार करके वर्तमान है। हि दू धर्म पौराणिक तान्त्रिक धर्म है। हमारे देव देविया पौराणिक एव पूजा तान्त्रिक हैं। शैव शाक्त वैष्णव सौर गाणपत्य प्रभृति समस्त धर्म शाखा की पूजा मे ही बीजमत्र की आवश्यकता होती है। विभि न देव देवियों के विभि न बीजमत्र हैं। बौद्धधर्म में जब मत्र ने एकबार विधिसगत रूप में प्रवेश किया तब बौद्धचार्यों ने मत्र को ही आध्यात्मिक साधना में सबसे सहायक माना। इ से ही बौद्धधर्म में तान्त्रिकता ने स्थायी आसन ग्रहण किया।

बौद्ध धर्म के तान्त्रिकता मे परिवर्तन का प्रधानत दो कारण था। एक कारण प्रचलित हि दू धर्म के साथ प्रतियोगिता थी। हिन्दू धर्म में बहुत सी देव देविया पूजा के नाना अनुष्ठान एव नाना गुह्य क्रियाए वर्तमान थीं। साधारण लोग धर्म अर्थ में इन सब पूजा एव अनुष्ठान को ही समझते थे। बौद्ध दर्शन के नाना सूक्ष्म विचार एव कोठर नीति उनके सामने कोई मायने नहीं रखती। इसी लिए बौद्ध धर्म को जनप्रिय करने के लिए एव साधारण लोगो को बौद्ध धर्म की गोष्ठी में खींचने के लिए बौद्धाचार्यों ने बहुत से देव देवियो की आमदनी की नाना तान्त्रिक क्रियाओ का भी प्रचलन किया एव जन साधारण के लिए ग्राह्य बनाने के लिए जितना सम्भव था सादृश्य लाने की चेष्टा की। दूसरा कारण यह कि बौद्ध धर्म एक उच्चनीति मूलक धर्म एव श्रमण श्रमणियो के लिए इद्रिय निरोधक बाध्यता मूलक था। किन्तु बौद्धाचार्यों ने निर्वाण के अर्थ मे महासुख की स्थापना की एव साधना मे नर नारी मिलन का एव भोग मोक्ष का पथ भी रचित हुआ। हि दू तान्त्रिक साधना में नर नारी के मिलन की व्यवस्था थी बौद्ध धर्म में भी उसी सुयोग दान से दोनों धर्मों में साधारण लोगो के लिए और कोई विशेष प्रभेद नहीं था। इस प्रकार परि ।र्वको क ब में इतिह के ध ना। स्त्रोत की धारा मे एव देश काल के अनिवार्य प्रभाव के कारण पाल युग में बौद्ध धर्म का तान्त्रिक रूपान्तर घटित हुआ।

तान्त्रिक बौद्ध धर्म की साधारणत तीन शाखाए हैं वज्रयान काल चक्रयान एव सहजयान। वज्रयान ही मूल शाखा है काल चक्रयान उसके साथ सश्लिष्ट है सहजयान कछ परवर्ती युग मे वज्रयान सव कालचक्रयान के देव देवी पूजा म त्र एव विविध अनुष्ठान के विरुद्ध प्रतिवाद स्वरूप ही दृभू हु जान ५ त है। ह ।नियो ने पू आदि छो कर के मूल साधना क्रिया के ऊपर काफी जोर दिया है।

इस युग मे (तिरहवीं चौदहवीं शती) अनेक प्रमाणा से ना ।।।। कि गुप्त यु। की तरह वैदिक धर्म एव क्रिया काण्ड गौरव के सा।थ प्रचलित हैं किन्तु पौराणिक धर्म ही विशेष प्रसारित हुआ। नाना स्थान से विष्णु मूर्ति के पाने से लगता है वैष्णव धर्म विशेष रूप से प्रचलित था।

शैव धर्म का भी प्रमाण मिलता है। नारायण पाल के भागलपुर ताम्रशासन शिव मन्दिर की प्रतिष्ठा तथा राजधानी मे शिव के तीन मन्दिर एव शिव की नाना मूर्तियो की प्राप्ति से प्रमाणित होता है। क्तदेवी की उप सना। का वि ो । ल्ले न मि ।ता है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार की मूर्तिया मिलती हैं। लक्ष्मी चण्डिका ब्राह्मणी माहेश्वरी कौमारी इन्द्राणी वैष्णवी वराही चामुण्डी एव सूर्य प्रतिमाए भी मिलती हैं। इससे लगता है कि इस युग की राजशक्ति हिन्दू एव बौद्ध धर्म मे बिन्दुमात्र भी प्रभेद नहीं करती एव मूल मे प्रभेद होने पर भी दो धर्म एक दूसरे की दो शाखाओ के रूप मे स्थान पाये हैं।

पाल राजागण परमसौगत महायानी बौद्ध थे। वैष्णव एव अन्य धर्म के प्रति भी उनकी उदार दृष्टि थी। पालयुग मे बौद्ध धर्म का परिवर्तन बगाल के धर्म के इतिहास मे एक उल्लेख योग्य घटना है। आ वीं से बा हवीं ती क क ब ।। मे ौद्धधर्म का ौरवम युग था। इस युग का बौद्ध धर्म तान्त्रिक बौद्ध धर्म था। इस तान्त्रिक धर्म के स्वरूप एव ऐतिहासिक विवरण की चर्चा करना आवश्यक है।

मन्त्र अर्थात् एक वर्ण या एक शब्द या एकाधिक शब्दो के गूढ शक्ति मे विश्वास मुद्रा अर्थात् हस्त एव अगुली की विभिन्न भगी एव उनका स्पर्श न्यास प्रणायाम अर्थात् श्वास प्रश्वास नियन्त्रण या योग क्रिया यन्त्र अर्थात् देव देवी के स्वरूप के चित्र विचित्र साकेतिक चिनह् धर्म साधना में या देव देवी की पूजा मे स्त्री सग की प्रयोजनीयता की धारणा विभिन्न गुह्य क्रिया कलाप द्वारा अलौकिक व्यापार का सघटन करने या इन्द्रजाल सृष्टि के ऊपर आस्था इन्द्रियज भोग मे से होते हुए धर्माचरण आदि साधारण तया तान्त्रिक धर्म के नाम से जाना जाता है। इस तान्त्रिक धर्म की एक धारा बहुत ल्नि पूर्व से आर्य ब्राह्मण धर्म स्रोत के साथ मिलकर प्रवाहित होती आ रही है। अनुमानत प्रथम ई सदी तक इसने प्रचलित हिन्दू धर्म के देव देवी का आश्रय करके एव तृतीय चतुर्थ शताब्दी में शैव आगमो मे एक प्राथमिक रूप धारण करके एव बाद मे यामल प्रभृति ग्रथो के द्वारा तन्त्रादि में पूर्ण रूप मे प्रकट होकर हिन्दू देव देवी पूजा एव हिन्दू दर्शन को आश्रय करके यह धर्म हिन्दू तत्र नाम से अभिहित हुआ। ठीक इसी प्रकार यह धार्मिक धारा बौद्ध धर्म एव सस्कृति के आश्रय मे आयी। जन साधारण का बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षण बढा। परवर्ती काल में पचध्यानी बुद्ध की सृष्टि हुई। अब ससार मे बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का अधिकार हुआ वे ही वर्तमान जगत के सृष्टि कर्त्ता वे ही अपार करुणामय एव सबके वरेण्य हैं। अत की पूजा ही सर्वापेक्षा अधिक प्र लित हुई। इस पूजा में मन्त्र का प्रयोजन

अन्यान्य पूजा की आनुषगिक क्रियादि का भी प्रयोजन हुआ। तब अगणित जन साधारण की मा। प ौद्ध धर्म में मु प्रभृति का। र्त्त हुअ ५ धीरे धीरे अन्यान्य क्रियाए भी इसके अ दर अन्तर्भुक्त हुई। बौद्धाचार्य गण भी महायान को जनप्रिय करने के लिए इनके विश्वास एव अनुष्ठान को ग्रहण किए। इसी प्रकार बौद्ध धर्म मे तान्त्रिकता प्रविष्ट हुई। विराट प्रज्ञा पारमिता धर्मशास्त्र को एक बीजमत्र प्रइ् में रूपान्तरित किया गया। यह बी हि दू पू ।क ५क अपरिहार्य अ है। हि दू धर्म मे यही तान्त्रिक अश अन्यान्य तान्त्रिक अश के साथ समान रूप से आधिपत्य विस्तार करके वर्तमान है। हि दू धर्म पौराणिक-तान्त्रिक धर्म है। हमारे देव देविया पौराणिक एव पूजा तान्त्रिक हैं। शैव शाक्त वैष्णव सौर गाणपत्य प्रभृति समस्त धर्म शाखा की पूजा में ही बीजमत्र की आवश्यकता होती है। विभि न देव देवियों के विभि न बीजमत्र हैं। बौद्धधर्म में जब मत्र ने एकबार विधिसगत रूप में प्रवेश किया तब बौद्धचार्यों ने त्र को ही ध्य ।मिक साधन मे सबसे सहायक माना। इ त्रयान से ही बौद्ध र्म मे त ि कत ने स्थ यी आस ःह। किया।

बौद्ध धर्म के तान्त्रिकता मे परिवर्तन का प्रधानत दो कारण था। एक कारण प्रचलित हि दू धर्म के साथ प्रतियोगिता थी। हि दू धर्म मे बहुत सी देव देविया पूजा के नाना अनुष्ठान एव नाना गुह्य क्रियाए वर्तमान थीं। साधारण लोग धर्म अर्थ में इन सब पूजा एव अनुष्ठान को ही समझते थे। बौद्ध दर्शन के नाना सूक्ष्म विचार एव कोठर नीति उनके सामने कोई मायने नहीं रखती। इसी लिए बौद्ध धर्म को जनप्रिय करने के लिए एव साधारण लोगो को बौद्ध धर्म की गोष्ठी में खींचने के लिए बौद्धाचार्यों ने बहुत से देव देवियों की आमदनी की नाना तान्त्रिक क्रियाओ का भी प्रचलन किया एव जन साधारण के लिए ग्राह्य बनाने के लिए जितना सम्भव था सादृश्य लाने की चेष्टा की। दूसरा कारण यह कि बौद्ध धर्म एक उच्चनीति मूलक धर्म एव श्रमण श्रमणियो के लिए इद्रिय निरोधक बाध्यता मूलक था। किन्तु, बौद्धाचार्यों ने निर्वाण के अर्थ मे महासुख की स्थापना की एव साधना मे नर नारी मिलन का एव भोग मोक्ष का पथ भी रचित हुआ। हि दू तान्त्रिक साधना मे नर नारी के मिलन की व्यवस्था थी बौद्ध धर्म मे भी उसी सुयोग दान से दोनों धर्मों मे साधारण लोगों के लिए और कोई विशेष प्रभेद नहीं था। इस प्रकार परि ।र्थिको क द में इतिह के ध न। स्त्रोत की धारा में एव देश काल के अनिवार्य प्रभाव के कारण पाल युग में बौद्ध धर्म का तान्त्रिक रूपान्तर घटित हुआ।

तान्त्रिक बौद्ध धर्म की साधारणत तीन शाखाए हैं वज्रयान काल चक्रयान एव सहजयान। वज्रयान ही मूल शाखा है काल चक्रयान उसके साथ सश्लिष्ट है सहजयान कछ परवर्ती युग मे वज्रयान सव कालचक्रयान के देव देवी पूजा म त्र एव विविध अनुष्ठान के विरुद्ध प्रतिवाद स्वरू ही द्भू हु त है। सहजयानियों ने पूजा आदि छोडकर केवल मूल साधना क्रिया के ऊपर काफी जोर दिया है।

वज्रयान निर्वाण बौद्ध साधना का चरम लक्ष्य है। बुद्धदेव रागरत ियो का ा ा करक समस्त कामना वासना एव सस्कार त्याग करके ा म मृत्यु प आवर्तन क हाथ से निस्तार लाभ करके परम शन्ति एव आन द की प्राप्ति को ी निर्वाण मानते थे। यह निर्वाण निब्बाण परम सुखम् शान्ति भागम् एव य ी बौद्ध धर्म के प्रथम युग की धारणा है। इसके बाद बौद्ध धर्म के नाना सम्प्रदाय का उद्भव हुआ। महायानिया ने निर्वाण को प्रकृत रूप मे शून्य माना।

महायान मतवादियो की इस शू यता को वज्रयानी ा्र ाम से ाभिहित करते हैं। यह शून्यता अभेद्य अदाही अविनाशी क्षयहीन एव वज्र नाम से अभिहित है। समस्त विश्व के सार रूप या सत्य त व को वज्रयानी बौद्धो ने वज्रस व रूप मे क पना की है। यह वज्रसत्व परम देवता हैं वे ही आदि बुद्ध हैं। वज्रतत्व को दो रूपो मे देखा ाता है क परम देवता या परमेश्वर या भगवान रूप मे ख म ुष्य का अ तर्निहित सत्ता या आ मा रूप मे।

वज्रयानियो ने उपनिषदो की धारा का अनुसरण करके वज्रस व के स्वरूप की क पना की थी। वज्रस व भगवान स्वरूप नाना ऐश्वर्य समन्वित सर्वशक्तिमान प्रणिपात ग्रहण के योग्य हैं। अत यह वज्रस व सगुण भी है निर्गुण भी है ईश्वर एव आ मत व या परमा मा दोनो ही है। व में स व को दे ता रू मे क पन करने के साथ साथ इस धर्म में बहुत से देव देवियो की उपलब्धि की गयी। वज्रस व ही आदि देवता आदि बुद्ध हैं। यही आदि देवता पाच गुण या शक्ति के अधिकारी हुए। उसी पाच गुण या शक्ति से पाच प्रकार के ध्यान की सृष्टि हुई है एव इसी ध्यान से पाच ध्यानी बुद्ध पैदा हुए हैं। वे पचस्क ध रूप वेदना सज्ञा सस्कार विज्ञान के अधिपति हैं। उनका नाम क्रमश वैरोचन र न सम्भव अमिताभ अमोघसिद्धि एव अक्षोभ्य है। इस पचध्यानी बुद्ध की पुन शक्ति या देवी से सयुक्त होने की क पना भी की गयी है। उनकी शक्ति इस प्रकार वर्णित हुई है वैरोचन वज्रघातीश्वरी या तारा र न सभव मामकी अमिताभ पाण्डुरा अमोध सिद्धि आर्य तारा या तारा अक्षोभ्य लोचना। इसी पचध्यानी बुद्ध को पच तथागत कहा जाता है। इनमे विज्ञान के अधिष्ठाता अक्षोभ्य का स्थान सर्वो च है। अ य चार ध्यानी बुद्ध अक्षोभ्य के चिनह् धारण करते हैं एव पुन अक्षोभ्य आदि देवता वज्रस व के एक क्षुद्र चिनह् धारण करते हैं। इस पचध्यानी बुद्ध के पुन पाच बोधिस व हैं यथा वैरोचन के समभ्भद्र या चक्रपाणि र न सम्भव के र नपाणि अमिताभ के पद्मपाणि या अवलोकितेश्वर अमोघ सिद्धि के विश्वपाणि एव अक्षोभ्य के वज्रपाणि हैं। इनकी भी अनेक शक्ति की कल्पना की गयी है। इस प्रकार वज्रयान मे पालयुग मे अनेक देव देवियो की सृष्टि हुई है। नवीं से ग्यारहवीं शती की नाना तारा मूर्तिया बगाल मे पायी गयीं हैं। इसी के साथ साथ हिंदू देव देवियो के साथ बौद्ध देव देवियो का मिश्रण हुआ।

वज्रस व के हिसाब से बोधिचित्त मनुष्य की हृदयविहारी सत्ता है। मनुष्य आ मोपलब्धि द्वारा एव साधना के द्वारा इसी वज्रस व मे बुद्ध व के इसी स्वरूप में रूपान्तरित हो जाता है। बोधिचित्त शब्द का प्रकृत अर्थ है त वज्ञान की अनुभूति या उपलब्धि। बौद्धधर्म मे त वज्ञान अर्थ में जगत की शून्यता का ज्ञान है। महायान शून्यता के साथ करुणा का योग हुआ है। महायान में बोधिचित्त अर्थ मे एक ऐसी अवस्था को माना जाता है जहा ून्य । ६ क ।। मिश्रित होकर अलौकिक चेतना क स ।र करती है।

बौद्ध तत्र में बोधिचित्त शून्यता एव करुणा मे मिलित अद्वय अवस्था नाम से वर्णित हुई है। यही शून्यता एव करुणा पुन प्रज्ञा एव उपाय रूप मे अभिहित हुई है। प्रज्ञा का अर्थ है प्रकृत ज्ञान ससार की तथता का ज्ञान। यह चिर स्थिर सहत एव अपरिवर्तनीय है और उपाय सकल को दु ख से सतत उ नीत करने की प्रयासशील एव गतिशील शक्ति है। एक स्थिर ज्ञाना मक दूसरी चचल क्रिया मक शक्ति है। समस्त बौद्धतत्र मे ही इस प्रज्ञा एव उपाय के मिलन के ऊपर विशेष गुरुत्व आरोप किया गया है। यह उभय शक्ति का मिलन ही बौद्ध तात्रिक साधना का चरम लक्ष्य है। यही प्रज्ञोपाय का मिलन है। इसको दूध एव जल के मिलन की तरह अद्वय मिलन कहा गया है।

चरम तत्व की यह द्विधा विभक्ति एव उनका मिलन हि दू, शैव एव शाक्त तत्र की भी मूल त व वस्तु है। हि दू में ज्ञा । कृति की ही क्रिय शी चचल एव सृष्टिकारिणी नाम से क पना की गयी है एव पुरुष या उपाय निष्क्रिय अपरिवर्तनीय नाम से क पित हुआ है। हि दू तत्र के ऊपर साख्य दर्शन एव वेदान्त दर्शन के प्रभाव के कारण लगता है प्रकृति पुरुष इसी रूप में कल्पित हुए हैं। साख्य की प्रकृति क्रियामयी सृष्टिशीला एव गुणशालिमी किन्तु पुरुष निर्गुण निष्क्रिय नित्यसिद्ध एव मुक्त है। वेदान्त के पुरुष रूपी ब्रह्म भी इसी प्रकार निर्गुण एव क्रियाहीन किन्तु प्रकृति रूपिणी माया इस जगत् व्यापार मे अघटनघटन पर्ययसी है।

बौद्धतत्र मे भी दे ना जाता है कि प्रज्ञा ६व की ।क्ति एव शिव के साथ तु । की थी है ६ इ के मि मे ही हसु क मि हो है ऐसा कहा गया है। शिव शक्ति के अद्व मि क र ही सत्य है तब शिव शक्ति का कोई पृथक अस्ति व नहीं रहता। यदि नाम का अन्त ह दि ये ो दो ो ो क ति च वि ।य ६क ही है।

इस प्रज्ञा एव उपाय मूल त व की दो धारा ससार की स्त्री एव पुरुष मे प्रकट है। प्रत्येक नारी का अन्तर्निहित स्वरूप प्रज्ञा एव प्रत्येक पुरुष का स्वरूप उपाय है। बहुत से बौद्ध तत्र में नारी को प्रज्ञा एव पुरुष को उपाय नाम से अभिहित किया गया है। नारी को प्रज्ञापारमिता की रूप धारिणी मुद्रा महामुद्रा भगवती वज्रकाया प्रभृति नाम से अभिहित

किया गया है।

बौद्धतत्र में इसी प्रज्ञा रूपिणी नारी को कमल एव उपाय रूपी पुरुष को वज्र नाम से अभिहित किया गया है। यह दो पारिभाषिक शब्द हि दू तत्र के योनि लिग की तरह स्त्री एव पुरुष जननेद्रिय के प्रतीक रूप में बौद्ध तत्र मे व्यवहृत हुआ है। वज्र कमल सयोग की बात बौद्ध तत्र मे प्राय मिलती है।

स स्त बौद्ध ता त्रिक धन की मू भित्ति ही प्रज्ञा ५व ५ का मिलन उभय त वों का सामरस्य है। यही युगनद्ध हैं यही युगनद्ध ही अद्वय यही बोधिचित्त है। बगाल मे बौद्ध देव देवियों की अनेक आलिगित मूर्तिया पायी गयी हैं। युग नद्ध का स्वरूप महासुख है। युगनद्ध सजात महासुख ही निर्वाण है। इस युगनद्ध क्रिया मे उत्प न महासुख निरवच्छि न आन दानुभूतिमय (सतत सुखमय) एव भोग तथा मोक्ष का आवास स्थल है। इसकी कोई ह्रास वृद्धि नहीं है। बीज रूपी बोधिचित्त या वज्रस व के बारे में नाना बौद्ध तत्रों मे उल्लेख है। (हेवज्र तत्र) में भगवान हेवज्र कहते हैं

> मैं उत्कृष्ट वज्रनारी की योनि में वास करता हू (विहरेहह सुखावत्या सद् वज्रयोषितो भगे) मैं ु रू में इसी सुखावती मे वास करत हू। (योषिद्भगे सुखावत्या गुरुनाम्ना व्यवस्थित) उस गुरु के बिना महासुख सभव नहीं है (बिना तेन न सौख्य) यह गुरु रूपी बुद्ध समस्त भाव एव रूप के अतीत एव हस्त तथा मुख से सयुक्त होते हुए भी आकार ही न महासुख स्वरूप है। (अस्मात् बुद्धो न भाव स्यात् अभाव रूपोहपि नैव स । मुज मुखाकार रूपी य अरूपी सौख्यत ।।)

इस विवरण के साथ इस बात का उल्लेख मह वपूर्ण है कि बगाल के बाउल धर्म में भी ठीक वज्रस व रूपी बोधि चित्त को व्यक्तिगत मानकर उनके निकट दैन्य आर्ति आदि व्यक्त किया गया है।

कालचक्र यान

यह वज्रयान की तरह तान्त्रिक बौद्ध धर्म की एक शाखा है। त व ओर साधना के विषय में वज्रयान से इसका कोई विशेष प्रभेद नहीं है। कालचक्रयान मे कालचक्र ही वज्रस व है। ह ।५व की म्मिलित सत्ता है। कालचक्र ही बोधिचित्त है वही महासुख का चरम विकास स्वरूप है। कालचक्र शू यता एव करुणा की सम्मिलित सत्ता है। उसमे त्रिजगत् की उ पत्ति एव क्षय नहीं है। ज्ञान एव ज्ञेय दोनो उसमे मिला हुआ है। यह कालचक्र साकार एव निराकार दोनों भाव सम्प न भगवती प्रज्ञा द्वारा आलिगित है। वह उ पत्ति एव क्षयहीन चिरतन सौख्य एव हास्यादि द्वारा सयुक्त है। वह समस्त बुद्धो के ज कस्वरूप है ५व त्रिकाल तथा त्रिक ५ नमे निहित हैं। वह सर्वज्ञ एव परम आदि बुद्ध

है।

कालचक्रयान योग साधना के साथ भी सश्लिष्टि हो सकता है। योग साधना का उद्देश्य की हुआ काल को जय करना। बौद्ध साधक एव सिद्धाचार्यगण सर्वध्वसी काल को जय करने की चेष्टा करते थे एव स्वय को कालचक्र के आवर्त्तन के ऊपर रखने की सर्वदा चेष्टा करते। तिथिवार नक्षत्र प्रभृति काल विभाग हमारी प्राण क्रिया के परिचायक हैं। क र्य के द्वारा ही क ल क परिचय होता है। विश्व ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार निरन्तर कार्य चल रहा है हमारे देह मे भी उसी प्रकार नाना क्रिया चल रही है प्राण शक्ति की नाना अभिव्यक्ति हो रही है। योग साधना के द्वारा शरीर के अभ्यन्तरस्थ प्राण अपान समान उदान एव व्यान इसी पचवायु के कार्यसमीकरण एव इच्छानुरूप वशीभूत या रुद्ध कर पाने पर काल को जय करने का पथ सुगम होता है।

सहजयान

सहजयान तान्त्रिक बौद्धधर्म का अन्तिम स्तर है। सहजयान मे देव देवी पूजा मत्र अनुष्ठान प्रभृति को कोई स्थान नहीं है। सहजयानी वज्रयानियों के देव देवी मत्र तत्र प्रभृति को नहीं मानते किन्तु उनकी साधना पद्धति पूर्ण रूप से ग्रहण करते हैं। दसवीं ग्यारहवीं शती के चर्यापद में सहजयान का साहित्य रचित है।

सहजयानियों के विचार में परमपद या पारमार्थिक सत्य परम महासुख रूपी सहज की उपलब्धि है। यह सहज ही एकमात्र सत्य है यही जगत का स्वरूप है। प्रकृति पुरुष मिलन द्वारा सामरस्य आने पर इस महासुख स्वरूप सहज की उपलब्धि होती है। इस महासुख मे कोई आ म पर भेद नहीं है। इसी अवस्था मे समस्त इन्द्रिय शक्ति विलुप्त होती है अ की स्थिति ᳳ होती है ᳳ सहजक प स्फूर्ति लाभ करता है। यह परम महासुख ही निर्वाण पद है। बाउलों के साधना प्रसग मे सहज पथ ज्यादा प्रासगिक है।

पाल युग मे बगाल के धर्म के इतिहास मे ये तीन यान समन्वित हुए और तान्त्रिक बौद्ध धर्म को एक विशेष स्थान मिला। पाल युग की तुलना मे सेन युग मे बौद्ध धर्म म्लान एव निस्तेज हो गया। इस युग में वैदिक एव ब्राह्मण धर्म का विशेष प्रचार प्रसार किया गया। इसी युग में वैष्णव धर्म की एक विशिष्ट धारा का प्रसार हुआ। वह राधा कृष्ण की ध्यान कल्पना या राधाकृष्णवाद है।

तेरहवीं ाती मे मुसल ो के शासन स्थापित होने पर भारतीय धर्म मे परिवर्तन आया। सेन युग मे ऊच नीच की सामाजिक रचना के कारण धर्म परिवर्तन भी घटा तथा एक गुट होकर कटटर मुसलमान धर्म का मुकाबला भी किया गया। इसी समय बौद्धो का एक बडा अश हिंदुओ के साथ मिल गया। फलत हिंदू तत्र एव शिव शक्तिवाद के साथ काफी सक्रमण बौद्ध धर्म मे हुआ। इस प्रकार एक नूतन हिंदू तान्त्रिक धर्म ने ज म ग्रहण

किया। बौद्ध साधना का प्रधान अग गुह्य योगसाधना एव यौन मिलन ि द् ता ि कता के पचमकार मे पर्यवसित हुआ। हिंदू तान्त्रिक धर्म बौद्ध ता ि त्रकता क द्वारा काफी प्रभावित हुआ था एव अनेक हि दू तान्त्रिक देव देवी बौद्ध तान्त्रिक देव देवी के एक मात्र रूपा तर से जान पडते हैं। बारहवीं तेरहवीं शती मे यह मिलन घटित हुआ। तत्रवादी हिंदू एव बौद्ध रूप ने मिलकर हिंदू तत्र धर्म की दृढभित्ति की प्रतिष्ठा की। इसी समय विशिष्ट हिंदू तत्र ग्र थों की रचना आरम्भ हुई।

बौद्धो ९क वृहत् सम्प्रदा हि दू धर्म के स मिल ।या। किन्तु अ पसख्यक बौद्ध जि होने सहजयान के आदर्श को मन और प्राण से ग्रहण किया था वे हि दू सम्प्रदाय के साथ मिल न सके। सहजयानी देवता नहीं मानते पूजा जप तप आदि नहीं मानते ब्राह्मण दण्डी सन्यासी क्षपणक एव रसायन पथियों का उपहास करते हैं। इसे हम सहजयानी सिद्धाचार्य सरहपाद कहानुपाद आदि की रचना मे देखते हैं। उनकी साधना मूलत दो ही है। पहली देह साधना या काया साधना अर्थात् हठयोग की प्रक्रिया दूसरी प्रकृति पुरुष उभय शक्ति के मि न से प हासु ने की ब्धि इ मे मूर्तिपूजा नहीं धर्म की कोई अनुष्ठानिक क्रिया नहीं है। अत साधारण लोगों की मूर्ति पिपासा एव अनुष्ठान प्रीति इस धर्म के द्वारा निवारित नहीं हो पायी। अत इन साधकों की गोष्ठी छोटी ही रह गयी। इस क्षुद्र धर्म सम्प्रदाय की दो परिणति हुई। उसमें से एक ने काया सिद्धि या काया साधना का एकमात्र धर्म साधना का केंद्र बनाया जिसे नाथ धर्म कहा गया। दूसरे ने राधाकृष्ण लीलावाद को प्रकृति पुरुष त व रूप में ग्रहण किया जिसे हजि वैष्ण व म्प्र । रूप में । या।

।थ सिद्ध र्प स्त्री को पूर्वक ९व भय पूर्वक परिहार किए। वे इडा एव पिंगला के मीक । द्वारा देह भ्यन्तर स्थित वित को ही ।त करके सहस्रार स्थित शिव के साथ मिलन कराकर उससे उ प न आ दध । मे स्न त होकर सिद्धदेह प्त करते हैं। बि दु सिद्धि छो कर यो क कोई दे प ही धित नहीं होता। बि दु सिद्धि सहजयानियो एव नाथो का ही लक्ष्य है किन्तु पथ विभि न है। एक सम्प्रदाय चचलता के कारण को वर्तमान रखकर ही उसमे से अचचल अवस्था मे उ नीत हुआ है दूसरा सम्प्रदाय उस कारण के सस्पर्श से दूर ही रहा है।

श्रीकृष्ण की वृ दावन लीला की कथा बहुत पहले से ही बगाल मे प्रचलित थी। छठी सातवीं शती से ही इसका प्रमाण मिलता है। आठवीं शती मे रचित काव्य मे राधा कृष्ण की लीला का प्रसग दिखाई देता है। इसी के साथ लक्ष्मी नारायण की लीला का वर्णन भी पाया जाता है। सेन युग मे राधा कृष्ण लीला की कथा विशेष रूप मे प्रचारित होती है। जयदेव के गीतगोवि द लीला शुक विल्वमगल का कृष्णकर्णामृत एव नाना कवियो द्वारा रचित राधा कृष्ण लीला विषयक कविताए राधाकृष्णावाद को सर्वजन से परिचित कराती हैं। लक्ष्मी नारायण का देव व पूर्व ही सुप्रतिष्ठित था क्रमश राधा कृष्ण ने लक्ष्मी नारायण

के स्थान पर अधिकार कर लिया। सेन युग मे ही राधा कृष्णवाद एक धर्म की नींव पर प्रतिष्ठित हुआ। बाद मे इसका परिपूर्ण दार्शनिक एव तात्विक रूप वे गव गोस्वामियो द्वारा रचित हुआ।

बौद्ध सहजियो के एक सम्प्रदाय ने इस राधाकृष्णवाद को ग्रहण किया। यह गण राधा कृष्ण को देव देवी मानकर वैष्णव धर्म का ग्रहण नही । यह राधा कृष्णवाद नर नारी मे अन्तर्निहित तत्व विशेष है। तान्त्रिक बौद्ध धर्म मे बुद्धत्व वज्रसत्व या बोधिचित्त हमारे भीतर निहित एक दिव्य सत्ता माना गया है जो शून्यता और करुणा प्रज्ञा और उपाय दो सत्ताओ के मिलन से गठित है। ये दो तत्व या दिव्य सत्ता यथाक्रम से नारी और पुरुष की अन्तर्निहित सत्ता है। इन दोनो के मिथुनात्मक मिलन से उत्पन्न महासुख ही बुद्धत्व वज्रसत्व या बोधिचित्त का स्वरूप हे। यही महासुख की उपलब्धि ही उस स्वरूप को प्राप्त करने का उपाय है। यही निर्वाण लाभ है। वैष्णव सहजिया भी ठीक इसी प्रकार राधाकृष्णवाद को प्रकृति पुरुषवाद रूप मे ग्रहण किए हैं। यह नारी पुरुष की अतर्निहित सत्ता है। दोनो का युगल मिलन ही साधना का लक्ष्य है। शैव तत्र के शिव शक्ति का जो तत्व था वह प्रज्ञा उपाय रूप मे बौद्ध तान्त्रिको के पास रूपायित होता है। वही प्रज्ञा उपाय पुन राधा कृष्ण रूप मे वैष्णव सहजियो द्वारा गृहीत हुआ। बौद्ध तान्त्रिको की साधना का अश सपूर्ण रूप में उनके द्वारा गृहीत हुआ। केवल प्रकृति पुरुष के तत्व रूप में राधाकृष्णवाद को उन्होंने ग्रहण किया।

तेरहवीं शती मे मुसलमानी शासन के काल में दो विपरीत मुखी धर्म साधना का टक्कर हुआ। सामाजिक भेद भाव के कारण अन्त्यजवर्ग ने अपनी रक्षा हेतु मुसलमान धर्म स्वीकार किया। एक तरफ जाति भेद की प्रक्रिया चल रही थी तो दूसरी तरफ धर्मान्तर भी चल रहा था। तेरहवीं शती से चौदहवीं शती तक बगालियो का मूल धर्म तान्त्रिक शाक्त धर्म था। हिन्दू एव बौद्ध तान्त्रिक धर्म मे समन्वय पहले ही हो चुका था। बगाल की साधना का समस्त अश ही तान्त्रिक था। बौद्ध तान्त्रिक धर्म से गुरु का देव रूप में आगमन हिन्दू धर्म मे हुआ। पन्द्रहवीं शती में भी सम्भ्रात हिन्दुओ में शक्ति पूजा प्रचलित थी। फिर भी तेरहवीं से चौदहवीं शती का काल धर्म एव सस्कृति की दृष्टि से सरक्षण युग कहा जा सकता है। पन्द्रहवीं शती में ब्राह्मण धर्म पुन प्रतिष्ठित होने लगा था। अलाउद्दीन होसेन शाह के राजत्वकाल (१४९३ १५१९ ई) में हिन्दू मुस्लिम धर्म के समन्वय का विशेष प्रयास चला। होसेन शाह को बगाल के अकबर की सज्ञा दी जाती है। पन्द्रहवीं शती के अन्त में शाक्त धर्म के साथ पचमकार की क्रिया बगाल मे विशेष प्रचलित थी। सेनयुग से चली आ रही चण्डी पूजा का भी विकास हुआ।

उपेन्द्रनाथ भटटाचार्य ने यह स्वीकार किया कि धर्मभाव बगालियो की मज्जा मे है काम कला की उत्तेजना भी देश की प्रकृति के अनुसार यहा अधिकतर है। अत दोनो

के मिलने मे अधिक समय नहीं लगा। इसलिए सर्वाचीन बौद्ध की सहज साधना वैष्णवो का युगल एव शाक्त तान्त्रिकों के पचत व में योगिनी साधना इत्यादि व्यापार बगाल की नरम माटी में शीघ्र ही पुष्प फल से समृद्ध हो गया। इस तान्त्रिकता के अपव्यवहार के प्रतिक्रिया स्वरूप चैतन्य के भागवत मत का नव आविर्भाव हुआ। (उपे द्रनाथ भटटाचार्य पृ २ ५) सोलहवीं शताब्दी के द्वितीय दशक तक या चैतन्य देव के वैष्णव धर्म प्रचार तक शाक्त तान्त्रिक धर्म एव यौन अनाचार तथा मद्यपान आदि प्रबल रूप में प्रचलित थे।

अब सहजिया वैष्णवों की परिणति को लक्ष्य किया जाना चाहिए। प द्रहवीं शती के प्रथम में बडु डीदास का कृष्ण कीर्तन रचित हुआ। इसके साथ राधाकृष्ण को आधार बनाकर काव्य रचना का प्रयास बढा। कृष्ण कीर्तन के देह मिलन के वर्णन की स्थूलता इस बात का निर्देश करती है कि बौद्ध सहजियो के यौन योग साधना का विशेष प्रभाव रहा है। चण्डीदास की बासली मूलत बौद्ध देवी हैं। सहजिया साधना के रूप मे ही चण्डी दास की साधना सगिनी रजकिनी रामी की कथा लोक प्रसिद्ध हुई।

इसके बाद ही चैतन्य युग का आरम्भ होता है। बगाल के धर्म एव सस्कृति के इतिहास में चैतन्य युग का एक विशेष गुरुत्व था। उनका ज म १४८५ मे हुआ था। १५ ९ ई में २५ वर्ष की अवस्था में उ होने सन्यास ग्रहण किया। बाद में उनसे सम्बद्ध अलौकिक घटनाए लोक प्रचलित हुईं। अत चैतन्य युग १५३ ई से माना जा सकता है।

चैतन्य युग से पूर्व बगाली धर्म एव सामाजिक जीवन की अवस्था पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। इसकी ओर साराश रूप में उपे द्रनाथ भटटाचार्य ने दृष्टिपात किया है।

१ हि दू नस धार का धर्म पौराणिक त त्रिक धर्म था। समाज मे उ च एव मध्य श्रेणी के लोग शक्तिपूजा एव शाक्त मतवाद का अनुसरण करते थे। नाना शक्ति देवियो की पूजा का बगाल में अत्यधिक प्रचलन था। तान्त्रिकों के पचमकारादि नाना क्रिया एव नाना तान्त्रिक गुह्य साधना के अनुष्ठान से बगाल का धर्माकाश आच्छ न था। तान्त्रिक क्रियादि की आनुषगिक उच्छृखल इद्रिय परायणता विशेष रूप मे प्रसारित हुई थी।

२ समाज के उ च श्रेणी एव निम्न श्रेणी मे एक व्यवधान तैयार हुआ था। वर्णाश्रम शासित समाज मे ब्राह्मण आचरणीय था। सत् शूद्र एव अनाचर ीय प्रभृति में ो पार्थक्य सेनयु। की सामाजिक सरचना मे अनुप्रविष्ट हुआ था वह इस युग मे भी विशेष रूप मे रक्षित हुआ था। आ ीय अन चर ीय स स्पा य छत ि मुसलमानो के सस्पर्श से जातिच्युति आदि नाना कठोर सामाजिक रूढिया प्रबल रूप मे चल रहीं थीं। इस कारण बहुत से जातिच्युत हि दुओ ने इस्लाम ग्रहण किया। निम्नश्रेणी के लोग अ ा अशिक्षित एव साधारण धर्म कर्म मे कभी अधिकार नहीं रखते।

२ बहुत पहले से ही जो वैष्णव धर्म [illegible]
में सहजिया वैष्णव रूप में परिवर्तित भी न[illegible]
हुए, इस प्रकार एक क्षुद्र बौद्ध सम्प्रदाय का अस्तित्व [illegible]
देता है। सत्तरहवीं शताब्दी मे वे वैष्णव धर्म में [illegible]तर्भुक्त हुए। ये [illegible]
वीरभद्र द्वारा वैष्णव धर्म मे दीक्षित नेडा नेडी सम्पदाय । (व[illegible] २ [illegible] ९)

चैतन्य देव का मूल धर्म श्रीमद् भागवत के ऊपर प्रतिष्ठित था। [illegible]धर स्वा[illegible] [illegible] के अद्वैत वेदा[illegible]त के साथ आवेगमय भक्तिवाद का मि[illegible]ण [illegible] रूपायित किया। बगाल के गोस्वामियो की व्याख्या के अनसार [illegible] का विशेष प्रभाव लक्षित होता है।

समसामयिक धर्ममत विद्वेष एव विभेद सामाजिक वैषम्य एव अधिकार [illegible] धर्म के नाम पर नाना उच्छृखलता आदि की प्रतिक्रिया रूप मे ही चैत[illegible]य धर्म का आविर्भाव लगता है हुआ था। बगाल के बाहर उत्तर पश्चिम भारत मे [illegible] धर्म का आ[illegible] चला चैतन्य धर्म भी उसका एक अश विशेष था। अवश्य ही इसके भी उद्भव [illegible] एक ही है। परस्पर विरुद्ध धर्म एव सस्कृति का सघात। दोनो वास्तविक रूप मे समस्त भारत की ही समस्या हो गयी थी। इसमे परस्पर विद्वेष एव घृणा की एक अवाछनीय अवस्थिति का उद्भव हुआ था एव हि[illegible]दू समाज की निम्नश्रेणी एक बारगी दलित एव पिष्ट हुई थी।

चैतन्यदेव ने धर्म के विषय मे एक सार्वजनीन आदर्श की प्रतिष्ठा की। ईश्वर में भक्ति एव प्रेम ही इसकी मूल भित्ति थी। ईश्वर के कृष्ण या हरि निकट कोई जातिभेद नहीं हि[illegible]दू एव मुसलमान में प्रभेद नहीं उ[illegible]च एव नीच वर्ग में प्रभेद नहीं। वे भकित सम्प[illegible]न तथाकथित नीच जाति को भक्ति हीन उ[illegible]चवर्ण ब्राह्मण की अपेक्षा भी श्रेष्ठ मानते थे। चण्डालोऽपि द्विजश्रेष्ठ हरि भक्ति परायण । भगवान का स्मरण या हरिनाम कीर्तन ही धर्म पथ की मूल क्रिया थी।

चैतन्य देव के व्यक्तिगत जीवन में त्याग भगव[illegible]प्रेम मे त[illegible]मयता सभी प्राणियो मे दया एवं समदृष्टि सभी [illegible] आसनदान आदि से बहुत से लोग उनके धर्म के प्रति आकृष्ट हुए। हि[illegible]दू समाज के अनेक उपेक्षित एव निर्यातित व्यक्ति उनके वैष्णव धर्म को ग्रहण किए। शाक्त ता[illegible]त्रिकता के नाना [illegible] की आबोहवा मे [illegible] सहज सरल क्रियाहीन हरिनामैव केवलम् ध्वनि उ[illegible]चरित हुई। चैतन्यदेव का भक्तिमूलक धर्म एकदम सर्वसाधारण का धर्म हुआ। बगाली हि[illegible]दू धर्म की आनुष्ठानिक [illegible] हुई। सहज सरल स्वाभाविक भक्ति मूलक वैष्णव धर्म ने भी बगाली ता[illegible]त्रिक धर्म के एक पार्श्व मे स्थान प्राप्त किया।

सामाजिक दृष्टि से भी वैष्णव धर्म ने अनेक उपकार किया। जो नाना कारणो से कोई उपाय न देखकर मुसलमान धर्म ग्रहण करते थे वे चैतन्य देव का धर्म ग्रहण करके हि दू समाज में अन्तर्भुक्त हो गये। चैतन्यदेव के आविर्भाव ने धर्म की दृष्टि से समाज की दृष्टि से जातीय जीवन का अत्यन्त उपकार किया। धर्म एव समाज को उन्होने काफी उदारनीतिक एव गण प्रभावाश्रयी किया था।

चै न्यदेव के हाप्र के बाद के जीवनीका ों ने स्थान एव क मे अवस्थित नुष्य चैतन्यदे को एक र ी भ ब । दि । वृन्दावन दास के चैतन्य भागवत मे कही कहीं नुष्य चैतन्यदेव क ान्य एक थ आभास मि त है। किन्तु परवर्ती जीवनीकार कृष्णदास कवि ज भृति ने एकब गी सपूर्ण रूप से उनको देवता बना दिया। चैतन्यदेव वृन्दावन के श्रीकृष्ण हुए। राधा का प्रेम किस प्रकार का एव अपना माधुर्य ही किस प्रकार का है एव उसका अनुभव करके राधा की जो सुखानुभूति होती है वह सुख कैसा होता है इस विषय को जानने के लोभ से श्रीकृष्ण राधिका के भाव एव कान्ति ग्रहण करके चैतन्यदेव रूप में नवद्वीप में शची के गर्भ से ज म ग्रहण किए। बाद मे गोस्वामी गण ने अनेक व्याख्या के साथ चैतन्य धर्म को गौडीय वैष्णव धर्म के रूप मे प्रतिष्ठित किया।

सोलहवीं सदी के अन्तिम पाद से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य भाग पर्यन्त बगाल का धर्म एव समाज काफी रूपान्तरित हुआ। यह समय सम्राट अकबर से शाहजहा तक का राजत्व काल था। इस समय बगाल के मुसलमान धर्म ने भी एक नूतन प्रेरणा प्राप्त की। तान्त्रिकता भी प्रशमित हुई।

भ्रमणशील साधु एव धर्मप्रचारक गण मुगल विजय के बहुत पहले से ही बगाल मे आना जाना करते थे। किन्तु मुगल युग मे स्रोतधारा की तरह सूफी दार्शनिक एव धर्म प्रचारकगण दरवेश एव औलिया नामधारी साधु गण बगाल मे आने लगे। चैतन्य धर्म ने जिस प्रकार बगाली हि दुओं को काफी सहनशील एव उदार किया था मुगल युग के ये सब दरवेश एव औलिया गण ने भी बगाली मुसलमानों को अपने धर्म की एक नूतन दृष्टिभगी दान की।

मुसलमान जाति में रूपान्तरित बौद्ध सहजिया साधना प्रणाली को अनुसरण करने वाले फकीरो ने सूफियो के साथ अधिक मिलना आरम्भ किया। ये सहजिया फकीर अपनी स ध के प्र । को दबाकर सूफियो से ही मिल आरम्भ किए और वे सूफियो से काफी प्रभावित हुए।

सूफी धर्म करान को अस्वीकार नहीं करता केवल करान की वाणी का भि न प्रकार से अर्थ करता है उसके निगूढ ता पर्य को ग्रहण करता है। अल्लाह ही एकमात्र सत्य है वह केवल स य ही नहीं सौ दर्य एव प्रेम का भी आकर है। प्रेम ही उसका प्रकृत स्वरूप

है। सूर्य जैसे नाना दर्पण मे प्रतिफलित होता है और अनेक दिखाई देता है वह भी इस सृष्टि मे बहुरूप मे प्रतिभासित होता है। बाहर की यह दृश्यमान सृष्टि लोक अ तनिर्हित सत्य का बहि प्रकाश है। सृष्टि के पूर्व अल्लाह के अलावा कोई नहीं था अब भी उसके अलावा कोई नहीं है। वह अनन्त प्रेममय है प्रेम के द्वारा ही उसने अपने बहि प्रकाश की इच्छा की थी। उसने स्वय ही प्रतिच्छवि सृष्ट की वही प्रतिच्छवि आदम या आदि मानव था। आदम अर्थात् मनुष्य ही भ। की प्रतिच्छबि है। मनुष्य मे ही उसका स्वरूप रूपायित है। मनुष्य एक क्षुद्र जगत् है जिसमे भगवान का समस्त गुण एव अवस्था निहित है। मनुष्य से होकर ही भगवान अपने अस्तित्व का सम्यक परिचय पाता है खुद की उपलब्धि करता है। इ सान उल कामेल या पूर्ण मानव में भगवान का समस्त स्वरूप विकसित है। मनुष्य जब अपने साधारण लौकिक अश (नासूत) को ध्वस करके अपने ईश्वरीय अश (लाहूत) मे अवस्थित हो पाता है तब वह भगवान के साथ एक हो सकता है। सृषि के व्यक्त रू से ही उर्ध्व। न क क अव्यक्त रूप मे मिल जान निर्भर करता है की भी अ द लब्धि क ऊ ८। इसी उपलब्धि के द्वारा पूर्ण मानवत्व प्राप्त होता है एव मनुष्य भगवत् सत्ता मे रूपान्तरित होता है। सूफी धर्म एव फकीरी धर्म मे देह मे परमतत्व का वास आ मोपलब्धि मूलक साधना धर्म के आनुष्ठानिक क्रियाकलापादि के त्याग प्रभृति विषयो मे काफी सादृश्य है। लगता है विशेष रूप मे सूफी प्रभावित ये मुसलमान नेडा या बे शरा फकीर ही बगाल मे बाउल धर्म साधना के आदि प्रवर्त्तक हैं। इनका प्रभाव परवर्ती युग में बाउल धर्म के वैशिष्टय में रूपायित हुआ है।

वज्रयानी बौद्धो ने वज्रस व को देहस्थित त व या बोधि चित्त रूप में मानने पर भी उसे हि दुओ के भगवान रूप में ही क पित किया है किन्तु सह नी कोई दे ता हीं म नते केवल देहस्थित त व एव योग प्रक्रिया को ही ग्रहण करते हैं। सहजयानियों का एक अश राधाकृष्ण को प्रकृति पुरुष मानकर सहजिया वैष्णव रूप मे था और एक छोटा अश मुसलमान होकर भी सहजिया साधना को बनाए रखा था। इ हे ही नेड़ा या बे शरा नाम से अभिहित किया जाता है। किन्तु ये देह स्थित त व को व्यक्तिगत भगवान रूप मे कल्पना करके उसके प्रति दैन्य आर्ति आदि को व्यक्त करते हैं एव उसकी करुणा की प्रार्थना करते है। यह वैशिष्टय मुसलमान एव हि दू रचित समस्त बाउलगान में ही वर्तमान है। बाउलधर्म मे योगमूलक क्रिया के साथ हृदयवेग मूलक अश वर्तमान है। इसका कारण सूफी प्रभाव है। सोहवादी सूफी मनसूर भी व्यक्तिगत भगवान के निकट दोया अर्थात करुणा प्रार्थना एव मोनाजात अर्थात् प्रेमपूर्ण आ मनिवेदन किए हैं। फकीरो के ऊ र का यह सूफी प्रभाव हि दू बा लो के ऊपर क्रमित हुआ है। परमत व या परमा मा एक बारगी करुणामय भगवान हुए है।

सामाजिक दृष्टि से भी वैष्णव धर्म ने अनेक उपकार किया। जो नाना कारणों से कोई उपाय न देखकर मुसलमान धर्म ग्रहण करते थे वे चैतन्य देव का धर्म ग्रहण करके हि दू समाज में अन्तर्भुक्त हो गये। चैतन्यदेव के आविर्भाव ने धर्म की दृष्टि से समाज की दृष्टि से जातीय जीवन का अत्यन्त उपकार किया। धर्म एव समाज को उन्होंने काफी उदारनीतिक एव गण प्रभावाश्रयी किया था।

चै न्यदेव के हाप्रया के द नके जी नीक रों ने स्थान एव काल में अवस्थित मनुष्य चैतन्यदे को एक रगी भ न ब दिया। वृन्दावन दास के चैतन्य भागवत मे कही कहीं नुष्य चैतन्यदेव का मान्य एकाध आभास मिलती है। किन्तु परवर्ती जीवनीकार कृष्णदास कविराज प्रभृति ने एकबार ा सपू ि रूप से नको देवता ब दिया। चैतन्यदेव वृन्दावन के श्रीकृष्ण हुए। राधा का प्रेम किस प्रकार का एवं अपना माधुर्य ही किस प्रकार का है एव उसका अनुभव करके राधा की जो सुखानुभूति होती है वह सुख कैसा होता है इस विषय को जानने के लोभ से श्रीकृष्ण राधिका के भाव एव कान्ति ग्रहण करके चैतन्यदेव रूप में नवद्वीप में शची के गर्भ से ज म ग्रहण किए। बाद मे गोस्वामी गण ने अनेक व्याख्या के साथ चैतन्य धर्म को गौडीय वैष्णव धर्म के रूप मे प्रतिष्ठित किया।

सोलहवीं सदी के अन्तिम पाद से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य भाग पर्यन्त बगाल का धर्म एव समाज काफी रूपान्तरित हुआ। यह समय सम्राट अकबर से शाहजहा तक का राजत्व काल था। इस समय बगाल के मुसलमान धर्म ने भी एक नूतन प्रेरणा प्राप्त की। ता त्रिकता भी प्रशमित हुई।

भ्रमणशील साधु एव धर्मप्रचारक गण मुगल विजय के बहुत पहले से ही बगाल मे आना जाना करते थे। किन्तु मुगल युग में स्रोतधारा की तरह सूफी दार्शनिक एव धर्म प्रचारकगण दरवेश एव औलिया नामधारी साधु गण बगाल में आने लगे। चैतन्य धर्म ने जिस प्रकार बगाली हि दुओ को काफी सहनशील एव उदार किया था मुगल युग के ये सब दरवेश एव औलिया गण ने भी बगाली मुसलमानो को अपने धर्म की एक नूतन दृष्टिभगी दान की।

मुसलमान जाति में रूपान्तरित बौद्ध सहजिया साधना प्रणाली को अनुसरण करने वाले फकीरों ने सूफियो के साथ अधिक मिलना आरम्भ किया। ये सहजिया फकीर अपनी साधना के प्रसग को दबाकर सूफियो से ही मिलना आरम्भ किए और वे सूफियों से काफी प्रभावित हुए।

सूफी धर्म करान को अस्वीकार नहीं करता केवल करान की वाणी का भि न प्रकार से अर्थ करता है उसके निगूढ ता पर्य को ग्रहण करता है। अ लाह ही एकमात्र स य है वह केवल सत्य ही नहीं सौ दर्य एव प्रेम का भी आकर है। प्रेम ही उसका प्रकृत स्वरूप

है। सूर्य जैसे नाना दर्पण मे प्रतिफलित होता है और अनेक दिखाई देता है वह भी इस सृष्टि में बहुरूप में प्रतिभासित होता है। बाहर की यह दृश्यमान सृष्टि लोक अन्तर्निहित सत्य का बहि प्रकाश है। सृष्टि के पूर्व अल्लाह के अलावा कोई नहीं था अब भी उसके अलावा कोई नहीं है। वह अनन्त प्रेममय है प्रेम के द्वारा ही उसने अपने बहि प्रकाश की इच्छा की थी। उसने स्वय ही प्रतिच्छवि सृष्ट की वही प्रतिच्छवि आदम या आदि मानव था। आदम अर्थात् मनुष्य ही भगवान की प्रतिच्छबि है। मनुष्य मे ही उसका स्वरूप रूपायित है। मनुष्य एक क्षुद्र जगत् है जिसमे भगवान का समस्त गुण एव अवस्था निहित है। मनुष्य से होकर ही भगवान अपने अस्तित्व का सम्यक परिचय पाता है खुद की उपलब्धि करता है। इन्सान उल कामेल या पूर्ण मानव में भगवान का समस्त स्वरूप विकसित है। मनुष्य जब अपने साधारण लौकिक अश (नासूत) को ध्वस करके अपने ईश्वरीय अश (लाहूत) मे अवस्थित हो पाता है तब वह भगवान के साथ एक हो सकता है। सृष्टि क व्यक्त रू से ही र्ध्व न करक अव्यक्त रू मे मिल जा निर्भर क ता है व की ।भी अ द लब्धि के ऊ र। इसी उपलब्धि के द्वारा पूर्ण मानवत्व प्राप्त होता है एव मनुष्य भगवत् सत्ता मे रूपान्तरित होता है। सूफी धर्म एव फकीरी धर्म में देह मे परमतत्व का वास आत्मोपलब्धि मूलक साधना धर्म के आनुष्ठानिक क्रियाकलापादि के त्याग प्रभृति विषयो मे काफी सादृश्य है। लगता है विशेष रूप मे सूफी प्रभावित ये मुसलमान नेडा या बे शरा फकीर ही बगाल मे बाउल धर्म साधना के आदि प्रवर्त्तक हैं। इनका प्रभाव परवर्ती युग मे बाउल धर्म के वैशिष्ट्य मे रूपायित हुआ है।

वज्रयानी बौद्धो ने वज्रसत्व को देहस्थित तत्व या बोधि चित्त रूप मे मानने पर भी उसे हिन्दुओ के भगवान रूप मे ही कल्पित किया है किन्तु सह ।नी कोई देवता नहीं मा ते के ल देहस्थित त ९ यो। प्रक्रिया को ही ।ह । करते हैं। सहजयानियो का एक अश राधाकृष्ण को प्रकृति पुरुष मानकर सहजिया वैष्णव रूप मे था और एक छोटा अश मुसलमान होकर भी सहजिया साधना को बनाए रखा था। इन्हे ही नेडा या बे शरा नाम से अभिहित किया जाता है। किन्तु ये देह स्थित तत्व को व्यक्तिगत भगवान रूप मे कल्पना करके उसके प्रति दैन्य आर्ति आदि को व्यक्त करते हैं एव उसकी करुणा की प्रार्थना करते हैं। यह वैशिष्ट्य मुसलमान एव हिन्दू रचित समस्त बाउलगान में ही वर्तमान है। बाउलधर्म मे योगमूलक क्रिया के साथ हृदयवेग मूलक अश वर्तमान है। इसका कारण सूफी प्रभाव है। सोहवादी सूफी मनसूर भी व्यक्तिगत भगवान के निकट दोया अर्थात करुणा प्रार्थना एव मोनाजात अर्थात् प्रेमपूर्ण आत्मनिवेदन किए हैं। फकीरो के ऊपर क यह सूफी प्रभाव हिन्दू बा लो के ऊप स मित हुआ है। परमतत्व या परमात्मा एक बारगी करुणामय भगवान हुए हैं।

सोलहवीं सदी के अत से सत्रहवीं सदी के प्रथम भाग तक अन्तत तीस वर्ष तक (अनुमानत १५८ १६१ ई) इस फकीर सम्प्रदाय ने इस सहजिया भावधारा एव साधना प्रणाली को प्रचलित रखा।

इसके बाद ही वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय नूतन शक्ति एव प्रेरणा लेकर बगाल के धर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। पहले के सहजिया वैष्णवो की एक क्षीण धारा चल रही थी। प्रज्ञा उपाय के स्थान पर राधा कृष्ण को वे प्रकृति पुरुष रूप मे ही ग्रहण किये थे। हि दू तात्रिको के शिव शक्ति के साथ मूर्ति निरपेक्ष रूप मे उनका मेल भी था। वैष्णव रूप में हि दू समाज के एक कोने में कछ स्थान भी था ऐसा अनुमान किया जाता है। किन्तु यह क्षीण धारा दीर्घकाय नदी में परिणत हुई जिसका कारण चैतन्यदेव का अविर्भाव एव गौडीय वैष्णवों का उद्भव है।

चैतन्य प्रवर्तित धर्म का मूलरूप श्रीमद्भागवत एव रामानुज माधव निम्बार्क वल्लभाचार्य प्रभृति सम्प्रदाय के धर्ममत के सम वय से निर्मित है फिर भी एक विषय मे चैतन्य धर्म का एक विशेष स्वात त्र्य सबको आकर्षित करता है। वह है कृष्ण की शक्ति रूप मे धा की प्रतिष्ठा (र क मह। ।ो म स्था क अधिकार। कृष्ण ही मूल परमत व हैं राधा उनकी अतरग शक्ति शक्ति एव शक्तिमान रूप मे अग्नि एव दाहन गुण रूप में वे अच्छेद्य हैं। गौडीय वैष्णव धर्म की राधा का यह परम प्राधान्य दो प्रभाव से उद्भूत हुआ। एक पूर्ववर्ती सहजिया वैष्णवो का प्रभाव दूसरा हि दू शक्तिवाद का प्रभाव। सहजिया वैष्णवों के परकीयावाद का प्रभाव चैतन्य धर्म पर पडा। इस क्रम मे चैतन्य धर्म मे राधा का परकीया व ग्रहण किया गया।

रू ।ोस्व मी ने अ ने ज्ज्व नीलमणि ।थ मे कृष्ण ल्लभा अध्याय मे कृष्ण व लभाओ को स्वकी (कीया रू मे विभाजित कि । है। ब्रज की गोपियो को उ होने परकीया वल्लभा कहा है।

चैतन्य देव के आविर्भाव एव चैतन्य चरितामृत ग्रथ के प्रकाशन के बाद पहले के सहजिया वैष्णव गण एक प्रबल अनुप्रेरणा प्राप्त किए। अनुप्रेरणा का कारण हुआ उनके आचरित धर्म के साथ गौडीय वैष्णव धर्म का अनेक सादृश्य। गोस्वामी गण के काम क्रीडा साम्य कहने पर भी साधारण लोग राधा कृष्ण की लीला मे प्राकृत प्रेम का वैचित्र्य एव माधुर्य ही देखते हैं। चैतन्य धर्म का राधाकृष्णवाद उनके प्रकृति पुरुषवाद की तरह परकीयावाद का ग्रहण कृष्ण प्रेम का विषय राधिका आश्रय कृष्ण साक्षात श्रृगार निरतर कामक्रीडा रत उनका चरित आदि का वर्णन उनके मत के विशेष अनुकल था। सहजिया वैष्णवो ने इस प्रेम को अपनी धर्म साधना के साथ युक्त किया। सह ा साधना में प्रेम की एक प्रधान भूमिका निर्दिष्ट हुई।

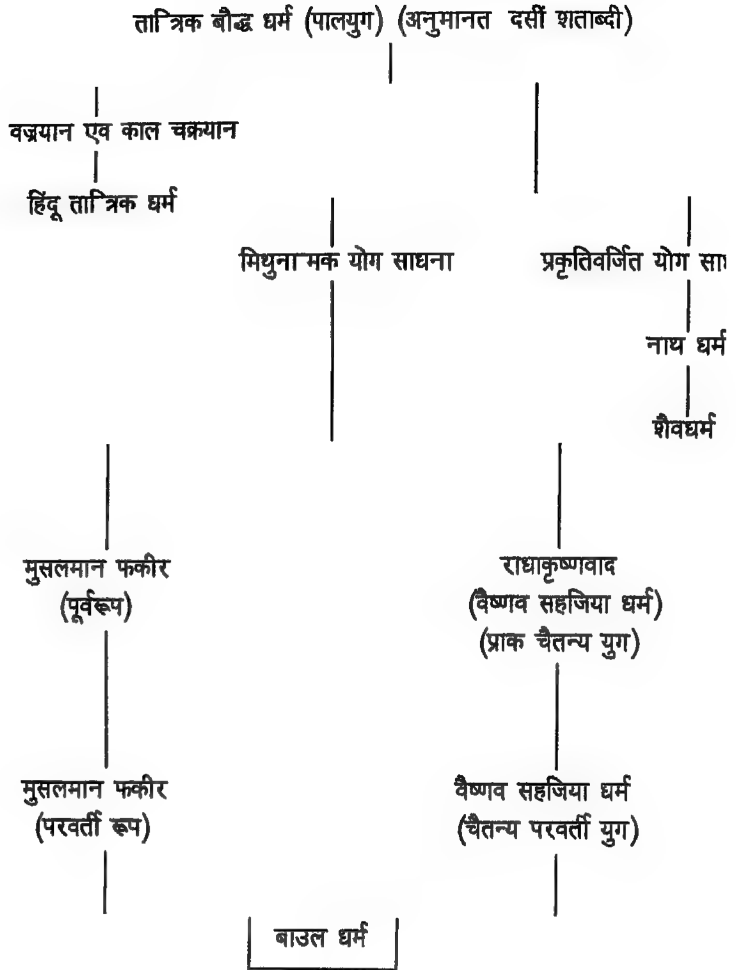
सहजिया वैष्णवो का परम मत एक अद्वय महानद स्वरूप था। इसी अद्वय त व की दो धारा थी एक कृष्ण और दूसरी राधा एक पुरुष एव दूसरी प्रकृति। इस दोनो धारा का प्रेम मिलन या युगल मिलन ही परमत व है। यही युगल मिलन ही महाभाव रूप सहज की बस्ती है। जगत मे नर नारी में यही कृष्णत व एव राधात व रूपायित है। स्वरूप मे वे कृष्ण और राधा हैं। इसी उभय मिलन मे जो असीम आनदानुभूति है वही साधना का चरम लक्ष्य है। बौद्ध सहजिया गण जिसे प्रज्ञा उपाय मिलन जनित महासुख कहता है हि दू तत्र मे शिव शक्ति के सामरस्य जनित जो केवलानद उपलब्धि है वैष्णवों का राधा कृष्ण मिलन जनित उसी महाभाव की अनुभूति है।

पहले के मुसलमान फकीर जो सूफी धर्म के द्वारा वाह्यत प्रभावित हुए थे वे सहजिया वैष्णव धर्म के द्वारा प्रकृत रूप मे प्रभावित हुए। सूफी धर्म के साथ उनकी साधना का मेल नहीं था सहजिया वैष्णवो की स ५ की ध ५क थी। इसके बाद सहजिया वैष्णवो का प्रेम धर्म ५व चैतन्य रितामृत क प्र नके ऊ र नू ज्य था।

क्रमश एक ही मतवाद के एव एक ही साधनापद्धति के हिंदू एव मुसलमान जाति के क नी स धन मे कि ने वैशि७ट को ग्रह । कि५। उनके वैशिष्टय समन्वित दोनों जाति की मिलित साधना ही बाउल साधना है। इस वैशिष्टय मे दो प्रधान हैं। एक साधना सगिनी प्रकृति की शारीरिक एव मानसिक एक विशेष अवस्था मे योग साधना एव उसका महायोग नाम से ग्रहण। दूसरा चारिचन्द्र भेद। यह चारिचद्र भेद नि संदेह काया साधना या सहज सिद्धि की साधना से बाउल धर्म में गृहीत हुआ है। मुसलमान फकीर बौद्ध सहज साधना की धारा को बहुत दिन से गुप्त रखते आ रहे थे। यह बाउल धर्म को मुसलमान फकीरों से प्राप्त हुआ था।

अनुमानत १६२५ ई से आरम्भ करके १६७५ ई तक मे बाउलधर्म एक पूर्ण रूप लेकर आविर्भूत हुआ। इस धर्म के तत्व एव दर्शन को जानने के लिए कोई स्वत त्र ग्र थ नहीं है। साधारण रूप में वैष्णव सहजियों के नाना ग्र थ के तत्व एव दर्शन ही बाउल धर्म के त व एव दर्शन हैं। चण्डीदास के पदो एव अकिचनदास के विवर्त विलास से अधिकाश जानकारी मिलती है। बाउल लोचन दास के वृहत् निगम को अपने धर्म का प्रमाणिक ग्र थ मानते हैं। बाउल गानो मे ही विशेष रूप मे इस धर्म के तत्व दर्शन एव साधना पद्धति का विषय जाना जाता है। गानो मे साधना पद्धति की कथा ही अधिक पायी जाती है। फिर भी इसके आनुषगिक त व के सम्ब ध में भी एक सुस्पष्ट धारणा पायी जाती है। वस्तुत बाउल साधना चैतन्योत्तर सहजिया का व्यावहारिक पक्ष या क्रिया रूप है।

उपे द्र नाथ भटटाचार्य ने बगाल मे धर्म के क्रम विकास मे बाउल धर्म के स्थान का निम्नवत् निर्देश किया है



(अनुमानत १६२५ १७७५ ई के बीच उद्भव)

●



শিল্পী   শ্রীসত্যে নাথ বন্দ্যোপাধ্যায়

शिल्पी   श्री सत्येन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय



[श्री] "भिममाग व ८

शिल्पी श्री नन्दलाल बसु



শিল্পী শ্রীনন্দলাল বসু

शिल्पी श्री नन्दलाल वसु

बाउल धर्म की सम्प्रदाय रचना के सन्दर्भ मे सोमेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय का विचार दृष्टव्य है। साहित्यिक भाषा मे उन्होंने इसका निदर्शन किया है। जगत् की समालोचना और निन्दा को अग्राह्य करके और उपहास की उपेक्षा करके जीवन मुक्ति का दल यायावर गायक दल में परिणत हुआ था। भ्रमणशील बाउल मात्र आनन्द मे गान गाते घूमते हैं यही गान ही उनकी पूजा है। वे कहे हैं

आमार पूजा गाने गाने चलछे ताई।
(हमारी पूजा गाने गाने में चल रही है)

यह गान सुदूर प्यासे प्रवासी पथिक का गान है। इसीलिए एकतारा इनका सहचर है। उस गान की नौका को खेते हुए बाउल कालातीत रूपातीत अरूप के मन्दिर मे अपने बहुवाछित तीर्थ क्षेत्र मे अप्राप्य के अन्वेषण मे चलता है। इस तीर्थयात्री का दल ही बाउल सम्प्रदाय है।

बाउल सम्प्रदाय का प्रकृत अर्थ सुस्पष्ट भाव से समझ लेना आवश्यक है। इसका अर्थ इतना ही नहीं है कि जीवन मुक्त जन ने दलबद्ध होकर एक सम्प्रदाय की सृष्टि की वस्तुत गोष्ठी सृष्टि मे वे एकान्त व से निष्क्रिय है। प्रजोजन बस उन्होने सम्प्रदाय की सृष्टि नहीं की। परतु ससारी व्यक्ति के द्वारा बाउल नाम आरोपित हो गया। गौण रूप में सम्प्रदाय का भाव उत्पन्न हो गया। अर्थात् बाउल सम्प्रदाय नाम गोष्ठी मुक्तो द्वारा प्रत्यक्ष सृष्टि नहीं है गोष्ठी से बाहर के लोगो द्वारा परोक्ष आरोपण है। (बागलार बाउल काव्य ओ दार्शन प्रो सोमेन्द्र नाथ वन्द्योपाध्याय पृ ११)

बाउल धर्म और तत्र के सम्बन्ध को अस्वीकार करते हुए प्रो सोमेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय ने जो चर्चा की है उससे स्पष्ट होता है कि बाउल धर्म कर्म के प्रति अनासक्ति का धर्म है। एक म्बे ध्दर में के वि र को यहा प्रस्तुत कर । भीची जान पडता है। कोई कोई बाउल सम्प्रदाय के साथ तान्त्रिक सम्प्रदाय के मेल की कल्पना करते हैं। बाउल तत्र साधक भी उसी मत का पोषण करते हैं। हमे लगता है कि यह धारणा भ्रान्ति मूलक है इस अनुमान के पीछे कोई युक्ति नहीं है। कारण कि तत्र और बाउल दोनो का धर्म पृथक और स्वरूप स्वतत्र है। दोनो को समगोत्री नहीं समझा जा सकता। तत्र की अलोच ।क के दे ते हैं कि क्रिया विशे के विशि अनुष्ठान द्वारा विशेष फल लाभ करना ही उनका उद्देश्य है। यही इस साधना की मूल कथा है। कर्म द्वारा फल प्राप्ति ही तान्त्रिक प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के पीछे अहकार है। वस्तुत ससार के फललाभ में वासना की उपस्थिति अहकार की उपस्थिति को ही रक्षित करती है। अहकार के रहते ही प्रयोजन बोध रहता है अभाव अनुभूत होता है। उस अभाव की पूर्ति के लिए फलाकाक्षा मय कर्म लिप्तता आती है। किन्तु ।त्रिको की मुक्ति साधना कर्मभित्तिक आचार निष्ठ है। उनका विश्वास है कि आचार आचरण क्रियाकाण्ड और तत्र मत्र ही

ˉमलाभ मे सहायक है।

ारी तरफ बाउल कर्मकाण्ड के गुरु व को इस प्रकार स्वीकृति नहीं देते हैं। वे जानते कि जीव की मुक्ति अहकार भित्तिक प्रयास सापेक्ष नहीं है। इसलिए कर्म के प्रति ासक्ति ही बाउल धर्म का सार है। यह गीता उपनिषद के साथ अभि न मत है। कर्म ेष के अनुष्ठान द्वारा आ म लाभ होता है बाउल इस बात पर विश्वास नहीं करते। नका पथ सहज साधना का पथ है। उनका फलासक्तिहीन सहज कर्म है वह कर्मपथ ल है। बाउलो के साथ तत्रशास्त्र और तत्र साधना का कोई सयोग है यह रणा निराधार है।

ं शास्त्र के सा अ म्य ही ब ल नामक के मू में प्रधान । ॰ मे वि । तत्र मे क्रियाकाण्ड का प्राधान्य है वह साधना प्रक्रिया कर्मज है। अथच बाउल धर्म उसकी अस्वीकृति घोषि होने के कार स्वभावत तान्त्रिक सम्प्रदाय उसे अच्छी दृष्टि नहीं देखता। बाउल अपवाद इसका ही फल है। ससार मे साधारण ससारी व्यक्ति के न में प्रीति एव कर्म में उसके मन का विश्वास है। इसीलिए तत्र में कर्म द्वारा फल प्ति का निर्देश ससार में व्यक्तिमन मे सहज में रेखापात करता है यह निर्देश ससारी न के लिए विशेष मनोनुकल है। इसीलिए व्यक्तिम मे तत्र क प्र व से अनेक धेक है। इस प्रभाव में अविश्वासी बाउल सम्प्रदाय बालुल है।

(प्रो सोमे द्रनाथ वन्द्योपाध्याय पृ ११ १३)

ाम अध्याय की आलोचना से ज्ञात हुआ था कि बाउल धर्म एक ऐतिहासिक विकास की ी है। बगाल के धर्म म्प्रदायों के विक की ही एक परि ति है ल धर्म। प्रोफेसर मे द्रनाथ जितना भी कहें कि यह धर्म अनासक्त धर्म है। किन्तु बौद्ध तत्र हिन्दू तत्र त्र शाक्त सहजिया वैष्णव भक्ति वैष्णव भक्ति एव सूफी धर्म एव त व के समन्वय प्रभाव की प्रक्रिया में ही बाउल धर्म का उद्भव हुआ। तान्त्रिक योग क्रिया मक धर्म रूप मे बाउल धर्म प्रेम को भी सूक्ष्म एव स्थूल देह की सत्ता से जोडता है। वह एक णव की तरह पूर्णत अनुभूतिक अनुमानाश्रित प्रेम भी नहीं है है प्रत्यक्ष क्रिया मक ापरक साधना।

ई भी धर्म अपनी उपासना पद्धति से ही जाना जाता है। किसी धर्म को जानने के ए उसके स्वरूप को जानना आवश्यक है। ब धर्म के ानों क वि ले । करके उसकी वस्तु स्थिति को समझा जा सकता है।

ो द्रनाथ भटटाचार्य ने अपनी पुस्तक बगलार बाउल ओ बाउल गान के तृतीय ध्याय में बाउल धर्म में उपादानो की चर्चा की है। उ होने निम्नलिखित पाच उपादानों चर्चा की है।

१ वेद वहिर्भूत धर्म
२ गुरुवाद
३ स्थूल मानवदेह का गौरव भाण्ड ब्रह्माण्डवाद
४ मन का मानुष
५ रूप स्वरूप त व (पृ २९१)

१ वेद वहिर्भूत धर्म

बाउल धर्म वेद वहिर्भूत धर्म है एव इस धर्म साधना में वेद विधि का त्याग करना होगा इस प्रकार का भाव अनेक गानों में व्यक्त हुआ है। वेद विधि अर्थ में बाउल अनेक स्थल पर चिराचरित आनुष्ठानिक धर्म समझते हैं। उनका आचार राग (प्रेम) का आचार है वेद का आचार नहीं है। आनुष्ठानिक धर्म प्रकृत सत्य का सधान नहीं दे पाता मानव जीवन के मूल त व का निर्णय नहीं कर पाता। लालन के एक गाने में है

कार वा आमि के बा आमार
आसल वस्तु ठिक नाहि तार
वैदिक मेघे घोर अधकार
उदय होय ना दिनमणि। (उ न भ वही पृ २९१)

वेदान्तुमोदित नाना आनुष्ठानिक धर्म के अर्थहीन अनुष्ठान मे प्रकृत सत्य नहीं पाया जा सकता। इसी मूल्यहीन गतानुगतिक धर्म के अनुष्ठान सर्वसत्ता में चारो ओर जो अधकार में आच्छ न हो गया है प्रकृत ज्ञान का सूर्य उदित नहीं होता एव प्रकृत धर्म का सधान भी कोई नहीं करता। मुसलमान फकीरों ने वेदविधि के नाम पर अपने आनुष्ठानिक शरीयत धर्म को समझाया है।

एक गूढ साधना त व विषयक गाने मे लालन ने कहा है

पचवाणेर छिले केटे
प्रेम यज स्वरूपेर हाटे
सिराजसाई वले रे लालन
वैदिक वाणे करित ने रण
वाण हाराये पडवि तखन
रण खोलाते हुवडि।। (वही पृ २९१)

मदन के पचवाण मदन मादन शोषण स्तम्भन एव सम्मोहन हैं। इसी पचवाण की शक्ति से ससार में काम घटित व्यापार सघटित हुआ है। ससार के साधारण भोग मूलक काम के क्षेत्र मे ही मदन का पूर्ण प्रभाव प्रकटित है। कि तु लन के ु० सिराजस ई क निर्दे। यह है कि मदन के वाण निक्षेपकारी धनुष की प्र यचा को काट देना होगा। केवल भोग

क काम के कारबार को न करके देह के उर्ध्वगत स्वरूप त व का अवलम्बन करके की साधना करनी होगी। कामरिपु को जय करके इस स्वरूप त व मे इस सूक्ष्म कृत देहोत्तीर्ण प्रेम के क्षेत्र में उठना होगा। बाउलो की साधना ही काम मे से ही का निष्कासन करना है काम के विष को नाश करके प्रेम के अमृत को प्राप्त करना इसीलिए देह भोग के क्षेत्र मे काम के साथ एक गुरुत्तर अवश्यभावी युद्ध की सम्भावना है। इस साधन समर मे साधक का वाण या युद्धास्त्र अति शक्तिशाली एव अव्यर्थ ा आवश्यक है न होने पर इतने बडे भीषण शत्रु के साथ युद्ध मे पराजय अनिवार्य किन्तु वैदिक वाण लेकर युद्ध करने पर युद्धक्षेत्र मे पराजित होकर भूमि शय्या ग्रहण ना होगा।

वैदिक वाण का मतलब क्या है ? देह मिलन मे काम ही काम का चरम परिणाम यही चिराचरित साधारण मत एव व्यवस्था है। रिपु की उत्तेजना से नर नारी के मिलन एव उसके द्वारा ही उसकी आकाक्षित तृप्ति एव सन्तान की सृष्टि। केवल काम प्रवर्तित देह मिलन एव उसके द्वारा सन्तान प्राप्ति की रीति ही वैदिक वाण है। ाज साई कहते हैं यह नीति अवलम्ब करके युद्ध क ने प क म रिपु के हाथो निश्चित जित होना होगा। ब जो ।। लेकर युद्ध करे ि सी वा। प्रयोग का कौशल तो रति का विसर्जित नहीं अ ल प्रतिष्ठ में निम्न मी कर नहीं अर्ध्वगामी करना अत वह साधारण रीति नहीं है। प्रवृत्ति से होकर निवृत्ति ही बाउलों का लक्ष्य मे से प्रेम आ र ही इ क दे थ। इस प्रकार वे देहोत्तीर्ण होकर स्वरूप त व उपनीत होंगे।

स ोक्ष के लिए कृति परिहार क हो। प्रकृति सृष्टि हुई है केवल ा उपभोग के लिए एव सन्तान जनन के लिए यह जो प्रचलित धारणा है इसे ही लालन सम्मत मत कहते हैं। बाउलो का मत है कि प्रकृति सग काम मदन के लिए परम ानुभूति के लिए पुरुष एव प्रकृति के यथार्थ स्वरूप उपलब्धि के लिए है। लालन के और गाने मे अनुरूपभाव है

पचवाणेर छिले
प्रेमेर अस्त्रे काटिले
फकीर लालन वले काम जाय मारा।। (पृ २९३)

ान ने और एक गाने मे कहा है

वेदे कि तार मर्म जाने।
जेरूप साईर लीला खेला।
आछे एइ देह भुवने।।
पचत व वेदेर विचार

पण्डितेरा करेन प्रचार
मानुष त व भजनेर सार
वेद छाडा वै रागेर माने। (पृ २९३)

इस देह रूप भुवन मे साई की (परमा मा या भगवान के) अवस्थिति एव तथता मे उसकी विचित्र लीला के रहस्य से वेद अवगत नहीं है। वेद या इस चिराचरित आनुष्ठानिक धर्म के पण्डित गण नाना तत्वो का वर्णन किए हैं। वे नहीं जानते कि मानुष भजन या देह का ही आश्रय करके साधना ही सर्वश्रेष्ठ है। इस राग के भजन के साथ वेद मूलक धर्म का कोई सम्ब ध नहीं है।

लालन ने एक और गाने मे कहा है कि वैदिक धर्म मे पाप पुण्य की कथा है। पुण्य के फल से लोग स्वर्ग मे जाते हैं किन्तु पु क फल प्राप्त हो ।ने पर पु उ हे मर्त्यलोक में लौट आना पडता है। (क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोक च विशन्ति)। अत ज म मृत्यु के हाथ से दूर होने की बात इसमें नहीं है।

एवार कि साधने शमन ज्वाला जाय।
धर्माधर्म वेदेर मर्म शमनेर विकार ताय।।
दान व्रत तप यज्ञ क रे
पुण्येर फल से पेते पारे
से फल फराले तारे
घूरिते फिरिते हाय।।
निर्वाण मुक्ति सेधे से तो
लय हवे पशुर मतो
साधन करे एमन प्राप्त
कि सुखे साधक चाय।। (वही पृ ३९)

लालन ने एक और गाने मे वैदिक मूर्खता में न भूलकर प्रेम के घर मे रहकर मन के मानुष की खोज को जानने के लिए कहा है

जान गे मानुषेर करण किसे हय।
भुलो ना मन वैदिक भोले
रागेर घरे ओ। (वही पृ २९४)

इसी प्रकार अनेक गाने मे बाउल धर्म वेद पुराण के धर्म या श्रुति स्मृति मूलक धर्म या प्रचलित अनुष्ठानिक धर्म से सम्पूर्ण पृथक है एव इसकी साधना प्रणाली भी स्वतत्र है। ऐसे अनेक पद अनुवाद के साथ द्वितीय खड मे मिलेगे।

निश्चय ही तत्र धर्म के रूप मे बाउल धर्म भी वैदिक धर्म का विरोधी रहा है। यही उसकी

न्तिकारी एव सार्वजनीन विचारधारा का भी पोषक रहा है। वे वैसी साधना को स्वीकार ीं करते। बाउल काव्य की प्रासगिकता के स दर्भ मे इसकी चर्चा होगी। तत्र धर्म ही देक ब्राह्मण धर्म के विरोधी रहे हैं। यह वेद निदा बौद्ध तान्त्रिकों हि दू तान्त्रिको सूफियो ा सहजिया वैष्णवो आदि के काव्य में मिलती है। इन वेद विरोधी धर्मों के समन्वय ही बाउल धर्म का उद्भव हुआ है। सभी तत्र धर्म ही आर्येतर रहे हैं और उनको सामन्ती ह्मण वैदिक धर्म का विरोध करना पडा है। सहजिया वैष्णवो ने भी वेद विधि का रोध किया। बाउल धर्म ने भी अपने उपजीव्य साम्प्रदायो से विरासत में यह वेद रोध पाया और उसे अपने ढग से अभिव्यक्ति दी। आनुष्ठानिक धर्म के प्रति विद्वेष प्रकट रना भी उसकी रचना का मूल प्रतिपाद्य है।

गुरुवाद

रत में कोई भी धर्म केवल शुद्ध ज्ञान रूप मे व्यक्त नहीं होता या मात्र दार्शनिक मत सूक्ष्म भाव स्वरूप मे परिवेशित नहीं होता। प्र येक आध्या मिक त व की जीवन में लब्धि की गयी है उसी उपलब्ध सत्य ने ही धर्म त व रूप में आ मप्रकाश किया है। वन में अनुष्ठित कर्मद्वारा परीक्षित एव अभिज्ञता द्वारा समर्थित न होने पर कोई त व मत चरम आध्या मिक सत्य रूप मे परिगणित नहीं हो पाया। अत भारत मे प्रत्येक र्म मे ही ज्ञान दर्शन मनन अश के अलावा एक व्यावहारिक या क्रियामूलक साधनाश इस क्रिया या साधना द्वारा उस धर्म के सत्य की उपलब्धि की जाती है। जो क्रिया साधना करके अपनी अभिज्ञता के द्वारा आध्या मिक सत्य को प्राप्त करते हैं वे ही ा धर्म के त वज्ञ मर्मज्ञ एव क्रिया विशारद हैं। यही गुरु ही अन्यान्य को उसके धर्म मत एव पथ मे ले जा पाते हैं। भारतीय धर्म साधना मे इसी से गुरु की इतनी आवश्यकता माहा म्य है। गुरु के बिना धर्म के मूल रहस्य मे प्रवेश नहीं किया जाता । वैदिक से भारत का धर्म गुरु शिष्य परम्परा में चला आ रहा है।

द्रनाथ भटटाचार्य मानते हैं कि तान्त्रिक क्रिया प्रधान धर्मो में गुरु का स्थान सर्वो च बाउल धर्म को उन्होने क्रिया साधना मक माना है। प्रोफेसर सोमे द्रनाथ ने बाउल को कर्म अनासक्त कहा है। इसकी चर्चा की जा चुकी है। उपेन्द्रनाथ भटटाचार्य व्याख्या बाउल धर्म को तत्र साधना से जोडने की व्याख्या है जबकि सोमे द्र द्योपाध्याय उसकी निष्कर्मता के स दर्भ मे क्रिया निरपेक्ष बताने की चेष्टा करते हैं। त्रक प्रक्रि मे लेते हु पे थ ने धर्म के ु की व्य य की है। बगाल बाउल गुरु को सर्वो च स्थान देते हैं। वे गुरु को दो रूपों में देखते हैं मानव गुरु रूप और परमत व या भगवान रूप मे। बाउलो के गानो मे दो रूपो का ही निर्देश पाया ना है। मानव गुरू के प्रति भक्ति निष्ठा न रहने पर सर्वो च गुरू भगवान का अनुग्रह ीं मिलता है। मानव गुरु उसी परमगुरु का ही प्रतिनिधि है। इस सम्प्रदाय की

तरह गुरुवादी सम्प्रदाय और अ य कोई है कि नहीं स दे है अ तत य ठीक है कि बगाल मे नही हैं। ुरु इ हें केवल पार थिक विष मे ही परि ालि। ीं करते लौकिक या व्यावहारिक विषय में भी परामर्श देते हैं। शिष्यो मे कोई मतभेद होने पर गुरु को ही उसकी मीमासा करते देखा जाता है। सबसे आश्चर्य का विषय यह है कि कोई कोई विशिष्ट गुरु प्रकृति पुरुष घटित योग साधना के समय स्वय उपस्थित होकर कब किस प्रकार निश्वास प्रश्वास की क्रिया करनी होगी कब कौन मुद्रा या ब ध अवलम्बन करना होगा विभि न अनुभूति मे क्या क्या करणीय है आदि अति गुह्य विषयो मे उपदेश देते हैं। उनकी उपस्थिति से साधक साधिका बि दुमात्र भी सकोच बोध नहीं करते। उनका अन्तर्जीवन एव बहिर्जीवन गुरु के निकट सदा उ मुक्त होता है।

(वही उपे द्रनाथ भट टाचार्य पृ ३)

गुरु या मुर्शीद इस जगत मे परम सम्पदा है एव भगवान गुरु के रूप मे शिष्य को साधना पथ पर परिचालित करता है। यही बाउलो को विश्वास है। लालन अपने एक गाने में कहते हैं

मुरशिदेर चरण सुधा
पान करिले हरे क्षुधा
करो ना देले द्विधा
जेहि मुरशिद सेहि खोदा।
बोझ अलियम मरशेदा
आयेत लेखा कोरानेते।।
आपनि खोदा आनि नवी
आपनि सेई आदम छवि
अनत रूप करे धारण
के बोझे तार निराकरण
निराकार हाकिम निरजन
मुरशिद रूपे भजन पथे।। (पृ ३ ५)

क न मे है कि भ। ।न ही ह ।र धु एव पथ प्रदर्शक है। वही निरजन निराकार हाकिम खुदा मुर्शीद रूप मे साधना पथ पर हमे परिचालित करता है। भगवान नाना रूप मे विराजा करता है। इसका समस्त ज्ञान प्रेम एव शक्ति का प्रकाश मु म्मद मे है। समस्त शक्ति ही आदम रूप मे रूपायित है। मानव की अन्तर्निहित सत्ता या आ मा (रूह) रूप मे सभी मानव मे उसकी अवस्थिति है। अत अ ला नबी आदम अर्थात सकल मानव के मूल मे एक है केवल रूप ही भि न है। सभी मनुष्य मे ही भगवान का अस्तित्व निहित रहने पर भी जो ध्यान धारणा और भगवत् प्रेम साधना कर पाते हैं वे ही अल इनसान उल

कामेल या पूर्णमानव या साधु गुरु होते हैं। इस प्रकार पूर्णमानव ही वस्तुत सद्गुरु है उसके उपदेश की सहायता से भगवत् ज्ञान एव भगवत् प्रेम प्राप्त होता है। वस्तुत भगवान ही गुरु में मनुष्य को ।ध । थ पर रि ।लि करता है। यही अनेक सूफी धर्म में गुरु का स्थान है।

एक गाने मे लालन कहते हैं कि गुरू रूप मे दीन दयामय ही हैं। जो गुरु को मनुष्य समझता है वह अध पतित होता है

आगमे निगमे कय
गुरू रूपे दीन दयामय
असमये सकाशे हय
तारे भजिबे।।
गुरू को मनुष्य ज्ञान यार
अध पाते गति हय तार। (वही पृ ३ ५)

पुन लालन भगवान को ही श्रेष्ठ गुरु मानकर उसके निकट कातर निवेदन करते हैं

गुरू तुमि त त्रेर तत्री
गुरू तुमि म त्रेर मत्री
गुरू तुमि यन्त्रेर य त्री
ना बाजाओ बाजबे केने।।
आमार ज म अध मन नयन
गुरू तुम नित्य सचेतन
चरण देखव आशाय कोय लालन
ज्ञान अजन देओ नयने।।
गुरू दोहाई तोमार मनके आमार
लओ गो सुपथे
तोमार दया विने तोमाय साधव कि मते।।

य त्रेते य त्री येमन
येमन वाजाय वाजे तेमन
तेमनि य त्र आमार मन
वोल तोमार हाथे।
गुरू रूपेर झलक दिच्छे यार अन्तरे
ओ तार किसेर आवार भजन साधन लोक जानितो क रे।। (वही पृ ३ ६)

गुरु वस्तु गुरु धन महाजन का माल पूजी आदि बाते गानो मे अनेक स्थल पर

पायी जाती हैं एव बाउलो के मुख से भी सुना जाता है। आज भी बाउल मिलने पर जयगुरु कहकर ही अभिवादन करते हैं। देह की सारवस्तु को वे गुरुधन गुरु वस्तु महाजन का माल पूजी आदि कहते हैं। देह का वस्तु बि दु यही मनुष्य की परम स पदा है। यही श्रीगुरु या भगवान का स्वरूप है। इसी बि दु या गुरु धन को सय न रक्षा करके चलना होगा। महाजन ने यही माल या पूजी देकर ससार के व्यवसाय क्षेत्र मे भे ा है इसी पूजी की रक्षा न क पाने पर व्य ाय का मूल ही ध्वस हो ाएगा। नाना रिपुओ की उत्ते न मे यही ुरू वस्तु नष्ट होती है या खो जाती है उसी से ही साधना व्यवसाय क्षतिग्रस्त होता है ध्वंस प्राप्त होता है। मानव गुरु भी इसी बि दु की रक्षा के लिए उपदेश देते हैं। यही उनकी साधना का निर्देश है। लौकिक दृष्टि से भी बाउलो को यही गुरु वस्तु या गुरु धन है। इसी बि दु की रक्षा ही बाउल साधना की मूल भित्ति है।

गोवि द ने कहा है कि यह श्री गुरु एव मत्रदाता गुरु एक ही है वही भक्त का कर्णधार है क पतरु है

जे हरि सेई गुरू भक्तेर क पतरू
कर्णधार गुरू
करिले बीजरोपण।।

फरी पु के ल ुरु च डी ोसाई कहते हैं कि ु के क लवत् मुख से निसृत व क्य के साथ जिसका हार्दिक तादाम्य हुआ है उसके लिए विचार वितर्क का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि गुरु वाक्य ही सार है

गुरूर मुखपद्म वाक्य
यार हयेछे हृदे ऐक्य
तार काछे ताई विचार वितर्क
गुरू वाक्य सार।
(ओ) तार ध्याने गुरू ज्ञाने गुरू
अतरे वाहिरे गुरू
रूप नेहारे गुरू
गुरूर रूपे रूप मिशाय।। (वही पृ ३)

अन्य एक गाने में है

गुरू-गीता तत्र गुरु यज्ञ मत्र गुरू ये परमगति
गुरू बिने भाई-ब धु केहो भाई गुरूब धु, पिता पति
ज्योतिर्मय देह मानुष विग्रह चि त हृदानद कानने
नहे गुरू तुल्य रतन अमूल्य राखिओ हृदये यतने।। (पृ ३)

इस स दर्भ में अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। बाउल मानव गुरु को परमत व का

या श्रेष्ठ परमगुरु भगवान् का एक रूप मानते हैं किन्तु असल गुरु या मुरशीद कहने मे परमतत्व को ही समझाते हैं। वह गुरु ही मूल गुरु है उसकी कृपा की सकल साधना का मूल है।

नवद्वीप के चण्डीदास गोसाई कहते हैं

दीक्षा गुरू शिक्षा गुरू इहार परे आछे गुरू
सेई गुरू कल्पतरू रागेरि आश्रय।
आर यतो आछे गुरू पथेर परिचय।
तिमिर अंध विनाशिले निज गुरू जाय ता चिना। (वही पृ ३१)

बाउलो की साधना की वस्तु गुरुतत्व है। इस स्वरूप का तीन अंश है एक भोक्ता शक्तिमान या पुरुष रूप में और एक शक्ति भोग्या या प्रकृति रूप में दूसरा दोनो का मिलित ८क ह नद सिहरित अनिर्वचनीय सम्मिलित अवस्थ रूप में है। दो सत्ता के मिलन द्वारा यह अनिर्वचनीय तृतीय अवस्था ही प्राप्ति की उनकी मूल साधना है।

एक बाउल गुरु अपने शिष्य को साधना के मूल तत्व को समझा रहे हैं

आत्मरूपे कृष्ण तिनि परतत्वे राधाराणी
गुरूतत्वे प्रेम बाखानि
हय महाभावेर उदय।।
कृष्ण अधरे वले मनोहर ने यत्न करे
दिलाम तोरे तत्व वले
साधनेर एइ निर्णय। (वही पृ ३१२)

गुरूतत्व आत्मतत्व एव परतत्व का मिलित रूप है। कृष्ण पुरुषतत्व राधा प्रकृति तत्व है और दोनो का गभीर प्रेम मिलन ही गुरुतत्व है। इसी गभीर एव सर्वांगीण प्रेम मिलन के द्वारा जो अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति होती है वह महाभाव है। यही प्रेम की चरम एव परम अवस्था है। यही अपूर्व आन य स । ही मान । । या प्रकृत ु क स्वरू है। बाउलो की साधना भी । । के इसी स्वरूप पलब्धि की साधना है। इसीलिए ही उनके धर्म मे कृष्ण स्वरूप एव राधा स्वरूपिणी पुरुष प्रकृति के मिलन की व्यवस्था है एव उनके द्वारा ही एक अद्वय नित्यानद स्वरूप की उपलब्धि ही उनकी साधना का लक्ष्य है।

आत्मतत्व स्वरवर्ण से तो नय रे सामान्य
परतत्व व्यजनवर्ण फलाते गण्य
से ये स्वर भिन्न नय
स्वर हते हय दुयेते माखामाखि।।

यारे गुरूत व कय से ये युक्ताक्षर हय।
स्वरवर्ण ज्ञान विने युक्त केहो ना वुझाय। (वही पृ ३१२)

इस गुरुत व का बाउल अनेक समय चैतन्य त व कहते हैं। चैत य देव का वैष्णव गोस्वामीगण ने कृष्ण एव राधा के सम्मिलित मूर्ति रूप में प्रचार किया है। यह बाउलो के निकट गभीर ता पर्य बोधक है। भारत में समस्त धर्म में ही गुरु की विशेष प्रयोजनीयता रही है क्योकि समस्त श्रुति विद्या ही गुरुमुखी विद्या रही है। उपनिषदों से लेकर सहजिया वैष्णव साहित्य मे भी गुरुवाद का निर्देश पाया जाता है। सिद्धमार्ग या नाथ धर्म मे गुरु ही समस्त साधना का मूल है। गुरु ही आदर्श गुरु ही उपदेष्ठा गुरु ही पथ प्रदर्शक है। नाथ मत में सद्गुरु ही प्रकृत गुरु है। यह सद्गुरु अवधूत है उसका वर्ण आश्रय पाप पुण्य त्याग भोग कछ नहीं है। वे सबसे अतीत हैं। एकमात्र वे ही शिष्य को परमत व अधिगत कराने मे सक्षम हैं। परमपद के ठीक नीचे ही इस गुरु का स्थान है। समस्त भारतीय धर्म मे ही विशेषत तत्रधर्म एव योगधर्म में गुरु की आवश्यकता एव माहा म्य सद्गुरु के लक्षण आदि वर्णित हुए हैं। किन्तु प्रकृत गुरु कहने से भारत के सकल धर्म ही परमत व ब्रह्म आ मा ईश्वर या ईश्वर स्वरूप शिव या कृष्ण को बताते हैं। बाउल धर्म भी गुरु कहने पर विशेष रूप में परमत व या आ मा को बताता है। इस आ मोपलब्धि के पथ पर जो पथप्रदर्शक आ मा के प्रतिनिधि स्वरूप मात्र हैं उसी मानव गुरु को भक्ति प्रदशित की गयी हैं। किन्तु मूल आर्ति या शरणागति आ मा या भगवान के प्रति व्यक्त की गयी है। लालन ने उसी अची हे जन को पीर का पीर कहा है।

३ स्थूल मानवदेह का गौरव भाण्ड ब्रह्माण्डवाद

इस मानव जीवन एव मानवदेह को बाउल परम सम्पदा मानते हैं। उनकी साधना का मूल आश्रय देह है। देव देवी का अस्तित्व अनुमान मात्र मानते हैं मनुष्य देवता की पूजा ध्यान जाति आदि के द्वारा अर्जित पुण्य से स्वर्गवास करेगा या पर ज म मे उत्तम गति प्राप्त करेगा यह उनके लिए अविश्वसनीय है। इसी मानवदेह मे ही मूल त व आ मा या भगवान का वास है। इस मानव देह को आश्रय करके साधना भजन करके उसकी ब्धि कर ही का च आध्या मिक लक्ष्य है। मानव देहाश्रित साधना ही उनका वर्तमान है।

उनके पास मानव जीवन अति उ च मूल्य वहन करता है। कारण कि इसी मानव जीवन में जो देह मिली है वहीं उनकी आध्या मिक साधना का के द्र है। इसी देह मे वे ब्रह्माण्ड की क पना करते हैं इसमे आकाश समुद्र पर्वत अरण्य नदी आदि सब वर्तमान हैं। इस देह मे ही परमपुरुष या उनके मन का मानुष वास करता है। यह देह ही आ मोपलब्धि का सोपान है। नर नारी के गभीर प्रेम मिलन के बीच से ही वे चरम आध्या मिक उपलब्धि मे पहुचते हैं। अपने आदि गुरु चण्डीदास की वाणी सबसे ऊपर

मानुष सत्य है उसके ऊपर कोई नहीं है वे ध्रुवतारा की तरह अनुसरण किए हैं एव इसको सार्थक रूप मे रूपायित किए हैं। मानव जीवन के इसी गभीर ता पर्य के सम्ब ध मे लालन कहते हैं

देव देवतागण
करे आराधन ज म निते मानवे।।
कतो भाग्येर फले ना जानि
मनेर पेयेछो एइ मानव तरणी।
वेये जाओ वराय सुधाराय
येन भरा ना डोवे।।
एइ मानुषे हवे माधुर्य भजन
ताइत मानुष रूप गठेले निरजन। (वही पृ ३२३)

मानव ज म भी बहुत सौभाग्य सापेक्ष है। माधुर्य भजन या प्रेम मूलक उपासना का मूल आश्रय यही नरदेह है। बाउलों के यहा भगवान ने मनुष्य के हृदय बिहारी आ मा या कृष्ण रूप में मानव देह में रूप ग्रहण किया है। अकेले अकेले माधुर्य रस का आस्वादन नहीं होता इसीलिए खुद को र री रूप में य पुरु प्रकृति रू में विभक्त किया है

परमा मा पुरुष प्रकृति रूपे जोडा।
दुई तनु एक आ मा कभु नहे छोड़ा।। (वही पृ ३२४)

माधुर्यमय युगल भजन के मूल में यही नरदेह है अत बाउलों ने इसे परम श्रद्धा एव परम विस्मय की आख से देखा है एव नर ज म को सार्थक माना है।

लालन ने एक और गाने में कहा है कि देह का अस्थि चर्म स्वर्ण मय है इसमे से होकर ही महारस या आन दामृत धारा प्रवाहित होती है उसके एक बि दु मे सिधु छिपा हुआ है। इसी स की साध । के द्व रा ही द्विद मे रूप की लक देखी ज ती है। किन्तु इस रस साधना में पूजा उपासना आदि भजन पद्धति नहीं है। केवल देह की साधना का एकमात्र पथ है। तीर्थ धर्म वार व्रत पूजा तप आदि किसी की ही आवश्यकता नहीं है। समस्त इसी देह मे मिलते हैं– इस देह की साधना ही सभी साधना से श्रेष्ठ साधना है।

उपासना नाइगो तार
देहेर साधन सर्व सार
तीर्थ व्रत यार जन्य
ए देहे तार सव मिले। (वही पृ ३२५)

नाना देश का अतिक्रमण करके लोग तीर्थ या हज करने मक्का जाते हैं किन्तु उनका परिश्रम व्यर्थ होता है कारण मक्का तो मानवदेह में ही है। इस देह मक्का मे काबा घर का आदि इमाम तो वही महामहिमा वित मिआ साहब अर्थात स्वय खुदा है

आछे आदि मक्का एइ मानवदेहे
देख ना रे मन भेये।
देश देशान्तर दौडे एवार
मरिस केन हापाय।।
दश दुयारी 'मानुष 'मक्का
गुरूपदे डबे देश गा
धाक्का सामलाये।।
फकिर लालन वले से ये गुप्त मक्का
आदि इमाम सेई मिए।। (वही पृ ३२५)

राधाश्याम ने कहा है कि देह त व न जानकर भजन साधन सार्थक नहीं हो सकता। इसी देह में सप्तलोक सप्त पाताल सप्त सागर सप्तद्वीप आदि हैं। उसके अवस्थान के सम्ब ध में ज्ञान रहना आवश्यक है। विशेष रूप मे देह में कहा परम गुरु या परमा मा विराज करते हैं उसे भी जानना आवश्यक है। बाउल धर्म की मूल साधना योग क्रिया मूलक है अत देह त व का ज्ञान अति आवश्यक

आगे देहेर जान गे रे मन
तत्व ना जेने कि हय साधन।
देहे सप्त सर्ग सप्त पाताल
बौद्ध भुवन कर भ्रमण।।
देख ना खुँजे कोथाय विराजे
तोर परमगुरू आ माराम।। (वही पृ ३२५)

जमीन के साथ इस मानव देह की तुलन ब ल ।।न की बहुत प्र लित प्र है। बाउल कालाचाछ पागल कहते हैं कि यह देख जमीन क पभूमि स्वरूप है। इससे उपयुक्त समय मे खेती कर पाने पर आकाक्षित वस्तु प्राप्त की जाती है। गुरु बीज रोपण करने पर यथा समय वृक्ष उ प न होता है और अन्त में फल प्राप्त होता हे।

मानवदेह क प भूमि
य न करले र न फले।
भवे आसार आशा पूर्ण हवे
शुभ योगे चाष करिले।।

एइ जति तोर चाष पोया
भगवानेर कृपाय गेलो पाउया
म त्र वीजे ने सृजे
गाछ होले वीज ज मे भूले। (वही पृ ३२)

इसी देह मे ही परम तत्व या परम गुरु या भगवान का वास है यही बाउल धर्म का मूल त व है। अत उसे पाने के लिए देह का ही सहारा लेना होगा देह में ही उसे खोजना होगा। देह के बाहर म दिर मे या मस्जिद मे या धर्मशास्त्र आदि में या अन्य किसी मूर्ति मे उसे पाया नहीं जाएगा।

यह मानवमूर्ति ही भगवान की प्रकृत मूर्ति है। सूफियों की वाणी है भगवान ने मनुष्य को अपनी आकृति के अनु । सृष्ट कि । है ८व ौडीय वैष्ण ों क वपु सका स्वरूप है आदि लालन के ऊपर युगपत प्रभाव प्रदान किए हैं।

क्ष्यापा तुइ ना जेने तोर आपन खबर
यावि कोथाय।
आपन घर ना वुझे
वाइरे खुजे
पडवि धाधाय।।
आमि सत्यना हइले
गुरू सत्य हय कोन काले।
आमि ये रूप
देख ना से रूप
दीन दयामय।। (वही पृ ३२)

यादुबि दु, दुद्दु आदि के अनेक पदो में इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं। जिन सभी धर्मों मे अल्प या ज्यादा योग की क्रिया है उसकी साधना देह केन्द्रिक है। हि दू तत्र और बौद्धत त्र मे देह को आधार बनाकर साधना की व्यवस्था है सिद्ध मार्ग या नाथ पथ में एकान्त रूप मे देह को साधना का के द्र माना गया है। इस पृथ्वी पर जो कछ भी है वह उस देह में ही है जो ब्रह्माण्ड में है वही इस देह भाण्ड में है यही भाण्ड ब्रह्म वा या पि ह्म व द देह त व ही यो। म ीस क सम्प्र के मू न का विषय है।

एक साधारण बात यह है कि जिन सब र्मित मे देह मे मा म क की कल्प की गयी है उनकी साधना ही आ मोपलब्धि की साधना है। इसमे देह का अवलम्बन करना ही स्थूल मे अग्रसर होकर अन्त मे आ मा के स्वरूपत्व लाभ की प्रचेष्टा की गयी है।

यही स्थूल से सूक्ष्म मे अग्रसर होने का अर्थ होता है सृष्टिधारा के विपरीत गति में या प्रतिलोम गति मे अग्रसर होना। इसी टी सा द्व रा मा व के स्वभाव या अन्तर्निहि सहज एव स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त किया जाता है। इसी अवस्था मे ही मनुष्य ब्रह्म स्वरूप व का लाभ करता है। इसीलिए तत्र का चक्रभेद पातजल का अष्टाग योगाभ्यास

वेदान्त का पचकोष विवेक तान्त्रिक बौद्धो का काय वाद स जिया वैष्णव एव बाउलो का रूप स्वरूप त व बाउलो का 'उजान मे वाया या उ टा कल प्रयोग करना आदि मूलत एक ही पथ का प्रकार भेद मात्र है।

४ मन का मानुष

मानव देह स्थित परमत व या आ मा को बाउल मन का मानुष नाम से अभिहित करते हैं। अ को ानु। कहने क ता पर्य यही ल ाता है कि आ मा मानव देह का ावलम्बन करके वास करती है और मानव देह की स धना क द्वारा ही वह लभ्य ह मानव कृति उसका ही रूप समझकर बाउल उसको मानुष नाम से अभिहित करते हैं। यह मानुष अलक्ष्य मे हृदय मे या मन मे अवस्थान करता है। यही कल्पना करके उ होने उसे मनेर मानुष (मन का मानुष) कहा है। इसी आ मा को वे मानुष मनेरमानुष सहज मानुष अधर मानुष रसेर मानुष भावेर मानुष आलेख मानुष साई प्रभृति नाम से अभिहित किए हैं।

यही मन का मानुष या आ मा कैसे भि न भि न रूप मे एव अवस्था मे मानव देह मे विद्यमान है उसका विचित्र ज्ञान एव उपलब्धि बाउल अपने गानो मे प्रकाशित किए हैं। बाउल गुरु लालन कहते हैं

एइ मानुषे सेइ मानुष आछे।
कलो मुनि ऋषि चार युग धरे वेड़ाच्छे खुजे।।
जले येमन चाद देखा जाय
धरते गेले हाते के पाय
तेमनि से थाके सदाय
आलोके बसे।।
एइ मानुषे आछे रे मन
यारे दले मानुष रतन
लालन वले पेये से धन
पारलाम ना रे चिनिते।। (वही पृ ३ १)

कहते हैं कि ुद को हचानने पर ही स अची हे को ची हा जाता है अत अपनी खबर आगे लेनी होगी। साई अपने मे ही है उसके लिए ढाका दि ली खोजने से नहीं चलेगा। मन मे निष्ठा होने पर उसका ठिकाना पाया जाएगा। ये स्वय प्रमाण हैं इनके प्रमाण के लिए वेद वेदान्त पढने पर केवल कष्ट क पित अर्थ का ही आग्रह ग्रहण करना होगा

आमार आपन खबर आपनार हय ना।
एकबार आपनारे चिनले परे याय अचेनारे चेना।।

येमन केशेर आडे पाहाड लुकाय देख ना।

(केश की आड मे पहाड का छिपना)

आमि ढाका दिल्ली हातडे फिरि

आमार कोलेर घोर तो याय ना।।

आ मरूपे कर्ता हरि

मने निष्ठा हले मिलवे तारि ठिकाना।

वेद वेदान्त पडवे यतो वाडवे ततो लक्षणा। (वही पृ ३४१)

लालन साई की अपूर्व लीला प्रत्यक्ष करते हैं। उन्होंने इच्छानुसार नाना देह घर का निर्माण किया है और पुन उन्हीं सब देह घर मे वास किया है। वे पिता माता भाई बहन स्वामी स्त्री रूप में विचित्र रस आस्वादन करते हैं। वे भगवान रूप मे या शासक रूप मे सबके ऊपर आधिपत्य क विस्त र क ते हैं ८ को द देते हैं पुन वे मनुष्य मे अपने को अभिव्यक्त करते हैं उसके दिए हुए दण्ड को ग्रहण करते हैं। दण्डदाता एव दण्डभोक्ता दोनो ही वे हैं

से लीला वुझवि क्षेपा केमन करे।

लीलार यार नाइ रे सीमा

कोन् खाने कोन् रूप धरे।।

आपनि घर से आपनि घरी

आपनि करे रसेर चुरि

घरे घरे

ओ से आमनि करे म्याजिस्टारी

आबार आपनि वेडाव वेडि परे।। (वही पृ ३४२)

पाचशाह भी साई की इस प्रकार की लीला देखकर विस्मित हुए हैं

आजब कारखाना वोझा साध्यकार

साई करे लीला भवेर पारे।।

एइ मानुषे रग रसे विराज करे साई आमार।।

एकटि छिलेने दुइटि हलेन नीरे क्षीरे युगल तार।

साइ पुरूष प्रकृति धरे हरेक रगे देन बाहार।।

पानीर घटे रग देखे हाकिम घटे देन विचार।

दरिद्रेर घरे वसे फिरते छेन द्वार वेद्वार।।

पाच वले मानव लीला करछेन साई चमत्कार।

मानुष भजे मानुष धर मन यावि तुइ भव पार।। (वही पृ ३४२)

राधाश्याम कहते हैं कि मन का मानुष यही मानुष ही है। जिसका ज्ञान नयन उन्मीलित हुआ है वही उसको देख पाता है। किन्तु वे पल में आते हैं और पल मे जाते हैं। सचैतन्य मानुष हवा पकड़कर एव रूप मे नयन देकर उसे पकड पाता है।

मानुषे मानुषे रयेछे मिशे।
तोर नाइ ज्ञान नयन
ओर अवोध मन
से मानुष रतन
तुई चिनवि किसे।।
आलोकेर मानुष थाके आलोकेते
मोह अंध जने ना पारे चिनिते
कवे स्थान स्थिति एइ मानुषेते
पलकेते याय पलकेते आसे।। (वही पृ ३४३)

५ ।।ह कहते हैं कि ही नु इसी ८ में अर्थात् देह में घर बनाकर काजल कोठा या सर्वोच्च निभृत घर मे वास करता है। वह मानुष नीर क्षीर मे विराज करता है उसकी स्थूल सत्ता ब्रह्माण्ड के ऊपर है एव मूल पाताल में गया है।

एइ मानुष सेइ मानुष आछे
से घरेर मध्य घर बाँधिये काजल कोठाय रयेछे
एवार गुरू दया करवे यारे
आ से पावे से रूप दरशन।।
मानुष नीरे क्षीरे विराज करतेछे
तार स्थूल गेछे ब्रह्माण्ड परे मूल पाताले गेछे
सेइ मूलेर साधन गुरू जाने
ता जेने मन कर साधना। (वही पृ ३४४)

चण्डीदास फकीर एरफान आदि ने मन के मानुष के स्वरूप के सम्बन्ध मे कहा है। अनेक गाने द्वितीय खण्ड में अनुवाद के साथ सगृहीत हैं। परलोचन कहते हैं कि सहज मानुष द्विदल में विराजमान होता है दशम दल (मणिपुर चक्र) एव षोडष दल (विशुद्ध चक्र) उसकी गति का स्थान है। इसके ब वे नर्मद के किनारे यो वरी क्ति के साथ युग ५ु। में झूले की ह अ दोलित होते हैं ८ ुभ योग के समय चतुर्दल पद्म में आविर्भूत होता है।

मनेर मानुष हय रे ये जना
(ओ से) द्विदले विराज करे एइ मानुषे
तुमि सहज मानुष चिनले ना।।

षोडश दल आर दशम दले
तार पिछे मानुष दोले नर्मदार कले
वामे कलकुण्डलिनी योगेश्वरी योग रूपिणी
नित्य लीलाकारिणी व्रजलीला यार घटना।।
शुभाशुभ योग काले सुगठन गति मिले
स्थित हय सेई कमले चतुर्दले वारामखाना।। (पृष्ठ ३४५)

गोपाल कहते हैं कि मानुष टेढी नली में अर्थात वक्राकार अनुमित सुषुम्ना नाडी मे गमनागमन करके नाना लीला का प्रदर्शन करता है। केवल योग क्रिया द्वारा ही उसकी लीला उपलब्ध की जाती है। (इ ।८व पिं ५ स्प वे ी वत् जड़ित होक सुषुम्न नाडी को वेष्ठित करके धनुषाकार टेढी होकर क ति मे ऊ र की ओर ठी है बाउल इसी प्रकार की कल्पना किए हैं।) बाकानल नाथ पथ का बकनाल या दशमी द्वार नहीं है। वे आगे कहते हैं कि द्विदल पद्म मे गोलोक के पति वास करते हैं। यही रूपनगर और वृ दावन धाम है। पद्मलोचन कहते हैं कि इस मनुष्य को पकडा जा सकता है। बाकानल मे यह मनुष्य क्रीडा करता है।

उसी देह मे परमा मा या मन का मानुष का वास है बाउलो की इस धारणा पर प्रधान रूप से तीन प्रभाव पडा है। पहला उपनिषद का प्रभाव दूसरा हि दू तंत्र का और विशेष रूप में बौद्धतंत्र का प्रभाव तीसरा सूफी दर्शन का प्रभाव है।

५ रूप स्वरूप तत्व

रूप कहने पर बाहर का एक आकार समझा जाता है और इसी रूप को आश्रय करके इस रूप के अभ्यन्तर में इसका जो निजस्व वैशिष्टय वर्तमान होता है उसको स्वरूप कहा जाता है। बाउलों की साधना मूलत रूप से स्वरूप में होने की होती है प्राकृत देह को अप्राकृत मे परिणत करके देह मे ही परम त व की उपलब्धि करना। देह को के द्र करके जो साधना है सका रहस्य ही इ रू से स्वरूप मे तरने में निहि है। सभी तान्त्रिक साधना का आधार यही है। उपनिषदो की स्त्री पुरुष आलिगित अवस्था शिव शक्तिवाद एव भाण्ड ब्रह्माण्ड की चर्चा की गयी है। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर ही रूप स्वरूप की अवस्थिति निर्भर करती है।

उपे द्र नाथ भटटाचार्य ने अपनी विशद व्याख्या मे रूप स्वरूप को व्याख्यायित किया है। वे मानते हैं जगत के पुरुष और नारी का जो रूप है वह उनके बाहर का रूप है। इसी रूप या विशिष्ठ आकृति को आधार मानकर उसके अभ्य तर मे उनका जो एक वैशिष्टय पूर्ण अस्ति व है वही स्वरूप है। इसी दृश्य मान स्थूल प्राकृत रूप के अन्तराल में इसका स्वरूप अवस्थित है। जगत का प येक पुरुष रूप मे पुरुष कि त स्वरूप

मे कृष्ण ने पुन प्रयेक नारी रूप मे नारी किन्तु स्वरूप मे राधा । नर नारी जब रूप के बीच से होकर उसके स्वरूप की उपलब्धि करेगे जब स्वरूप मे प्रतिष्ठित नर नारी का मिलन होगा राधा कृष्ण के नित्य प्रेम की लीला मर्त्य का प्राकृत प्रेम मिलन होगा नित्य वृन्दावन में राधाकृष्ण की अप्राकृत सहज लीला। यही सक्षेप मे रूप स्वरूप तत्व है। (पृ ३६)

सहजिया साधना की आरोप प्रक्रिया अपने मे राधाकृष्ण मानकर की गयी साधना है। इस प्रकार साधक रूप मे से होकर स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। उस समय रूप और स्वरूप का अन्तर समाप्त हो जाता है। उस समय प्राकृत नायक नायिकाए कृष्ण और राधा रूप मे नित्य लीला रस का आस्वादन करेगे। अब साधक इस आरोप साधना के द्वारा स्थूल देह को प्राकृत स्वरूप में उत्कर्षित करता है। अब उसमें अप्राकृत सत्ता का उदय हो जाता है। रूप और स्वरूप का रूपान्तरण होता है। श्रीरूप स्वरूप होता है और स्वरूप श्रीरूप । ऐसी स्थिति में इस देश एव उस देश का मिलन हो जाता है। यही अप्राकृत स्वरूप सत्ता ही सिद्ध देह है। यही बाउलो की स्वभाव छोडकर भाव में प्रवेश करने की भावना है।

इसी स्वरूप साधना को प्राप्त करने के सन्दर्भ मे लालन ने खुद से प्रश्न किया है

कि साधने आमि पाइ गो तारे।
ओ रे ब्रह्मा विष्णु ध्याने पाय ना यारे।।

देह रूप पर्वत के स्वर्ण मण्डित चूड़ा के निर्जन गह्वर मे उसका वास है। वह उज्जवल 'चन्द्र ज्योति स्वरूप है। वह ज्योतिर्मय रूप तो इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है। किस प्रकार उस रूप मे दर्शन सम्भव होता है ? लालन ने गुरु उपदेश के अनुसार उत्तर दिया है

तिन रसेर साधन करो
रूप स्वरूपेर तत्व धरो
लालन कय तवे यदि पारो
प्राण जुड़ाते से रूप हेरे।। (वही पृ ३६२)

एक अन्य गाने में लालन ने इस तत्व की बात विस्तृत रूप मे कही है

रूपरे घरे अटल रुप विहारे
चेये देख ना तोरा।

ये जन अनुरागी हय
रागेर देशे याय
रागेर ताला खुले से रूप देखते पाय।

आछे रूपेर दरजाय
श्रीरूप महाशय
　　　　रूपेर ताला छोडान तार हाते सदाय
ये जन श्री रूपगत हवे
तालार छोडान पारे
अधीन लालन वले अधर धरवे तारा।। (वही पृ ३६३)

इसी मानव देह गृह मे अटल रूप विहार कर रह। है। इसी अटल रूप को पास पहुचने के लिए जिस द्वार का अतिक्रम करना होता है वह श्रीरूप के अर्थात् प्राकृत देह के अधीन है। वही उस द्वार का कर्त्ता है। उस द्वार मे राग अर्थात् प्रेम का ताला लगा हुआ है कि तु इस ताले की चाभी इसी श्रीरूप अर्थात् प्राकृत देह के हाथ मे रहती है। श्रीरूप गत होने पर वह द्वार खोला नहीं जा सकता उस गृह में प्रवेश नहीं किया जा सकता।

सामान्यत नाभि के निम्न देश मे मूलाधार एव स्वाधिष्ठान को बाउल स्थूल देहरति या काम के स्थल रूप मे मानते हैं। यहा प्रकृति देह में फूल प्रस्फुटित होता है उसी फूल की साधना प्रकृत बाउल साधना है। इसी स्थ पर ही प्रकृति पुरु तत्व क मि न होता है। उसी सम्मिलित महाराग शक्ति को योग क्रिया द्वारा उर्ध्वगामी करके द्विदल मे अर्थात् आज्ञाचक्र मे उपस्थित कराने पर ज्योतिमण्डल मध्यवर्ती साक्षात श्रृगार रसमूर्ति 'काम ब्रह्म कृष्ण के दर्शन का लाभ होगा। यही इस बाउल गान के रचयिता कहते हैं। वह रसवती युवती ही धन्य है की कृ से ही कृष्ण की प ब्धि की ती है। किन्तु रूप को अर्थात् प्रकृति देह को पहले अवलम्बन करना होगा। इसी प्रकृति पुरुष के रूप मिलन द्वारा स्वरूप रूप अर्थात् कोटि सूर्य ज्योतिर्मय राधा कृष्ण सम्मिलित रूप दर्शन का लाभ होगा।

चौबीस परगना के अन्यतम आदि बाउल गुरु रेजा क्षापा के एक गाने में है

ब्रज पुरे रूप नगरे यावि यदि मन
　　　　तवे कर गे या स्वरूप साधन।।
स्वरूपेर रूप रूपेर स्वरूप
　　　　स्वरूप देहे हय मिलन।।
रुपेर देहे स्वरूपेर स्थिति
स्वरूपेते रसेर मानुष करेन वसति
रसेन मानुष धरवि यदि
　　　　रागेर पथे कर गमन। (पृष्ठ ३६६)

यदि देह स्थित ब्रजधाम मे ब्रजेश्वर की उपलब्धि करनी हो तब स्वरूप साधना करनी होगी। स्वरूप देह मे ही उसको प्राप्त किया जाता है। जो वाह्यरूप है वह अभ्यन्तरीन

स्वरूप का ही वहिर्प्रकाश हे। रूप के अभ्यन्तर मे स्वरूप ओर पुन स्व॰ ा पकाश रूप मे से ही होता है। अत रूप और स्वरूप अगागि रूप मे ाडित ै। ाहर क रूप मे मध्य ही स्वरूप की अवस्थिति है स्वरूप मे ही रस का मानुष या रसमय परमत व या कृष्ण का वास है। राग के पथ पर या प्रेम मिलन के पथ पर ही उसके अनुसधान हेतु जाना होगा।

पाचशाह कहते हैं कि वही अधरा गोपी मन चोरा चैतन्य रूपी कृष्ण या श्रीकृष्ण चैतन्य लीला साग करके मनुष्य के स्वरूप मे मिला हुआ है। उस स्वरूप के भाव और साधना को न जानने पर उस अधर काला अल्ला को पाया नहीं जा सकता। अन्य प्रकार की साधना जप तप पूजा आदि व्यर्थ है

खुजे कि आर पावि रे से अधरा से नयन तारा
एइ मानुष मिशे आछे गोपी मन चोरा।।
लीला साग करे गोरा
स्वरूपेते मिशे आछे माया पासरा।
स्वरूप रूप रसे मिशे रसे हये भोरा।

शुधु कि आल्ला वले डाकले तोरे
पावि ओरे मन पागेला।
ये भावे आल्लाताला विषम लीला
त्रिजगते करछे खेला।।
कत जन जपे माला तुलसी तला।
हाते झोले मालार झोला
आर कतजन हरि वलि मारे तालि
नेचे गेये हय मातेला।।
कत जन हय उदासी तीर्थवासी
मक्काते दियाछे मेला।
केउ मसजिदे वेसे तार उद्देश्ये
सदाय करे आल्ला आल्ला।।
स्वरूपे मानुष मिशे स्वरूप देशे
वोवाय कालाय नि य लीला।
स्वरूपेर भाव ना जेने चामर किने
हच्छे कतो गाजीर चेला।। (वही पृ ३६)

यह स्वरूप सत्ता इ द्रिय ग्राम की चेतना द्वारा अधिगम्य नहीं है वह केवल अनुभव या उपलब्धि की चीज है। यह गूँगे के साथ बहरे की बातचीत की तरह है

स्वरूपेर वाजारे थाकि।
शोन रे क्ष्यापा वेडास एका
चिनते नारले धरवि कि।।
कालार सगे वोवा कथा कय
काला गिये शरण मागे के पावे निर्णय
आवार अ ध गिया रूप नेहारे
तार मर्म कथा वलवि कि। (पृष्ठ ३८८)

उपे द्रनाथ भटटाचार्य ने उद्घोषित किया है कि यही रूप स्वरूप का तत्व ही बाउल साधना की मूल कथा है। बाउल ससार के नर नारी क बीच म त्व के द्विधा विभक्त रूप में आ मप्रकाश की कल्पना किए हैं। हि दू जाति के प्राय सभी बाउल एव मुसलमान ति के भी नेक ाउलों ने इसी प म या रमा मा मन के मानुष का श्रीकृष्ण एव प्रकृति पुरुष को कृष्ण राधा या रस ति रू मे व ानि कि है ८ हजिया वैष्णवों के नाना भाव क पना को भी उ होने ग्रहण किया है। मूलत सहजिया वैष्णव धर्म की साधना क्रिया समन्वित एक विशिष्ट नव रूप ही बाउल धर्म है।

अभी तक बाउल धर्म के ाधना त्वों का विव । दिय । । सक्षिप्त परिचय भी कहा जा सकता है। इ त्वों के सा की के क्रिय मक फ क को स समीची होगा। साधना का क्रिया मक स्वरूप क्या है और उसमें प्रयुक्त रहस्यवादी शब्दो का विश्लेषण भी आवश्यक है। यद्यपि वे अपनी साधना क्रिया को प्रय न पूर्वक छिपाते हैं। इस सूक्ष्म साधना के लिए जिन स्थूल क्रियाओ का वे प्रयोग करते हैं उन्हें वे घृणा आदि प्राप्त करने के भय से छिपाते हैं। इस सम्प्रदाय से अलग सामान्य जन को स्थूल साधना क्रिया को बताना मना है। उपे द्रनाथ भटटाचार्य ने बाउलों से सपर्क करके गोष्ठियो आदि के द्वारा जो प्राप्त किये उसे ही अपने ग्रथ मे विश्लेषित किया है। बाउलों की मू स । सारे ब ाल में ८क क र की है फिर भी गुरु परम्परा मे कछ सामान्य भेद होता है। देह को के द्र करके ही बाउलो की साधना है

नर देह नैले कोन तत्व नाहि जाने।
साधनेर मूल एइ नरदेह गणे।।

देह के ाह इनक कोई त व स्तु या सा हीं है। जो भाण्ड मे नहीं है वह ब्रह्माण्ड में नहीं है। देह के बाहर बैकण्ठादि क पना को वे अनुमान कहे हैं वर्तमान है अपना देहभाण्ड। वे अनुमान नहीं मानते वर्त को छो कर की साधन हीं है।

प्रकृति पुरुष रूप मे जो द्विधा विभक्ति है उससे कोई अश भी अन्य अश से सम्पूर्ण पृथक नहीं होता दोनो में ही दोनो का अश वर्तमान रहता है। पुरुष की देह का मूल रूप पुरुष

ोने पर भी उसमें प्रकृति का अश भी है पुन प्रकृति मे ी ुरुष का अश ै। पुरुष दो त वो का एक और िभि न आधार है। वही परम लीलाकारी सत्ता दोनो दे मे ही प्र छ न रह कर रस लीला का आस्वादन करती है।

प्रकृति की सत्ता जैसे रज में है उसी प्रकार पुरुष की स ा बीज मे है। इसी रजो बीज के मिलन से जैसे सृष्टि होती है उसी प्रकार दूसरी ओर य ी श्रृगार विलास के मूल हैं। देह मे स्तक सहस्रदल पद्म मे बीज रूप मे प र । मा अवस्थित है। उसका स्वरूप स्थिर निस्तरग अचचल कि तु लीलाकारी कहलाने वाला बीजरूपी वह रजोमयी प्रकृति के रसास्वादन के लिए प्रकृति से मिलित हुए बिना नहीं रह पाता। इसी लिए रज प्रवर्तन के तीन दिन वह मस्तक से तर कर रज मिलित होकर प्रकृति क मूलाधार मे आ मप्रकाश करता है। रज मे वह मिलित होता है किन्तु उसका स्वरूप और रज का स्वरूप विभि न मुखी होता है। रज अग्निमयी सृष्टिक्रिया रूपिणी और आकर्षणकारिणी है यही काम स्वरूपिणी है। किन्तु बीज अचचल और प्रेम स्वरूप है। जल और दूध की तरह ही इनका मिलन होता है काम के साथ प्रेम एकदम मिश्रित है। अत जल और दूध को अलग करना होगा। यह दूध ही अचचल बीज है। यही लीलामय सहज मानुष है। इसी सहज मानुष का या मन के मानुष का आविर्भाव प्रकृति के रज मे होता है। प्रकृति के देहाधार मे तीन दिन के लिए इसका आविर्भाव होता है। इसके बाद चौथे दिन पुन नित्यस्थान पर स्वरूप में उसकी अवस्थिति होती है।

यही तीन दिन ही बाउलो की साधना का प्रशस्त समय है। यही मानुष धरा का समय है। इसी तीन दिन के अत मे पूर्ण रूप मे सहज मानुष का आविर्भाव होता है। यह साधक की अनुभूति के सापेक्ष है। यही सहज मानुष के स्वरूप की अनुभूति श्रृगार बीजोद्भूत आन दानुभूति है। इसी आन दानुभूति को योग क्रिया द्वारा क्रमश उर्ध्वमुखी करके द्विदल पद्म क ने पर अ बी रूपी ई रूप के थ श्रृगार लीलामय सहज मानुष रूप के मिलन मे निरन्तर अपरिसीम श्रृगारानद की अनुभूति जगती है। मूलत परमत व का स्वरूप ही इसी प्रकृति पुरुष की मिथुन घटित महोल्लास मय अवस्था है। यही अवस्था लाभ ही बाउलों की साधना का चरम लक्ष्य है। यही उनकी आ मोपलब्धि है सहज अवस्था की प्राप्ति।

इस सहज मानुष को धरने की क्रिया प्रसग मे क्रिया सक्रा त अनेक पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग होता है। न शब्दो का वि ले करना चित हो ा। उनके परिचय के साथ बाउल साधना क्रिया का भी सम्यक परिचय प्राप्त होगा।

महायोग

प्रकृति के रज प्रवृत्ति के ती दिन को बा महायो । कहते हैं। इसी सुसमय में वे मानुष

धरा की साधना करते हैं यही साधना ी उनकी प्रधान साधना है। इसी रजस्राव समय को वे अम्बुवाचि   अमावस्या आदि नाम से भी अभिहित करते हैं। र ा को उ होने अनेक स्थानो पर 'रूप नाम से भी अभिहित किया है। यही प्रकति का स्वरूप है।

त्रिवेणी

मेरुदण्ड के बायीं ओर इडा नाड़ी एव दाहिनी और पिंगला नाडी एव मध्य भाग मे सुषुम्ना नाडी अवस्थित है। ये मूलधार मे मिलती हैं। तत्र मे इ हीं तीन नाडियो को गगा यमुना एव सरस्वती नदी एव इनके मिलन को त्रिवेणी क ा ाता है। प्रतिमास मे प्रकृति का जो रजस्राव होता है उसे बाउल त्रिवेणी की तीन धारा विशिष्ट नदी के प्रवाह रूप मे कल्पना किए हैं। इसी प्रवाह को वे अनेक समय जोयार (ज्वार) या वन्या (बाढ) कहते हैं। इसी नदी की धारा मे अधर मानुष मीन रूप मे आविर्भूत होता है। इसी समय साधक त्रिवेणी के घाट पर मत्स्य का शिकार करेगा अधर मानुष को पकडेगा। बहुत से गानो मे इसका उल्लेख है। त्रिवेणी के इसी प्रवाह को वे सिंधु   रूप सागर श्रीरूप नदी आदि नाम से भी उल्लेख किए हैं।

फल

देह चक्र के सबसे निम्न चक्र मे मूलाधार मे चतुर्दल पद्म अवस्थित है। बाउल मूलाधार को स्वाधिष्ठान अर्थात् षड्दल भी समझते हैं। अनेक समय मूलाधार मे अष्टदल पद्म की भी कल्पना करते हैं। जननेन्द्रिय के मूल तक विस्तृत स्थान को वे मूलाधार नाम से समझते हैं। मूलाधार मे रज के आविर्भाव को उ होने फूल नाम से अभिहित किया है। लगता है चक्र के विभि न पद्म क पना के अनुसरण में समग्र रज प्रकाश को वे एक रक्त वर्ण फूल के आकार मे क पना किए हैं। सस्कृत मे रज का प्रति शब्द पुष्प या फूल है। पुन जरायु के बीच सन्तानोत्पत्ति के साथ लोहित वर्ण मासपिंड का सचार होता है। उसे भी फूल (Plice ta) कहा जाता है। रज के इसी विकास को वे फूल कहते हैं। यह अष्टदल पद्म   राधा पद्म   योनिपद्म नाम से भी जाना जाता है।

नीर और क्षीर

रज जलीय पदार्थ है। उसे बाउल नीर या जल नाम से अभिहित किए हैं। बहुत जगहो पर उसे कारण वारि कहकर भी उल्लेख हुआ है। कारण वारि मे ही सृष्टि का बीज तैरता रखता है। समस्त जीवसृष्टि का मूल रज और बीज है। यही रज एव बीज या शोणित एव शुक्र ही प्राणी के देह का गठन किए हैं यही उनका मूल उपादन है। यही

शोषित मातृशक्ति एव शुक्र पितृशक्ति है। इसी शक्ति के मिलित रूप या युगल की मानव की मूल सत्ता है। गुरु को बाउलो ने क्षीर कहकर अभिहित किया है। मानव देह मे नीर और क्षीर एकत्र विराजमान होते हैं। यही राधोबीना या नीर क्षीर मिलित सत्ता मनुष्य की सहज सत्ता है। यही सहज मानुष का स्वरूप है। सहज मानुष्य नीर क्षीर मे युगल रूप मे है नीर क्षीर मे खेला कर रहा है। नीर का स्वरूप अग्निमयी सृष्टिक्रिया रूपिणी है अत यह मोह सृष्टिकारिणी आकर्षण उन्मादना कारिणी है तत्र की भाषा मे यही शक्ति माया महामाया मूला प्रकृति अविद्या कुण्डलिनी आदि है। बाउल इसी को रति कहे हैं। इसी रति मे स्थूल देहाकर्षण या काम का स्वरूप वर्तमान है। क्षीर नाम से वे समझते है एक अचचल आनन्दमय अवस्था जिसका स्वरूप प्रेम होता है। किन्तु नीर और क्षीर काम और प्रेम एक आकार मे ही वर्तमान हैं उनको पृथक करने का उपाय नहीं है। इसीलिए साधना मे रसिक साधक हस की तरह नीर से क्षीर अलग कर लेगा। त्रिवेणी के नदी प्रवाह को वे नीर नदी या अनेक समय क्षीर नदी भी कहते हैं। कारण यहा नीर और क्षीर दोनो ही वर्तमान हैं।

राग

प्रकृति के कारणवारि को बाउल अनेक समय राग नाम से उल्लेख किए हैं। राग का प्रकृत स्वरूप काम है। इसी काम पथ का अवलम्बन करके जो प्रकृति पुरुष मिलनात्मक साधना है वही राग के पथ की साधना है। बाउल अपनी साधना को राग भजन राग करण आदि नाम से अभिहित किए हैं। अपने मन के मानुष को वे राग का मानुष कहते हैं।

चन्द्र

चद्र शब्द को बाउल विभिन्न अर्थ में समझे हैं। चद्र शब्द से साधारणत कई अर्थ समझे जाते है १ शुक्र २ शुक्ररूपी मन का मानुष या सहज मानुष ३ प्रेम ४ साधना लब्ध प्रत्यक्ष अनुभूति का ज्ञान या तत्वज्ञान ५ चन्द्रवत ज्योतिर्मय पदार्थ ६ क्षिति अप तेज मरुत व्योम उसके चार भूत स्वरूप या रासायनिक पदार्थों मे परिणत चार पदार्थ मल मूत्र रज और शुक्र हैं। इनको चारिचन्द्र कहते हैं। पुन देह के विभिन्न स्थान मे चन्द्र की अवस्थिति की कल्पना बाउल किए हैं। देह मे कल साढे चौबीस चन्द्र वर्तमान हैं कर नख १ पद नख में १ दोनो गण्ड में २ अधर मे १ जिह्वा मे १ ललाट मे १/२ (अर्द्ध) यही कल साढे चौबीस चन्द्र हैं। अष्टम इन्दु या आठ चन्द्र का भी निर्देश है मुख मे १ स्तन २ हस्त २ वक्ष १ नाभि १ उपस्थ एक (१) यही अष्ट इन्दु हैं।

रस

रस से बाउल साधारणत द्रवीभूत पदार्थ समझते हैं। शुक्र रज और मूत्र को समझते हैं। कभी कभी शुक्र शोणित की मिलित अवस्था को भी रस नाम से उल्लेख किया गया है। रस का भियान (पकाना) करना उनकी साधना की प्रधान बात है। बाउलो का भजन रस का भजन है। लगता है प्रकृति पुरुष मिलन की चरम आन दानुभूति अधिगम्य करने के क्रम से सम्पूर्ण देह की अन्त स्रावी ग्रन्थियों की क्रिया से बाउल अवगत थे। पुन बाउल साहित्य में रस अर्थ में रसेन्द्रिय ग्राह्य रस कट तिक्त कषाय लवण अम्ल मधुर इन्हीं छ रसों को भी किसी स्थान पर माना गया है। दो एक स्थान पर अलकार शास्त्र के नौ रस आदि या श्रृगार हास्य करुण अद्भुत रौद्र वीर भयानक वीभत्स शान्त को भी समझा गया है। अनेक स्थानों पर शान्त हास्य सौख्य वात्सल्य एव मधुर इन पाच रसो को भी समझा जाता है।

साधना का विशेष समय

प्रकृति क रज प्रवृत्ति बा लों की स घ । के क्ष मे एक ुरुत्व पूर्ण व्या   है। परमा मा के जगत का जो प्रकृति पुरुष है यही दो रूप में अवस्थित है उसी प्रकृति पुरुष की अन्तर्निहित मूल सत्ता रज और बीज है। रज प्रकृति की शक्ति बीज पुरुष की शक्ति है। इसी रज और बीज के मिलन में तत्र की भाषा में यह सितशोण वि दु युगल का यही शिव और शक्ति का मिलन ही सृष्टि है। पुरुष की देह में बीज के प्राधान्य में वह पुरुष प्रकृति की देह में रज के प्राधान्य में वह प्रकृति है। प्रत्येक देह का उर्ध्वांग बीज का स्थान एव निम्नाग रज का स्थान है। पुरुष देह में प्रकृति की सत्ता कलकुण्डलिनी रूप मे मूलाधार में सुप्त है। बाउल पुरुष देह की बीज रूपी सत्ता को ईश्वर कहे हैं। वही बीज की चाचल्य हीन स्वरूप निस्तरग अटल अवस्था है। प्रकृति की देह में उत्तमाग मे या सहस्रार में बीज की स्थिति है। किन्तु   लो के निक   यह बी   ता य ई वर श्रृगार रस भोक्ता लीलामय निरन्तर कामक्रीडा शील है। प्रकृति सत्ता में रजो रूप का जब पूर्ण प्रकाश होता है त मस्तक से यही बीज रूपी ई   र   त क   के स थ मिश्रित होता है। यह लीलामय मधुलुब्ध भ्रमर की तरह पद्मरस आस्वादन के लिए रसाकार में मिलित होकर श्रृगार का उपभोग करता है। यही उनका 'सहज मानुष है। 'सहज अर्थ में देह की मूल स्वाभाविक सत्ता है। यही मूल सत्ता रजोबीज की मिलनावस्था है। यह मिलन मिथुनीभूत अवस्था या काम क्रीडा है। प्रकृति सत्ता मे बीज रूपी 'मानुष या सहज मानुष लीलामय ईश्वर रजोरूप के साथ मिथुनासक्त होता है। यह मिलन काम की क्षणस्थायी चचल क्रीडा नहीं है। वह चचल काम क्रीडा की परिणाम सृष्टि है। यह काम क्रीडा अटल अचचल स्थिर होती है यह प्रेम की क्रीडा है। काम की लीला में रजोबीज के मिलन में सृष्टि और प्रेम की लीला मे अचचल मिथुनानद है। इस अटल मिथुनानद

ा उदभव काम का नाश करके होता है सृष्टि ारा को रोध करक एव उस ऊर्ध्वगामी करके। यही स्थिर अचचल आन दानुभूति की सहजावस्था हे। रजोबीज का य ी अचचल मिथुनोद्भूत आन द ही परमत व का नित्यस्वरूप है। किन्तु इसी अचचल अवस्था में या प्रेम में पहुचने पर काम का त्याग नहीं किया जाता। काम के साथ प्रेम मिश्रित है। रज का स्वरूप काम बीज का स्वरूप प्रेम है। रजोबीज की मिलित अवस्था मे प्रेम को काम से पृथक करना होगा। मथन के द्वारा साधक काम से प्रेम को अलग कर लेगा। अत रज स्राव के समय को आश्रय करके ही बाउलों की मूल साधना है। काम का प्रकाश अपसारित होने पर प्रेम का प्रकाश होगा। तब उसी प्रेम रूपी सहज मानुष को अर्थात् स्थिर प्रेमानद की अनुभूति को योग क्रिया अर्थात कुम्भक की सहायता से साधक अपने अटल नित्यस्थान शीर्ष देश में ले जाएगा। यही विवर्त्तविलास की भाषा मे जहा की वस्तु वहा देना है। तब प्रकृति पुरुष के अविचल प्रेम मिलन में देह वृ दावन मे राधाकृष्ण के युगल मिलन साधक नि तर मिथु । द की पलब्धि करे ।। यही रजोबीज के अचचल स्वरूप का आस्वादन है यही सहजावस्था की प्राप्ति है। यही मानुष धरा सहज मानुष धारा है। यह सहजानद लाभ ही आ मस्वरूप की उपलब्धि है।

यही बा साधना का । ८७ यही इस साध । मे ज की अपरिहार्यता का रहस्य है। बाउलो की प्रधान साधना का समय महायोग के उपलक्ष्य मे आता है। प्रति महीने के अत में यही महायोग उपस्थित होता है। इसी समय जब नदी मे बाढ गर्जन करती है उसी समय सहज मानुष रूपी मछली आकर उपस्थित होती है तब सुचतुर जलपूर्ण नदी में बाध देकर मछली पकडता है इसी समय सुयोग न लेने पर बाद मे बाढ का अत होने पर मछली नहीं मिलेगी। लालन कहते हैं

समय बुझे बाधाल वाधले ना।
जल शुकावे मीन पालावे पास्ताबि रे मन क्राना।।
तिरपिनिर तीर धारे
मीन रूपे साई विहार करे
(तुमि) उपर उपर वेडाओ घुरे
से गभीरे डुबले ना।।
मास अन्ते महायोग हय
नीरस हते रस भेसे याय
करिये से योगेर निर्णय
मीन रूपे खेल देखले ना।। (पृष्ट ३८९)

यह जो नदी है इसको लालन आव हायात या उल हायात अर्थात् जीवन नदी कहे हैं। इसका रहस्य अद्भुत है देह रूप नौका मे यह गगा नदी मालूम होती है अकस्मात

बाढ की नदी किनारो को पार कर जाती है पुन तत्क्षण सूख जाती है। इस प्रकाण्ड गगा मे एक मछली क्रीडा करते हुए घूम रही है

लीला देख लागे भय।
नौकार उपर गगा वोझाइ
गगा डागा वेये याय।।
आव हायात नाम गगा से जे
सक्षेपे केउ देख बुझे
पलके पाउडि भासे
पलके शुकाय।।

जगत् जोडा मीन सेइ गागे
खेलछे मेला परम रगे
लालन वले जल शुखाले
मीन मिशिवे हाओयाय।। (पृष्ट ३८९)

इसी वर्षाकाल मे बाध बाधकर मछली न पकडने पर अर्थात् समय पर साधन न करने पर कोई फल ही नहीं प्राप्त होता। नरसिहदि के एक बाउल सावधान करते हैं

किछ हवे ना रे समय गेले।
समये साधन ना हले।।
एइ वर्षाकाल रइलि रसे
मीन चले याय जले भेसे
वर्षा गेले जल शुकाले
कि हवे पाछे बाध वाँधिले।
अकाले कृषि करा
लाभ नाइ तार मूले हारा
यदि फले वीजधर्मे
फल फुटे तार फल ना फले। (पृष्ट ३९)

लालन इसी नदी के रहस्य मीन पाने की आशा के समय और उसको पकडने के कौशल के सम्बन्ध में कहे हैं

सामान्ये कि चिने सेइ नदी
सेथा विने हाओयाय ढेउ ओठे निरवधि
शुभयोगे जोयार आसे यदि
त्रिवेणी भेसे याय समाने।।

मृत्तिकाहीन नदी परे
मीन एक आसा जाओया करे
अन्ये चिनते पारवे केने।
पुर्णिमार योगे से मीन भासे
कारुण्य तारुण्य एसे लावण्ये यखन मिशे
साधके मीन धरिते पारे सेइ दिने। (पृष्ट ३९)

बाउल प्रकृति के रज प्रवृत्ति के समय को आमावस्या कहते हैं। यह घोर अ धकारमय काम का समय है। काम के स्वरूप को उल निरवच्छि न देह भोग के अधकारमय शक्ति रूप में समझते हैं। उसी अमावस्या में ही उनका पूर्णच द्र उदित होता है। यही पूर्णच द्र 'सहज मानुष या अधर मानुष यही प्रेम स्वरूप है। इसीलिए अनेक स्थलो पर वे अमावस्या को काम समझे हैं एव पूर्णिमा को प्रेम नाम से अभिहित किए हैं। यही अधर मानुष या परमा मा सहस्रार मे अटल रूप मे विराजित है। ये इसी योग के समय रस रूप मे प्रकृति देह मे क्री । क ते हैं ए व पू f भाव में मू र मे प्रकृति के कार रि मे आविर्भूत होते हैं। इसी आविर्भाव को वे पूर्णिमा का योग कहते हैं। यही बाउलो का अमावस्या का पूर्णच द्र उदय है। इसी समय उनके अमावस्या पूर्णिमा का एकत्र योग होता है। इसी यो I के तृतीय दिन में या किसी स दाय मत मे चौथे दिन मानुष पकडने का प्रशस्त दिन होता है। लालन के एक गाने मे है

सोनार मानुष भासछे रसे।

पिता मातार नाइ ठिकाना
अचिनदले वसतखाना
आजगुवि तार आओना जाना
कारणवारिर योग विशेषे।।
अमावस्याय च द्र उदय
देखते यार वासना हृदय
लालन वले थेको सदाय
त्रिवेणीते थेको वसे। (पृ ३९१)

अनेक बाउलो के अनेक गानों मे इसका चित्रण है। गोसाई गोपाल ने कहा है

अमावस्याय पूर्ण च द्र ये करे उदय
स्वर्ग मर्त्य पाताले तिन धामेते हवे जय
सामान्येर कर्म नय साधिले सिद्ध हय।। (पृ ३९२)

घोर अधकार को दूर करके वहा ज्जवल ज्योत्स्ना का विकास क ना काम को उर्ध्व ।त

करके प्रेम मे परिणत करना वास्तव मे ही कठिन साधना ।।।।।। ।।।। ।।
जय घोषणा त्रिभुवन व्यापी होगी उसमे और आश्चर्य क्या

इसी तीन दिन बाउल तीन प्रकार की साधना क्रिया का अनुष्ठान करते । । स ।।
दिन के कारण प्रवाह का कारुण्यामृत तारुण्यामृत और लावण्यामृत ।।।।।।।। ।
इन दिनो की क्रिया की अन्तिम दशा मे अधर मानुष को पक ो ी ने ।।।। ।।
हैं। इसी अधर मानुष के या सहज मानुष के आगमन क सम्बन्ध मे साधक को
खूब होशियार होना होगा यह सूक्ष्म अनुभूति सापेक्ष है। राढ के प्रसिद्ध बाउल अनुराग
गोसाई ने कहा है

चिन्मय मधुरे धर ओ से श्री अधर।
मधुरे सुमधुरे आछे देख ना खुले निज घर।।
रूप सागरेर लाल जले
समय बुझे मानुष खेले
बुझते पारे रसिक हले
रूप सागरे देय नजर।।
रूप सागरे तिन धारा
बुझते पारे रसिक यारा
सदाइ रूपे देय पाहारा
निरिख दिये सेइ लहर।।
प्रथमे गुणेरि मानुष
भक्ति करे राख धरे हश
द्वितीयाते होस ना वेहुश
निर्विकार तारे स्मर।।
पूर्ण ईश्वर उदय तिने
निरिख दिये सेइखाने
जोयारेते सधान कर।।
तार परे सहज आसे
धाके रसिक साधक तारि आशे
रूप सागरेर रूप रसे
मन मिशिये कर खवर। (ग ३९३)

गाने मे रूप सागर की तीन धारा मे प्रथम द्वितीय तृती।।।।। ।। ।। ।।
साधक के कर्तव्य के सम्बन्ध मे रचियता ने सकेत किया है। ।।।।।।। ।।। ।
लाल जल मे मनुष्य के लिए नजर देना निरेख।। । । । । ।।
होगा। पहले दिन गुण का मनुष्य आएगा द्वितीय बेहोश ।।।। । । ।।। ।।।।। ।

'मा ईश्वर का उदय होगा उसके ता सहा ।।यगा। साधक रा भ की । ।गे रूप सागर व रूप रस मे मन मिलाकर खार करे।।।

तीन दिन की क्रिया

रज प्रवृत्ति के प्रथम सूत्रपात के दिन को बाउल अमावस्या कहते हैं। इस दिन तमोगुण का प्रकाश होता है। यह निरवच्छिन्न काम का अधिकार है। बाउलो ने ब्रह्मा को प्रथम दिन के अधिपति रूप में वर्णन किया है। इसका तात्पर्य यही है कि ब्रह्मा सृष्टिकर्ता है। यह सृष्टि निरवच्छिन्न काम की लीला सूचक है। यह उनके विचार मे अधोगति या जीवाचार है। इसीलिए इसे ब्रह्मा का दिन कहते हैं। इसी अमावस्या या प्रथम दिन की धारा मे गरल का प्रकाश होता है ऐसा अनेक मानते हैं। काम रति गरल के साथ खेलती है। इसी दिन अधिकाश सम्प्रदाय के साधक साधिका प्रथम वर्षण का बिन्दु पान करते हैं। यही रज चारिचन्द्र का अन्यतम है। इसके पान से साधक साधिका के देह मे एक परिवर्तन अनुभूत होता है जो परिवर्तन उसके साधक जीवन मे सहायक होता है। इसी ग्रहण क्रिया को भेद कहते हैं। इसी भेद में देह पक्व होती है। देह पक्व न होने पर बाउल भजन की सफलता नहीं है। इसीलिए साधकगण इसी भेद पद्धति का सहारा लेते हैं। इसी प्रकार प्रकृति पुरुष उभय का बिन्दु ग्रहण का विषय विवर्त्तविलास मे उल्लिखित है। यह आत्मरक्षा का हेतु कहा गया है। यह प्राकृत बिन्दु ग्रहण के बाद अप्राकृत बिन्दु मे परिणत होता है। नवद्वीप सम्प्रदाय के बाउल एक विशेष अनुष्ठान के साथ इसे ग्रहण करते हैं। इसका शोधन मन्त्र है। इसी मन्त्र से शोधन करके पान करते हैं

गुरूनाले खाइ वीज व्रह्ममनाले चाकि
ये वयसे खाइ वीज सेइ वयसे थाकि।
ऐं ह्रीं रक्तचन्द्र शोधन ऊँ स्वाहा। (पृ २९)

मुसलमान जाति के बाउल या फकीर कोई मन्त्र पाठ नहीं करते फिर भी अनेक आलेकजान या मुरशीदजान या खुदानिरजन प्रभृति उच्चारण या जयगुरू आदि उच्चारण करके पान करते हैं। किसी किसी स्थान के साधक इस दिन रज और बीज को मिश्रित करके पान करते हैं। वे इसे रस रति का मिलन कहते हैं। इस उभय वस्तु के ग्रहण की एक पद्धति उनमे से अनेक पालन करते हैं। दोनो स्थान से साधक साधिका मुख द्वारा आकर्षण करके परस्परा की वस्तु ग्रहण करके मिश्रित करके दोनो पान करेंगे यही नियम है। इस साधना मार्ग के बहुत से साधक इसी प्रकार देह से बाह रस रति का मिलन करते हैं। कोई एक मास मे कोई तीन मास के बाद कोई छ मास के बाद कोई वर्ष मे एक बार यह मिलन करता है।

कारणवारि आविर्भाव के प्रथम चौबीस घण्टे को (अष्टप्रहर) एक दिन माना जाता है। पहले इसके पान के बाद मिलन होता है। एक क बाद एक तीन दिन के मिल को बा ल

रस का भियान करना रस का पाक करना कहते हैं। जैसे मिश्री बनाने वाला लोहे की कडाही मे रस चढकार क्रमश अग्नि के ताप मे कौशल से आवर्तन करते करते रस गाढा करके मिश्री बनाता है जैसे दधि मथन से मक्खन उ पन होता है उसी प्रकार तरल वस्तु से गाढ वस्तु उ पन करना होगा। जो उपयुक्त रस का पाक अच्छी तरह से जानता है उसको रसिक मयरा (रसिक हलवाई) कहा गया है। दूध और जल मिश्रित करने पर जैसे राजहस जल को अलग करके दूध पान करता है रसिक साधक भी उसी प्रकार नीर को छोडकर क्षीर को ग्रहण करेंगे। इस रस का पाक करने के लिए वाण शिक्षा अर्थात् सुकठिन योग मिलन का कौशल आयत्त करना होगा।

तीन दिन के तीन प्रवाह को विभि न नाम से अभिहित किया गया है। प्रथम गरल रस द्वितीय शाम्भु रस तृतीय अमृत रस। तीन दिनो के तीन रस में तीन प्रकार के रति की कल्पना की गयी है। गरल रस मे साधारणी शाम्भुरस मे समजसा एव अमृत रस मे समर्था रति विराज करती है। तीन रस के साथ यही तीन रति जो पाक करता है वही विशिष्ट साधक है। इसी पाक के द्वारा ही प्रेम रूप र न प्राप्त किया जाता है। यही अधर मानुष त्रिवेणी की तीन धारा भाव में नदी के ज्वार भाटा मे आ म प्रकाश करता है।

मुसलमान बाउल या फकीरों पर भी गौड़ीय वैष्णव धर्म एव चैतन्य चरितामृत का विशेष प्रभाव लक्षित होता है। गौडीय वैष्णव गोस्वामियों ने तीन रति का उल्लेख किया है साधारणी समजसा एव समर्था। साधारणी रति मे केवल देह मिलन की आकाक्षा ही प्रबल रहती है। यह निछक काम प्रचेष्टा है। कब्जा का प्रेम साधारणी रति का दृष्टान्त है। ह ९क न्त देह   भो च्छा से ही द्भूत है। इसमे आ मेंद्रिय प्रीति ही प्रबल है। समजसा रति मे कछ परिमाण मे सभोगेच्छा रहती है किन्तु अधिक परिमाण मे कृष्ण में प्रीति वर्तमान रहती है। इस रति का दृष्टान्त हुई रुक्मिणी आदि कृष्ण महिषीगण। और जिस रति मे बि दुमात्र भी सम्भोग की इच्छा नहीं रहती कृष्ण सुखार्थ सम्भोगेच्छा का उद्भव होकर जिस रति के द्वारा नायिका तादाम्य प्राप्त करती है वही समर्था रति है। यह रति केवल ब्रज की गोपियों में ही उद्भूत होती है। ब्रज गोपियों की रति ही समर्था रति का दृष्टान्त है। यह रति उत्तरोत्तर वर्धित होकर प्रेम स्नेह मान प्रणय राग अनुराग भाव और अत मे महाभाव तक पहुच पाती है।

अतिम दिन के रति को बाउल समर्था रति कहे हैं। इस दिन के रस का नाम अमृत रस है। प्रतिदिन की क्रिया मे रति उत्तरोत्तर परिशुद्ध होकर समर्था रति मे परिणत होती है इस रूप मे बाउलों ने कल्पना की है। इसी तीन दिन के रस के मिलन मे ही र न प्राप्त किया जा सकता है उत्तरोत्तर वृद्धि या क्रम परिशुद्धि के भाव एव अतिम दिन का अमृतरस का नामकरण भी चैतन्य चरितामृत के प्रभाव का फल है।

योग मिल‌ा क्रिया

कारण प्रवाह के तीन दिन वे योग मिलन क्रिया का अनुष्ठा । करते हैं। यही तृतीय दिन के अत मे अ । चतुर्थ दिन क प्रथम में नके इस पर्याय की मिलन क्रिया की पू । परि ।ति होती है। कहा जा है कि इसी दिन सहज मानु । का आविर्भाव होता है। इस समय मिलन साधक जीवन का आवश्यक कर्तव्य है। इसके अलावा इस के बाद भी वे योग मिलन क्रिया का अनुष्ठान करते हैं। यह मिलन प्रकृति पुरुष की मानसिक अवस्था क ऊपर नि र करता है। कारण प्रवृत्ति से सत्तरह दिन तक मिलन का समय ोता है।

नामाश्रय एव मत्राश्रय

प्रवर्त साधक एव सिद्ध साधना की इसी तीन अवस्था की ये गणना करते हैं। प्रवर्त अवस्था में नामाश्रय एव नामाश्रय के पहले गुरुकरण आवश्यक है

प्रथमे आश्रय हय श्री गुरू चरण।
तवे नामाश्रय हय शुन व धुजन।

गुरु पहले नाम देते हैं। यह नाम नाना प्रकार का है। उनमे निम्न विशेष प्रचलित हैं

हरिनाम

(१) हरिनाम महामत्र चारिवेदेर सार।
नामाश्रय हय इथे कहिल निर्द्धार।
(२) हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इसी प्रकार गुरु प्रथम हरि नाम बाद मे हरे कृष्ण इत्यादि नाम देते हैं।

षोल नाम पत्रिस अक्षर करान आश्रय।
आपनार वीजमत्र तवे समर्पय।

गुरुमत्र

क्लीं गुरूदेवाय कृष्णवैष्णाव स्वरूपाय सर्वशक्ति पद्माय नम ।

गुरु गायत्री

गुरूदेवाय विदेह कृष्ण स्वरूपाय
धीमहि त नो देवो प्रचोदयात्।

इसके बाद

दीक्षा मत्र

क्लीं कृष्णाय गोवि दाय

गोपीजन वल्लभाय स्वाहा
एइ अष्टदशाक्ष्यर मत्र दिक्ष्यादि करण।
एइ मते गुरू करने आमासमापन।।
गुरू आमा सिद्ध वलि सर्व्व सास्त्रे कय।
एइ मत्र दिए गुरू आत्मा करि लय।।
इहा हइते सस्कार मानुष हय जिव।
सपतिर धम्म इए जानिवे निसचित।।

सस्कार मानुष जेहो दारकार पति।
ऐसटय सागरे तेंहा करे गतागति।।

सर्व्व जिवे भावे तेह जिवरूप सक्ति।
सक्त्यरूपे विष्णु सेइ हय विधि भक्ति (आश्रय तत्व) (उ ना भ पृ ४ ६)

भावाश्रय

इस समय साधक का समस्त आचरण वैधी भक्ति के आचरण के अनुरूप मनुष्य पालित होता है। इसके बाद भावाश्रय होता है। भावाश्रय में राधा कृष्ण के वृदावन निकज मे माधुर्य लीला की साधना का सूत्रपात होता है। तब प्रकृति आश्रय एव रागानुसार भजम आरम्भ होता है।

इस समय मे भी नाम एव मत्र ग्रहण है। उसको पचनाम कहते हैं यथा

कृष्ण कृष्ण गोविन्द राधाकृष्ण
'क्लीं स्लीं गोपीजन वल्लभाय नम
एइ द्वादसाक्षर दिक्षादि करण।
गोपी अनुगत हय कृष्णेर भजन। (आश्रय तत्व) (उ ना भ पृ ४)

इस पचनाम की व्याख्या उपेन्द्रनाथ भटटाचार्य ने निम्नवत की है

कृष्ण अनुराग या आकर्षण।
कृष्ण वाह्य कामादि का परित्याग।
गोविन्द प्रकृति का देह ग्रहण
राधा आराधन कार्य या श्रृगार।
कृष्ण सम्मिलित सत्ता की एकात्म अनुभूति।

इसी समय साधक काम बीज मत्र एव काम गायत्री एव कृष्ण और राधिका का नाना बीजमत्र ग्रहण करता है।

काम बीजमन्त्र

क्लीं

काम गायत्री

क्लीं कामदेवाय विद्दहे पुष्पवाणय धीमिह
तन्नो कृष्ण प्रचोदयात्।
कृष्णेर गाइत्रि शुन रसिकेर गण।
कामरूपा गाइत्रिते राधा उपासन।
साड़े चव्विश अक्षर श्रीमती उपासन।
कृष्णेर आश्रय राधा सुन सर्व्वजन। (आश्रय तत्व)
(उ ना भ पृ ४)

राधिका का बीजमन्त्र

ऊ श्रीं ह्रीं राधिकायै स्वाहा

राधिका की गायत्री

स्लीं राधिकायै विदेहे प्रेम रूपाय धीमहि
तन्नो राधे प्रचोदयात्।
'दुइ विजेर मूर्ति राधा कृष्ण अनुगत।
दुहे दुहार अनुगत व्रजे अभिमत
दुहे दुहार अनुगत हये दुइ जन।
सजन मानुष भजे से अति गोपन।।

मदन कन्दर्प दुई प्रिकिति पुरूष
वृन्दावने अप्राकृत सहज मानुष। (आश्रय तत्व) (उ ना भ पृ ८)

कृष्ण का अन्यान्य बीज मन्त्र

ऊँ क्लीं ग्लीं गोविन्दाय स्वाहा
ऊ क्लीं ह्रीं कृष्ण गोविन्दाय स्वाहा

चैतन्य बीज मन्त्र

क्लीं कृष्ण चैतन्याय नम

भावाश्रय में प्रकृति साधना आरम्भ होती है। तभी रसाश्रय भी लेना होता है इस रसाश्रय की परिणति प्रेमाश्रय मे होती है। यह प्रेमाश्रय सिद्ध अवस्था कही जाती है। यही आनुष्ठानिक आश्रय तत्व है।

ोग मिलन क्रिया की पद्धति

भावाश्रय या पकृति साधना से योग मिलन क्रिया आरम्भ होती है। वैष्णव सस्कार प्रबल नामाश्रय मन्त्राश्रय प्रभृति को बाउल आनुष्ठानिक रूप मे ही पालन करते हैं। किन्तु नुसलमान बाउ ा या अन्यान्य स्थान के किसी किसी सम्प्रदाय के बाउल अनुष्ठानिक रूप े इसका पालन नहीं करते। फकीरगण आलेखजान मुरशीदजान या खुदा नेरजन प्रभृति नाम का उच्चारण करते हैं किन्तु विशेष रूप मे कोई जप एव अन्य प्रकार का अनुष्ठान नहीं करते। हले वे व सम्बन्ध मे ु मु से धमिक आलोचना नुनते हैं एव श्वास की क्रिया का अभ्यास करते हैं।

ोग मिलन क्रिया इस साधना का सवपिक्षा कठिन अश है। यही प्रकृत बाउल साधना । आश्रय केवल एक अनुष्ठान मात्र है योग मिलन ही इनकी साधना है। क्रिया आरम्भ ेने से पूर्व प्राथमिक रूप में पूरक रेचक कम्भक प्रभृति श्वास प्रश्वास निय त्रण एव नूत्रद्वार तथा शुक्रद्वार के सकोच प्रसार की शिक्षा लेनी होती है। बाउल दम का काम बहुत मह वपूर्ण मानते हैं। योग मिलन क्रिया व्यापार को सभी दम का काम मानते हैं। दम के ऊपर उनकी इसी कठिन साधना की सिद्धि निर्भर करती है। दम का अर्थ नि श्वास प्रश्वास का नियन्त्रण या रोध करना है।

पहले गुरु उपदेश के अनुसार वे श्वास क्रिया निय त्रण या प्राणायाम अभ्यास करते हैं। पहले वाम नासा द्वारा वायु खींचकर कछ क्षण वह वायु धारण करके धीरे धीरे दक्षिण नासा से उसका त्याग करते हैं। पुन दक्षिण नासा द्वारा वायु खींचकर कछ क्षण रखकर वाम नासा से त्याग करते हैं। पहले आठ बार इसके बाद सोलह बार इसके बाद बत्तीस बार इसके बाद चौंसठ बार। इसी प्रकार प्राणायाम अभ्यास करते हैं। यही पूरक कुम्भक एव रेचक शिक्षा है।

स प्रकार अभ्यास के द्वारा कुम्भक क्रिया की शक्ति अर्जित होती है। इसी कम्भक शक्ति के ऊपर बाउलों की साधना क्रिया की सफलता काफी निर्भर करती है। इसी कम्भक द्वारा समस्त नाडी परिशुद्ध होकर क्रमश वायु सुषुम्ना पथ मे चलना आरम्भ करती है। 1 यु की स म्य वस्थ के थ बि दु क स्थैर्य ।धित होता है। यही स्थिर बि दु का र्ध्वपथ मे ।लि क ही की भू है। बाउलों की भाषा में जो जितना म्म रख पाएगा वह उतना ही शीघ्र साधना में सिद्धि लाभ करेगा।

ाण क्रिया

सी क भक ।क्ति क ऊ ही । क्रिया निर्भ र क ती है। मदन मादन शोषण स्तम्भन एव सम्मोहन यही मि व्य पा मे । । की क्रिया है। वाण पुरुष शक्ति एव गुण प्रकृति शक्ति का प्रतीक है। यही अनेक समय बाउलों के सकेतार्थक भाषा में व्यक्त हुआ

है मूलत यह लिग योनि है। इसी ग ा मे वा ा या ाना वरव उर्ध्व िशा । लेकर लक्ष्य ेद करना होगा इस पकार बाउल सा ि्य मे उ ेख है। पवा ान दास की पोथी मे है

गुणे वाणे हाय रसिकेर करण।
पचवाणेति ताहार करेन साधन।। (पृ ३१)

र नसार पोथी मे है

मदन मादन आर शोषण स्तम्भन।
सम्मोहन आदि करि रसिक करण।।

मिलन क्रिया में बाउल प्रकृति पुरुष के शारीरिक एव मनस्ता ि्वक अश के ऊपर विशेष दृष्टि देते हैं। कारण देह और मन के सर्वांगीण मिलन मे ही उभय शक्ति का सामरस्य सघटित होता है। यह मिलन न होने पर साधना का प्रकृत उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। अनेक पदों में उसका उल्लेख है

उभये समान हैले तवे इहा मिले।
साधारणी हइले इथे याय रसातले।।
प्रेम विलास (सहजिया पोथी)
(उद्धृत उ ना भ पृ ४१)

दोहे एक अये डुवे सिद्ध हय तवे।।
दोहार मन ऐक्य भावे डुवि एक हय।
तवे से सहज सिद्ध जानह निश्चय।।
प्रेमानद लहरी (सहजिया पोथी)

पुरुष प्रकृति दोहे एक रीति
से रति साधिते हय।।
चण्डीदास का पद

साधना की दृष्टि से मदन रति शक्ति का उत्तेजक प्राथमिक क्रिया का प्रतीक है। प्रकृति देह के विभि न स्पर्श कातर स्थानो का स्पर्श विशेष रूप मे आख की दृष्टि आदि द्वारा उत्तेजना वृद्धि। मादन प्रकृत क्रिया का प्रतीक है बाउलो की भाषा का हिल्लोल । इसी समय तरीत ते ना। वृद्धि क ने की चेष्टा की ।ती है इसी समय दक्षिण की पिंगला नाड़ी से सामान्य कछ क्षण नि श्वास प्रश्वास प्रवाहित करना होता है एव दाहिनी आख से दृष्टि निबद्ध करना होता है। प्रथमत मदन मे बायीं इडा नाडी मे अर्थात् वाम नासिका में श्वास ग्रहण आरम्भ करके मादन में दाहिनी पिंगला नाडी मे अर्थात् दक्षिण नासिका मे कछ समय तक श्वास ग्रहण करके उत्तेजना वृद्धि की चेष्टा करनी होती है। बाउलो का वाम एव दक्षिण शब्द विशेष अर्थ ज्ञापक है। वाम मे च द्रनाडी इडा की साम्यावस्था

दक्षिण में पिंगला सूर्यनाडी चाचल्य जनक अवस्था है। ि । । ।। । ।। ।। ॥ । । ।
बिन्दु चाचल्य स्वाभाविक है इसीलिए हमेशा वे दक्षिण का ।रि याग । र । । । ो ।स
के सहजिया पद मे है

दक्षिण दिगेते कदाय ना यावे
याइले प्रमाद हवे।

किन्तु वाण साधना के द्वितीय पर्याय मे मादन साधना के समय सामान्य रुछ क्ष । । ि ।
दक्षिण का अवलम्बन करने का तात्पर्य यही है कि काम के वृद्धि मे विलास पूर्णता प्राप्त करता है। विलास द्वारा काम चेतना को उद्‌बोधित न करने पर व पूर्ण परिणति प्राप्त नहीं कर पाता।

वामाराग हय अति रसेर उल्लास।
दक्षिणा रागेते हय यथायोग्य विलास।

यथायोग्य विलास के लिए ही लगता है इस स्तर पर काम की उ ो ।। ।। प्रयोजन होता है।

मदन मादन वाम और दक्षिण नेत्र में अवस्थित मानकर चण्डीदास के सहजिया प मे भी कहा गया है

मदन वैसे वाम नयने।
मादन वैसे दक्षिण कोणे।।

तृतीय शोषण वाण है। इस वाण की क्रिया मे विशेष योगाभ्यास की आवश्यकता होती । साधारणत योगशास्त्र मे जिसे ब्रजोली मुद्रा कहते हैं अधिकाश उसकी ही क्रिया है। यह क्रिया वे गुरु उपेदश से पहले ही आरम्भ करते हैं। प्रथम लिगनाल मे ।। शोषण इसके बाद दुग्ध शोषण आदि सीखते हैं। इसके बाद मिलन क्रिया के समय वे रूप रति रस शोषण करते हैं। साधना क्रिया के अग मे इसी तीन बात का एक विशेष अर्थ है। बाउल रूप कहने पर रज रति कहने पर स्त्रीवीर्य एव रस कहने पर शुक्र को समझते हैं। मथन से निकला बिन्दु प्रकृति का एक विशिष्ट आभ्यन्तरीय रस क्षरण एव रज का कछ अश साधक शोषक वाण मे आकर्षण करता है।

इसके बाद ही स्तम्भन वाण होता है। स्तम्भन मे उभय देह के रस की एक स्थिरता सम्पादित होती है एव चचलता की और सम्भावना नहीं रहती। स्री अवस्था । । ।। ।। चलते रहने के क्रम में देह के विभिन्न स्पर्श कातर अश स्पर्श एव ना ।। ।। । ो सी स्थिर अचचल आनन्दानुभूति को उत्तरोत्तर वर्धित करके चरम अवस्था मे ो ।।।। ।।।। है।

इसके बाद ही सम्मोहन या मोहन आता है। इस समय क्रमश हे रमृति । । ो ।।ी

वा । गुप्त आनन्द ी । तगायित । भ। [ा । है। ि ौ का ौ ते मरा (जीते हुए मरना) अवस्था है। यो उके प्रेम की अवस्था । ा काम या देह भोग की अवस्था उत्तीर्ण हो जाती है अब दोनो पक्षों मे ही पुरुष या प्रकृति रूप मे कोई अभिमान नहीं रहता। केवल एक विपुल आनन्द की अनुभूति वर्तमान होती है। यही काम के बीज से प्रेम के उद्भव का स्वरूप है।

इसके बाद इस अनुभूति को क्रमश ऊपर उठाने की क्रिया आरम्भ होती है। नाभि पद्म से हृदय पद्म मे इस अनुभूति को उ ने के समय बा ल कछ कठि ाई के अनुभव करते हैं। इसके बाद से स्वेद कम्प प्रभृति भावो का स्फरण आरम्भ होता है नाना सुमधुर ध्वनि सुनी जाती है। अन्त में आज्ञ क्र के द्विदल द्म मे चरम परि ाति होती है। उसी समय पूर्ण महाभाव की अवस्था होती है। शक्ति के अनुसार अर्थात् शक्ति अर्जन के अनुपात मे साधक जब तक इच्छा रहे इस अवस्था में अवस्थान करता है। इसके बाद क्रिया की विरति में धीर धीरे पूर्व की स्वाभाविक अवस्था प्राप्त होती है। यही बाउलो के योग मिलन की क्रिया का सामान्यत ढाचा है। अब इसी तीन दिन की क्रिया एव उसके बाद की चौथे दिन की क्रिया यथाक्रम वर्णित होगी।

१ प्रथम दिन के प्रथम अश मे बाउल पान क्रिया का अनुष्ठान करते हैं। इसके बाद मिलन क्रिया। यह मृदु मध्य स्वर क्रमात की आयुर्वेदिक प्रक्रिया की तरह होती है। यही तीन दिनों के हिल्लोल का स्वरूप है। प्रथम दिन प्रथम दो वाणों की क्रिया के अलावा अन्य वाणों की क्रिया नहीं की जाती। अति धीरे धीरे अति सन्तर्पण से इसी क्रिया का अनुष्ठान किया जाता है।

अग्नि द्वारा ज्वाला देकर एव उसके साथ आवर्त्तन या आन्दोलन द्वारा किसी तरल पदार्थ को गाढ करने की कल्पना इस साधना क्रिया के मूल मे वर्तमान देखी जाती है।

जलेर मध्ये अग्नि ज्वाला लालन

इसी काम अग्नि की ज्वाला मे एव सुदक्ष आन्दोलन के द्वारा प्रेम मिश्री परिणत होने पर पाक सिद्ध होता है। प्रकृति की रसमय देह मे बारहो महीने यह अग्नि उदय होती है। लोचन दास ने वृहत् निगम ग्रथ मे भी कहा है

निर्गुण मानुष तत्व रसमय तन।
ताहार आश्रये रहे वत्तमान भानु।।
भानु सन्दे सुज्य वलि दादस आदित्य।
सेई सर्व्व रात्रि ह्य वत्तमान नित्य।।
भानु वलि वारमासे उदय ये हय।
नाइकार देहे वत्तमान रय।।

साक्षात् स्वरूप व्रजे वृ दावन हय।
दादस आदित्य सम ताहाते उदय। (सप्तम अक)

इसी करण ही से प्रकृति का प्रकृतत्व है उसकी विशिष्ट शक्ति का प्रकाश। यह शक्ति सृष्टि की शक्ति है। इसके साथ पुरुष के बीज के सस्पर्श में सृष्टि का पूर्ण रूप होता है। इस उभय शक्ति का उर्ध्वगत या सृष्टि धारा का उजान प्रवाहित होने पर जन्म मृत्यु के हाथ से निष्कृति लाभ करके एक स्थिर मिलनानद अनुभव किया जाता है।

हि दू जाति के सभी अनुष्ठ नप्रिय बा इसी मू धा त्रिधार विशिष्ट त्रिवे ी के धा के पूजा व दनादि करके ही उस घाट पर उतरते हैं। घाट व दना का मत्र है

त्रिधारा मानसिक पूजा।

श्री रूप त्रियोधारा लाल श्वेत जलाचक म स ती आता जी ना से । रेत् म्।

देषेण सदाक्षमी नित्य देहि किशोरी इद भक्ति तुलसी ज्ञान च दन प्रेम प्रदीप श्रद्धाधूप सर्वपरिपूर्णार्थे मन प्राण कारुण्यामृत धारयै नम नम ।

ह्रीं रसमणि रसकारिणी तापत्रय नासिनी अहे नित्यदेही किशोरी इद भक्ति तुलसी ज्ञान च दन प्रेम प्रदीप श्रद्धाधूप सर्व परिपूर्णार्थे मन प्राण तारुण्यामृत धारायै नम नम ।

श्रीं भगशिरोमणि त द स्म त नित्यदेही कि ोरी इ भक्ति तुलसी ज्ञान च दन प्रेम प्रदीप श्रद्धाधूप सर्वपरिपूर्णार्थे लावण्यामृत धारायै नम नम ।

निर्व्विकारे। अति सावधाने। भक्तिर सहित। तीनों दिन की क्रियावस्तु के पूर्व एक के बाद एक मत्र से वे त्रिवेणी घाट की पूजा करते हैं।

२ पान क्रिया एव मिलन क्रिया का अनुष्ठान।

३ इस दिन की क्रिया ही मिलन है।

४ तीन दिन के बाद की क्रिया मिलन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इस तीन दिन के अत मे सहज मानुष या अधर मानुष आविर्भूत होते हैं ऐसी बाउलो की कल्पना है। ह मि का स ही वह य होत है जब भाटा के खिचाव से प्रवाह सूख जाता है। किन्तु अति क्षीण अस्ति व मात्र अ प रहता है। यह समय प्रथम द्वितीय एव तृतीय चौबीस घण्टे के बाद चौथे चौबीस घण्टे के सूत्रपात के अव्यवहित होने के बाद उपस्थित होता है। तीन दिन की क्रिया मे काम अश नष्ट होकर इस समय प्रेम का अविर्भाव होता है यही बाउलो की धारणा है। वे इसी तीन दिन तीन रति एव उसके अव्यवहित परवर्ती समय को आधरति नाम से निर्देश किए हैं। अनेक बाउल अपनी साधना को साढे

तीन रति का खेला नाम से निर्देश किए हैं।

प्रथम मिलन के पक्ष मे प्रशस्त या युक्त समय का निर्देश क ना हो ॥। जब च द्र नाडी इडा से अर्थात् वाम नासिका मे पुरुष की श्वास प्रवाहित हो एव प्रकृति की पिंगला नाडी अर्थात् वाम नासिका मे श्वास बहे वही समय मिलन का समय होता है। यह समय रात के आहार के दो घण्टे बाद आता है बाउल ऐसा कहते हैं। यह समय अर्ध प्रहर अर्थात् डेढ घण्टे तक स्थायी होता है। इस समय को साधक साधिका को अत्यन्त सतर्कता के साथ लक्ष्य करना होगा। यही समय मिलन क्रिया के आरम्भ का होता है।

क्रिया के आरम्भ में आलापन होता है। यह परस्पर देह के विभि न स्थान का स्पर्श है। उसके बाद क्रिया आरम्भ होती है। किसी किसी सम्प्रदाय के साधक इसी समय काम बीज एव साधिका काम गायत्री जप करते हैं एव परस्पर को राधाकृष्ण का विग्रह अनुभव करते हैं। क्रिया के कछ क्षण के बाद साधक वाम नासा से श्वास खींचना बद करके कछ अल्प समय के लिए दक्षिण नासा से श्वास खींचता है। इसके बाद उत्तेजना प्रबल रूप में वृद्धि पाने पर यदि बि दु की विचलित अवस्था अनुभव की जाती है तब साधक दो क्रियाओं का अवलम्बन करता है। पहले निश्वास या अपान वायु रुद्ध करके लिग मूल के निम्नभाग को एक पाव की एडी द्वारा दबाकर पकडता है। एव बार बार गुह्य द्वार सकचित करता है। दूसरे प्रकृति की आख के ऊपर या भ्रू मध्यस्थल मे दृष्टि निबद्ध करता है। यह दो योग की क्रिया है। योग मे प्रथम क्रिया का पारिभाषिक नाम मूलबध और दूसरे का नाम अश्विनी मुद्रा है। बार बार गुह्यद्वार आकचन और प्रसारण करने को ही अश्विनी मुद्रा कहते हैं। यही मुद्रा शक्ति प्रबोध कारिणी नाम से अभिहित है। नेत्र एव भ्रू के बीच दृष्टि निबद्ध करना भी योग का ही एक अग है। जिसके द्वारा मन को धारण किया जाता है वही धारणा है। पहले नाभि मे बाद मे हृदय में बाद में वक्षस्थल मे इसके बाद यथाक्रम कण्ठ में मुख मे नासिका के अग्रभाग मे नेत्र मे भ्रू मध्य मे मस्तक मे एव परात्पर ब्रह्म में मन को धारण करना दशविध धारणा नाम से कथित है इसी दशविध धारणा को आयत्त कर पाने पर ब्रह्म सायुज्य लाभ होता है। इसको योग भूमि कहा गया है। यहा से आरोहण करने कर ब्रह्मस्थिति लभते नात्र सशय ।

इस दृष्टि स्थापन को बाउल नेहार कहते हैं। बहुत से गानो मे इस नेहार का उल्लेख है। इस स्थिर दृष्टि को वे आरोप भी कहते हैं।

क्रिया की इसी अ स्था मे ही क भक का आर भ एव अत तक कम्भक की ही क्रिया वर्तमान है। बाउल साधना प्राण एव अपान वायु का निरोध करके कम्भक का अवलम्बन करके सं वायुध रा को ध्य पथ मे मिलाकर र्ध्व ात करने के ऊपर ही प्रतिष्ठित है। वास्तव में बाउल इसी वायु नियत्रण की साधना या दम की साधना ही करते हैं। प्रकृति सम्रव

यही सहज मानुष की स्वरू ।नुभूि का मिलन है। इसी प्रेम मिल ा को वे रा ा म नाम से कल्पित किए हैं। इस चरम आन दानुभूति का उद्रेक होने मात्र से ही उसे करने के लिए कम्भक की क्रिया से उसे ऊचे ले जाना होगा। य अनुभूति ी सहज मानुष है। उसका आविर्भाव साधक ही समझ पाता है। इसीलिए सह ाम को पकडने के लिए वे सतर्क होकर अवस्थन करते हैं। थोडा सा विलम्ब होने सहज मानुष को पाया नहीं जाएगा। वे अपने नि यस्थल सहस्रार मे पुन चले ज रज के साथ ही उसका आविर्भाव होता है पुन रज के अ तिम बि दु के विलय क ही उसका तिरोधान हो जाता है। सहस्रार मे वे ईश्वर होते हैं बाउल ईश्वर को चाहते चाहते हैं निरन्तर प्रेम लीला विलासमय मानुष को । अपनी साधना के वैि को वे इस प्रकार निर्दिष्ट करते हैं

टले जीव अटले ईश्वर
टलाटल त्याज्य करे भजे सेइ रसिक शेखर।
टलिले जीव अटले ईश्वर।
एर माझे क्रीडा करे रसिक नागर।।

विवर्त्त विलास की भाषा में

टलिले ये जीव हवे ना टले ईश्वर
एइ दुह छाड़ि साधे रसिक शेखर।
(चुतर्थ विलास) (उ ना भ पृ ४२१)

इसी लिए श्रृगार लीलामय रूप में इसी समय ही बाउल उसे चाहते हैं। प्रकृति क में ही उसका सहज मानुष रूप में आविर्भाव होता है। यह सहज मानुष एक अ देहधारी केवल अनुभूति गम्य निविड अचचल मिथुनानद स्वरूप है। इसीलिए वे के मानुष हैं। उसे बाउल दम का मानुष भी कहते हैं कारण दम या कम्भ द्वारा ही वह अनुभूति गम्य है। इसी सहज मानुष को 'पकडकर क्रमागत उर्ध्व दि उ टा करके या उजान प्रवाहित करके लेकर आज्ञाचक्र मे द्विदल पद्म मे उ क ५ ने ५ ही प्रकृति देह का सहज मानु । अर्थात् गभीर आन दानुभूति के साथ पुरु के अटल ईश्वर के मिलन पर एक चरम मिथु ान द की अनुभूति सृष्टि होगी। परमा मा का लीलामय स्वरूप है। यही आन द की साधना का चरम काम्य है।

बाउलों का परमा मा श्रृगार रस लीलामय है। उसकी प्रकृत लीला का स्थान सहस्र है सहस्रदल पद्म में नहीं। वहा उसका स्वरूप अटल निस्तरग पुरुष सत्ता प्रकृति का एकान्त मिलित एकीभूत भाव है। वहा भोक्ता भोग्य आस्वाद्य आस्वादक का कह नहीं है यही बाउलो की क पना है। उसके प्रकृत लीला का स्थान द्विदल पद्म आज्ञाचक्र मे । इसी लिए बहुत से ।ानों मे द्विदल पद्म मे उसके वारामखान या

औ" विलास स्थान के नाम से उल्लेख आ । स सदा उनका । । यरधा । ।। ।। ।
द्विदल लीला स्थान है। इसीलिए द्विदल के ऊपर बाउल उठना । ।। ।। ते। ।।।
बीज रूपी परमात्मा की टल अवस्था वे सबसे पहले परि"ार करेगे ।र ा उस। ो
जीवाचार होने पर भी प्रेमाचार नहीं हुआ। इसमे सृष्टि उसका पतन । ।न
निस्तरग अटल रूप भी आनन्द चमत्कार व ीन उनका काम्य नहीं । ।। ि र"ार
आनन्द की लीला अवस्था है वही उनका काम्य है इसे वे अटल वस्था क ।
वही अटल अवस्था ही उनका वाछनीय है। यही बाउलो की सहस्रदल एव द्विदल टल
और अटल के सम्बन्ध मे धारणा है।

मिलन क्रिया में देह सस्थान का प्रकार भेद है। अनेक बाउल साधक विपरीत बिहार पद्धति को विशेष रूप मे अन्तिम दिन की क्रिया मे श्रेष्ठ पद्धति कहते हैं। इस योग की मिलन क्रिया के अलावा सत्तरह दिन के बीच भी अनेक मिलन क्रिया का अनुष्ठान करते हैं। उन सब दिनों की क्रिया में एक श्रेणी के साधक विपरीत बिहार पद्धति को ही श्रेष्ठ रूप मे मानते हैं।

चारिचन्द्र भेद

रज शुक्र विष्ठा एव मूत्र यही चारिचन्द्र हैं। बाउलो की भाषा मे रज को रूप कहते हैं शुक्र को अनेक समय रस विष्ठा को माटी एव मूत्र को रस कहते हैं। रति अर्थ मे स्त्रीवीर्य को समझते हैं कभी या क्रिया के समय मिलित वस्तु को भी समझते हैं। विष्ठा मूत्र रज और शुक्र साधक साधिका की देह से निसृत इन चार वस्तुओं के ग्रहण को चारिचन्द्र भेद कहा जाता है। बाउल विष्ठा को क्षिति मूत्र को अप तेज को रज एव मरुत को शुक्र के प्रतीक रूप मे मानते हैं। लालन शाही एव पाशाही फकीर सम्प्रदाय में ये यथाक्रम मे रामात निभात अनुमान एव निज नाम से ही पारिभाषिक रूप में अभिहित होते हैं। देह के यही चार उपादान देह के बीच ग्रहण करने पर इनकी धारणा है कि एक परिवर्तन साधित होता है। वे मानते हैं कि इनके सम्मिलन पर मानव की शक्ति शान्ति आनन्द और अस्तित्व होता है। नये आगमन होने पर मनुष्य अस्तित्वहारा हो जाता है। इसके ग्रहण करने पर साधक साधिका दोनो ही ही परिपक्क होती है एव एक स्थिर अचचल शक्ति का सचार होता है। साधक । । । ो हैं कि देह भावयोग्य हुई है कि नहीं अर्थात् भाव साधना या प्रेममूलक यो । मि । । ।। ।। के उपयोगी हुई है कि नहीं उसकी परीक्षा की जाती है दा सब वस्तु । । । ।। द्वारा। लवण कटु, तिक्त मधुर प्रभृति रस का आस्वाद व दुर्गन्ध ।। स । । साधना के अग्रगति के परिमाप मे एक ही वस्तु मे विभिन्न समय मे ायी ।। ।। । वे विशेष श्रद्धा के साथ निर्विकार अवस्था मे इस क्रिया का अनुष्ठान कर । । विश्वास करते हैं घृणा लज्जा भय उनमे नहीं रहता। उनके । । के समय े म श ।। । र ो

तीन रति का खेला नाम से निर्देश किए हैं।

प्रथ मिलन क पक्ष मे प्र ।स्त या पयुक्त समय का निर्दे । करना हो ।। । जब च द्र नाडी इडा से अर्थात् वाम नासिका मे पुरुष की श्वास प्रवाहित हो एव प्रकृति की पिंगला नाडी अर्थात् वाम नासिका मे श्वास बहे वही समय मिलन का समय होता है। यह समय रात के आहार के दो घण्टे बाद आता है बाउल ऐसा कहते हैं। यह समय अर्ध प्रहर अर्थात् डेढ घण्टे तक स्थायी होता है। इस समय को साधक साधिका को अ य त सतर्कता के साथ लक्ष्य करना होगा। यही समय मिलन क्रिया के आरम्भ का होता है।

क्रिया के आरम्भ में आलापन होता है। यह परस्पर देह के विभि न स्थान का स्पर्श है। उसके बाद क्रिया आरम्भ होती है। किसी किसी सम्प्रदाय के साधक इसी समय काम बीज एव साधिका काम गायत्री जप करते हैं एव परस्पर को राधाकृष्ण का विग्रह अनुभव करते हैं। क्रिया के कछ क्षण के बाद साधक वाम नासा से श्वास खींचना बद करके कछ अल्प समय के लिए दक्षिण नासा से श्वास खींचता है। इसके बाद उत्तेजना प्रबल रूप मैं वृद्धि पाने पर यदि बि दु की विचलित अवस्था अनुभव की जाती है तब साधक दो क्रियाओं का अवलम्बन करता है। पहले निश्वास या अपान वायु रुद्ध करके लिग मूल के निम्नभाग को एक पाव की एडी द्वारा दबाकर पकडता है। एव बार बार गुह्य द्वार सकचित करता है। दूसरे प्रकृति की आख के ऊपर या भ्रू मध्यस्थल मे दृष्टि निबद्ध करता है। यह दो योग की क्रिया है। योग में प्रथम क्रिया का पारिभाषिक नाम मूलबध और दूसरे का नाम अश्विनी मुद्रा है। बार बार गुह्यद्वार आकचन और प्रसारण करने को ही अश्विनी मुद्रा कहते हैं। यही मुद्रा शक्ति प्रबोध कारिणी नाम से अभिहित है। नेत्र एव भ्रू के बीच दृष्टि निबद्ध करना भी योग का ही एक अग है। जिसके द्वारा मन को धारण किया जाता है वही धारणा है। पहले नाभि में बाद मे हृदय मे बाद में वक्षस्थल में इसके बाद यथाक्रम कण्ठ में मुख मे नासिका के अग्रभाग मे नेत्र मे भ्रू मध्य मे मस्तक मे एव परा पर ब्रह्म मे मन को धारण करना दशविध धारणा नाम से कथित है इसी दशविध धारणा को आयत्त कर पाने पर ब्रह्म सायुज्य लाभ होता है। इसको 'योग भूमि कहा गया है। यहा से आरोहण करने कर ब्रह्मस्थिति लभते नात्र सशय ।

इस दृष्टि स्थापन को बाउल नेहार कहते हैं। बहुत से गानो मे इस नेहार का उल्लेख है। इस स्थिर दृष्टि को वे आरोप भी कहते है।

क्रिय की इसी अ स्था में ही क क क आर भ र्व अत तक क भक की ही क्रिया वर्त है। बाउल साधना प्राण एव अपान वायु का निरोध करके कम्भक का अवलम्बन करके स वायुधार को ध्य पथ मे मिलाकर र्ध्व ।त क ने के ऊपर ही प्रतिष्ठित है। वास्तव मे बाउल इसी वायु नियत्रण की साधना या दम की साधना ही करते हैं। प्रकृति सस्रव

तीन रति का खेला नाम से निर्देश किए हैं।

प्रथम मिलन के पक्ष मे प्रशस्त या उपयुक्त समय का निर्देश करना होगा। जब च द्र नाडी इडा से अर्थात् वाम नासिका मे पुरुष की श्वास प्रवाहित हो एव प्रकृति की पिगला नाडी अर्थात् वाम नासिका मे श्वास बहे वही समय मिलन का समय होता है। यह समय रात के आहार के दो घण्टे बाद आता है बाउल ऐसा कहते हैं। यह समय अर्ध प्रहर अर्थात् डेढ घण्टे तक स्थायी होता है। इस समय को साधक साधिका को अत्य त सतर्कता के साथ लक्ष्य करना होगा। यही समय मिलन क्रिया के आरम्भ का होता है।

क्रिया के आरम्भ में आलापन होता है। यह परस्पर देह के विभि न स्थान का स्पर्श है। उसके बाद क्रिया आरम्भ होती है। किसी किसी सम्प्रदाय के साधक इसी समय काम बीज एव साधिका काम गायत्री जप करते हैं एव परस्पर को राधाकृष्ण का विग्रह अनुभव करते हैं। क्रिया के कछ क्षण के बाद साधक वाम नासा से श्वास खींचना बद करके कछ अल्प समय के लिए दक्षिण नासा से श्वास खींचता है। इसके बाद उत्तेजना प्रबल रूप मैं वृद्धि पाने पर यदि बि दु की विचलित अवस्था अनुभव की जाती है तब साधक दो क्रियाओं का अवलम्बन करता है। पहले निश्वास या अपान वायु रुद्ध करके लिग मूल के निम्नभाग को एक पाव की एडी द्वारा दबाकर पकडता है। एव बार बार गुह्य द्वार सकचित करता है। दूसरे प्रकृति की आख के ऊपर या भ्रू मध्यस्थल मे दृष्टि निबद्ध करता है। यह दो योग की क्रिया है। योग मे प्रथम क्रिया का पारिभाषिक नाम 'मूलबध और दूसरे का नाम अश्विनी मुद्रा है। बार बार गुह्यद्वार आकचन और प्रसारण करने को ही अश्विनी मुद्रा कहते हैं। यही मुद्रा शक्ति प्रबोध कारिणी नाम से अभिहित है। नेत्र एव भ्रू क बी दृष्टि निबद्ध करना भी यो का ही एक अग है। जिसके द्वारा मन को धारण किया जाता है वही धारणा है। पहले नाभि मे बाद मे हृदय में बाद में वक्षस्थल मे इसके बाद यथाक्रम कण्ठ मे मुख में नासिका के अग्रभाग मे नेत्र में भ्रू मध्य मे मस्तक मे एव परात्पर ब्रह्म मे मन को धारण करना दशविध धारणा नाम से कथित है इसी दशविध धारणा को आयत्त कर पाने पर ब्रह्म सायुज्य लाभ होता है। इसको योग भूमि कहा गया है। यहा से आरोहण करने कर ब्रह्मस्थिति लभते नात्र सशय ।

इ दृष्टि स्थ पन को । नेहार कहते हैं। बहुत से गानों मे इस नेहार का उल्लेख है। इस स्थिर दृष्टि को वे आरोप भी कहते हैं।

क्रिया की इसी अवस्थ में ही क भक क आर भ एव अत तक कुम्भक की ही क्रिया वर्तमान है। बाउल साधना प्राण एव अपान वायु का निरोध करके कम्भक का अवलम्बन करके उस वायुधारा को मध्य पथ मे मिलाकर उर्ध्वगत करने के ऊपर ही प्रतिष्ठित है। वास्तव में बाउल इसी वायु नियत्रण की साधना या दम की साधना ही करते हैं। प्रकृति सम्रव

्याग करने पर भी उनकी साधना इसी दम क ऊपर निर्भर करती हे। इसी दम की क्रिया में जो जितनी सफलता प्राप्त करे इस कम्भक मे जो जितने समय तक प्रतिष्ठित रह पाए उसकी साधना उतनी ही अग्रसर होती है। इस कम्भक मे या अटल बि दु मे प्रतिष्ठित स धक ही प्रकृ बा साधक हैं। प्रकृत बाउल साधना केवल इ द्रिय चर्चा नहीं है यह सुकठिन योग साधना है।

इसके बाद शोषण क्रिया है। योग शास्त्र मे यह ब्रजोली मुद्रा नाम से अभिहित है। शिवसहिता मे ब्रजोली मुद्रा का इस प्रकार वर्णन है

आदौ रज स्त्रिया यौन्या यत्नेन विधिवत् सुधी ।
आकच लिग नालेन स्वशरीरे प्रवेशयेत्।।
स्वक वि दुच सवध्य लिग चालनमाचरेत्।
दैवाच्यलति चेदुर्ध्वे निरूद्धो योनिमुद्रया।।
वाम भागेऽपि ताद्बि दु नी वा लिग निवारयेत्।
क्षण मात्र योनितोऽय पुमाश्चालनमाचरेत्।।
गुरूपदेशतो योगी हू हू कारेण योनित ।
अपान वायुमाज्य बलादाकृष्य तद्रज ।
(चतुर्थ पटल श्लोक ८१ ८४) (उ ना भ पृ ४१८)

विद्वान योगी पहले य न पूर्वक लिगनाल द्वारा स्त्री योनि से नियमानुसार रज आकर्षण पूर्वक अपनी देह में प्रवेशित करेगा। इसके बाद उसमें अपने वीर्य को सम्बद्ध करके लिग परिचालना करता रहेगा इसके बीच यद्यपि योनि मुद्रा द्वारा उर्ध्व में निरुद्ध बिन्दु स्खलित प्राय होता है वैस होने प से म में इड डी मे लित क के कछ क्षण योनि में लिग परिचालन बद करेगा। इसके बाद वह साधक व्यक्ति गुरु उपदेश के अनुसार हू हू क र ब्द के स थ अपान व यु अ क न क के शक्ति के स योनि में से रज आकर्षण पूर्वक पुन लिग परिचालन करने में प्रवृत्त होगा।

इ के प र्ती समय भय क्ति के स्त भित साम्य में एक स्थिर नि वच्छि । दे उद्भव होता है। इस अनुभूति को क्रमश उर्ध्वदिशा मे जितना उठाया जाएगा उतना ही साधक देह और मन में एक अनिर्वचनीय आन द की उपलब्धि करेगा।

अ तीन दिन की क्रिय के अत मे बा अनुभव करते हैं कि सहज मानुष का आगमन होता है। प्रकृति पुरुष की या रजो बीज की जो मिलना मक निविड आन दमय अवस्था है वही उसका स्वरूप है। निरन्तर श्रृगार लीलाशील वे हैं वह श्रृगार एका त प्रेम श्रृगार है। तीन दिन की रेचक पूरक कम्भक क्रिया मे नाडीमण्डली परिष्कृत होती है वायु की साम्यावस्था आती है एव सुषुम्ना का पथ काफी सरल होता है रजो बीज पाक पाकर स्थिर होता है। इस समय का मिलन अचचल निविड प्रेमानुभूति का मिलन होता है।

यही सहज मानुष की स्वरूपानुभूति का मिलन है। इसी प्रेम मिलन को वे सहज मानुष नाम से कल्पित किए हैं। इस चरम आनन्दानुभूति का उद्रेक होने मात्र से ही उसे स्थायी करने के लिए कुम्भक की क्रिया से उसे ऊचे ले जाना होगा। यह अनुभूति ही उनका सहज मानुष है। उसका आविर्भाव साधक ही समझ पाता हे। इसीलिए सहजमानुष को पकडने के लिए वे सतर्क होकर अवस्थन करते हैं। थोडा सा विलम्ब होने पर भी सहज मानुष को पाया नहीं जाएगा। वे अपने नित्यस्थल सहस्रार मे पुन चले जाएँगे। रज के साथ ही उसका आविर्भाव होता है पुन रज के अन्तिम बिन्दु के विलय के साथ ही उसका तिरोधान हो जाता है। सहस्रार मे वे ईश्वर होते हैं बाउल ईश्वर को नहीं चाहते चाहते हैं निरन्तर प्रेम लीला विलासमय मानुष को। अपनी साधना के वैशिष्टय को वे इस प्रकार निर्दिष्ट करते हैं

टले जीव अटले ईश्वर
टलाटल त्याज्य करे भजे सेइ रसिक शेखर।
टलिले जीव अटले ईश्वर।
एर माझे क्रीडा करे रसिक नागर।।

विवर्त्त विलास की भाषा मे

टलिले ये जीव हवे ना टले ईश्वर
एइ दुह छाडि साधे रसिक शेखर।
(चुतर्थ विलास) (उ ना भ पृ ४२१)

इसी लिए श्रृगार लीलामय रूप में इसी समय ही बाउल उसे चाहते हैं। प्रकृति की देह मे ही उसका सहज मानुष रूप में आविर्भाव होता है। यह सहज मानुष एक अप्राकृत देहधारी केवल अनुभूति गम्य निविड अचचल मिथुनानद स्वरूप है। इसीलिए वे भाव के मानुष हैं। उसे बाउल दम का मानुष भी कहते हैं कारण दम या कम्भक के द्वारा ही वह अनुभूति गम्य है। इसी सहज मानुष को 'पकडकर क्रमागत उर्ध्व दिशा में उल्टा करके या उजान प्रवाहित करके लेकर आज्ञाचक्र मे द्विदल पद्म मे उपनीत कर पाने पर ही प्रकृति देह का सहज मानुष अर्थात् गभीर आनन्दानुभूति के साथ पुरुष देह के अटल ईश्वर के मिलन पर एक चरम मिथुनानन्द की अनुभूति सृष्टि होगी। यही परमात्मा का लीलामय स्वरूप है। यही आनन्द की साधना का चरम काम्य है।

बाउलों का परमात्मा श्रृगार रस लीलामय है। उसकी प्रकृत लीला का स्थान सहस्रार मे है सहस्रदल पद्म में नहीं। वहा उसका स्वरूप अटल निस्तरग पुरुष सत्ता प्रकृति सत्ता का एकान्त मिलित एकीभूत भाव है। वहा भोक्ता भोग्य आस्वाद्य आस्वादक का कछ भेद नहीं है यही बाउलो की कल्पना है। उसके प्रकृत लीला का स्थान द्विदल पद्म मे है आज्ञाचक्र मे। इसी लिए बहुत से गानों में द्विदल पद्म मे उसके वारामखान या प्रकाश

ओर विलास स्थान के नाम से उ लेख आ । स स्रदल उ ाका नि यस्था । ो कि तु द्विदल लीला स्थान है। इसीलिए द्विदल के ऊपर बाउल उठना ीं चा ने। पो बीज रूपी परमा मा की टल अवस्था वे सबसे पहले परि ार करेगे ारण उसके ोते जीवाचार होने पर भी प्रेमाचार नहीं हुआ। इसमे सृष्टि उसका पतन है। पुन निस्तरग अटल रूप भी आन द चमत्कार व हीन उनका काम्य न ीं है। ो निर तर आन द की लीला अवस्था है वही उनका काम्य है इसे वे अटल अवस्था कहे । वही अटल अवस्था ही उनका वाछनीय है। यही बाउलो की सहस्रदल एव द्वि ल टल और अटल के सम्ब ध मे धारणा है।

मिलन क्रिया में देह सस्थान का प्रकार भेद है। अनेक बाउल साधक विपरीत बिहार पद्धति को विशेष रूप में अन्तिम दिन की क्रिया में श्रेष्ठ पद्धति कहते हैं। इस योग की मिलन क्रिया के अलावा सत्तरह दिन के बीच भी अनेक मिलन क्रिया का अनुष्ठान करते । उन सब दिनो की क्रिया में एक श्रेणी के साधक विपरीत बिहार पद्धति को ही श्रेष्ठ रूप मे मानते हैं।

चारिचन्द्र भेद

रज शुक्र विष्ठा एव मूत्र यही चारिच द्र हैं। बाउलो की भाषा मे रज को रूप कहते हैं शुक्र को अनेक समय रस विष्ठा को माटी एव मूत्र को रस कहते । रति अर्थ में स्त्रीवीर्य को समझते हैं कभी या क्रिया के समय मिलित वस्तु को भी समझते हैं। विष्ठा मूत्र रज और शुक्र साधक साधिका की देह से निसृत इन चार वस्तुओ के ग्रहण को चारिच द्र भेद कहा जाता है। बाउल विष्ठा को क्षिति मूत्र को अप तेज को रज एव मरुत को शुक्र के प्रतीक रूप मे मानते हैं। लालन शाही एव पाजशाही फकीर सम्प्रदाय मे ये यथाक्रम में रामात निभात अनुमान एव निज नाम से भी पारिभाषिक रूप मे अभिहित होते हैं। देह के यही चार ।दान दे के बीच ह । करने पर इनकी ध र ा है कि क परि र्तन साधित होता है। वे मानते हैं कि इनके सम्मिल पर मानव की शक्ति शान्ति आन द और अस्ति व होता है। इनके अधोगमन होने पर मनुष्य अस्तित्वहारा हो जाता है। इसके ग्रहण करने पर साधक साधिका दोनों की देह ही परिपक्क होती है एव एक स्थिर अचचल शक्ति का सचार होता है। साधक गण कहते हें कि देह भावयोग्य हुई है कि नहीं अर्थात् भाव साधना या प्रेममूलक योग मिलन क्रिया के उपयोगी हुई है कि नहीं उसकी परीक्षा की जाती है इन सब वस्तु ग्रहण के स्वाद द्वारा। लवण कट तिक्त मधुर प्रभृति रस का आस्वाद एव दुर्ग ध या सुग ध देह साधना के अग्रगति के परिमाप मे एक ही वस्तु मे विभि न समय मे पायी जाती है। वे विशेष श्रद्धा के साथ निर्विकार अवस्था मे इस क्रिया का अनुष्ठान करते हैं एव विश्वास करते हैं घृणा लज्जा भय उनमे नहीं रहता। उनके ग्रहण के समय वे मन्त्रपाठ करते

है। स्थान भेद एव गुरु भेद के अनुसार इन मत्रो मे पार्थ वच है। इन म त्रो को वे बीज मत्र कहते है।

मृत्तिका साधन (विष्ठा)

ऊ क्लीं श्रीं मा चा अर्धच द्र अर्ध समुद्रवाण च द्रसूर्य काचा हन गरलच द्र ऊ महाप्रभु, तोमार सुखे चलि तुमि या वलाओ वलि तुमि या खाओयाओ ताइ खाइ, तोमा छाडा तिल अर्ध नइ।

रस साधन (मूत्र)

ले नि ह्म विष्णु शि व ८६ तिन कर निष्ठारति गोसाई तुमि सत्यि।

शुक्र चन्द्र साधन (शुक्र)

ऊ क्लीं श्लीं शुक्लच द्र साधन शोषणवान क्लीं आमरी
सामरी युगे युगे ना मरि गोरक्ष नाथे चापि ये वयसे
खाई बीज से वयसे थाकि श्लीं स्वाहा।

उपनिषद में शुक्र आ मा कहा गया है बौद्ध त त्र मे बोधि चित्त या स्वय बुद्ध या परमसत्ता रूप मे उल्लिखित हुआ है बाउल इसे बीज रूपी परमा मा कहे हैं। किन्तु साधना क्रिया में पान करना केवल बाउलों मे ही देखा जाता है। हो सकता है कि अतिगोपनीयता के कारण ही बौद्ध ग्र थो मे पान क्रिया का उल्लेख न हुआ हो। बाउलो की साधना में यह क्रिया अपरिहार्य है। अत गोपनीय होने पर भी दो गानों मे उल्लेख हो ही गया है। बाउलो की साधना उनके गानो मे अभिव्यजित हुई है। लगभग साधना चेतना दर्शन आदि से सम्ब धित एक सौ चौरानवे (१९४) गानों का सग्रह द्वितीय खण्ड में हि दी अनुवाद के साथ सग्रहीत है। विषय विस्तार के भय से अनेक गानों को प्रस्तुत करना सभव नहीं है।





नवनीदास बाउल



'फाल्गुनी नाटक मे 'अन्धे बाउल' की भूमिका मे रवीन्द्र नाथ।

||३||

बाउल साहित्य और उनका जीवन दर्शन

●

बाउल गानो को अध्या म सगीत का नाम दिया है असित कमार वन्द्योपाध्याय ने। जिन्हें बगाल मे गान से प्रसिद्ध कर दि । है वे स्तुत गीत या विशिष्ट अर्थों मे प्रगीत की सज्ञा पाने के अधिकारी हैं किन्तु है कछ प्रभेद भी क्योकि बाउलों के गान या गीत उनकी साधना ज्ञान के कोष भी हैं। चूँकि वे अपनी साधना मे रूप से स्वरूप तक की यात्रा करते हैं अत अनुभूति तत्व का होना सहज ही है। बाउलो को भावाश्रय सहजिया वैष्णवों से विरासत मे मिला है। अत भावप्रवणता अनुभूतिक अजस्रता प्रभावान्विति गेयता आदि तत्वो का अभाव नहीं है। सगीता मकता तो है ही जिसमें शास्त्रीयता नहीं है लोक गीता मकता है। अपनी एकतानता के कारण उसका अपना वैशिष्टय है। साधना के स दर्भ में ज्ञात हो चुका है कि बाउल अपने एक मन के मानुष की खोज मे सलग्न दीखते हैं। इसीलिए उनके सगीत का सहचर है एकतारा एक मन एक राग और लक्ष्य है एकनिष्ठ मन की योगावस्था मे अपने ही मन के मानुष की उपलब्धि। यही है बाउल के रूप से स्वरूप की यात्रा। व्यक्ति ही रूप है और अपने मन की सूक्ष्म अनुभूतियो में वही स्वरूप तत्व बन जाता है। यही पु का कृष्णत्व ८ प्रकृति का राधात्व है। सहज अभिव्यक्ति के साथ बाउलो का दर्शन तत्व भी उनके काव्य को नियन्त्रित करता है। ईश्वरीय प्रेम की मदमस्तता एव सासारिकता के प्रति उदासीनता ही उनके बाउलपन मे समजित होकर उनके विशिष्ट गीतो की रचना का आधार बनती है।

प्रोफेसर भूदेव चौधुरी ने अपने इतिहास ग्रथ मे लोक साहित्य के गुणो की चर्चा करते हुए ब ाल के लोक साहित्य के क्रमिक विकास मे ब लों की लोक गीत मकता की ओर निर्देश किया है। बगला साहित्य के आदिकाल मे चर्चापद श्रेष्ठ लोक साहित्य के रूप मे था उसके साथ बगाली द्वारा रचित अभिजात साहित्य का उत्कृष्ट परिचय जयदेव के 'गीत गोवि द मे पाया जाता है। आदि मध्य पर्व में विद्यापति की विदग्ध कला कशलता के साथ बडु चण्डीदास का श्रीकृष्ण कीर्तन स्थूल रूप में लोक साहित्य का निदर्शन है।

चैत य समकालीन बगला मे लोक साहि य नहीं है। चैतन्य चेतना के विनष्ट होने के समय लोक समाज का पुनरुद्भवन हुआ लोकसाहित्य का भी पुनरूद्भव हुआ। इन सब साहित्य मे चैतन्य युग की क्षीण पूर्व चेतना के साथ लोक जीवन के स्थूल प्रे औ देह कृति को ्क युक्त करके व को अनुभूतिक ह ृ रस दिया है इस युग के मर्मी कवियों ने। उनके बीच हैं बाउल मूर्शीदी मारिफती इत्यादि गुह्य कवियो का दल। (भूदेव चौधुरी पृ १२)

आगे वे हि दू और मुसलमान सस्कृति के मिश्रण से रचित रोसाग मुसलमान कवियो के मानव सवेदना से युक्त काव्य के स दर्भ मे कहते हैं जो एक प्रकार से बाउलो की ही शाखा है। मनुष्य के प्रेम तथा मनुष्य के सुख दु ख आन द वेदना के साथ उसकी असगति अपू ित के स वी मूल्यो की स्वीकृति भी पा चुका था। भक्ति के बदले सहानुभूति का स्पर्श पाकर मनुष्य की दुर्बलता भी प्रीति माधुर्य मे हृदय ग्राही हुई थी चटग्राम के रोसाग मुसलमान कविकल उसी विशुद्ध मानवता को अरबी फरसी साहित्य के बीच से आहरण करके बगला भाषा मे ले आये थे बग सरस्वती के साधना पीठ मे किन्तु साहित्य के पूर्व इतिहा को वे भूले नहीं थे। चैतन्ययुग के क्षयमान धर्म प्रेरणा के वृन्त पर अमिश्र शुद्ध मानव प्रेम के काव्य कसुम की रचना की थी इन लोगो ने। रोसाग मुसलमानों के कवि कल की अधिकाश रचना ही लोक साहित्य की पर्याय है। (भूदेव चौधुरी पृ १२१)

प्रोफेसर सोमेन्द्र नाथ की भूमिका पर ध्यान दिया जाये तो लगता है कि वे ग्राम्यगान की सज्ञा देते हुए बाउल काव्य की लोक गीता मकता को ही अभिव्यजित करते हैं बाउलो का गान ग्राम्य गान (गीत) सरल भाषा में रचित है उसकी भगी सहज है। उसका रूप मन से हटता नहीं किन्तु हृदय गला देता है। उसका सुर उदासी सुर है। पूर्णत आबद्ध ससारी मन को भी वह क्षण भर के लिए उदास कर देता है। पल्ली गाव का धू धू करता हुआ फाका माठ (मैदान) उनके मेघ युक्त आकाश के साथ उस उदार विस्तीर्ण सुर का मेल है। इस रुक्ष माटी का बाउलगान महा आकाश के सुर मे रचा है। उ हीं गानो का दीप जलाकर साधक बाउल चले हैं अपने बहुवाछित तीर्थ पथ पर मन के मानुष की आशा मे अधर के अन्वेषण मे।

सगीत की परिभाषा और विशिष्टता को प्रतिपादित करते हुए प्रोफेसर सोमे द्र नाथ ने बगाल के बाउलो के गान की अवस्थिति की चर्चा की है। मन के गीति मुखर प्रकाश कर्मक्लान्त चित्त मे अनन्त आवेश मधुर आन द का उद्बोधन करता है इसीलिए कर्मजगत् में गान का आदर होता है। कर्म का जगत् मानव जीवन सच मे कर्म चचल है। कर्म के प्रति मानव चित्त में आकर्षण प्रबल एव प्रचुर होता है तथापि कर्म में मनुष्य का मन आकर्षित होने पर भी गान मे उसका प्राण आकर्षित होता है। वाह्य जगत् मे

कर्म का प्रचण्ड प्रताप होने पर भी हृदय के सिहासन पर गान एकाधीश्वर है। गीतिकार सबके मन का अतिप्रिय होता है। प्रत्येक देश के इसी गान मे साहित्य की सूचना मिलती है। सुगभीर भाव सम्पदा और अभिनव सु स्प मे ो स रे ॥ल मे अतिप्रसिद्धि प्राप्त किए है बगाली लोक मानस मे श्रेष्ठ आसन का अधिकार किए है वह है बगाल का बाउल गान। बाउलगान का सुर समान भाव से ध्वनित हुआ है। (वही पृ २)

रवी द्र थ के न्तव्य को दृधृत क के उन्होने वक्तव्य को आगे बढाने की चेष्टा की है। 'इस प्रकार का बाउल गान सुना है भाषा की सरलता मे भाव की गभीरता मे सुर के र्द मे जिसकी तु नहीं मि ती उसमे जिस प्रकार ज्ञान का तत्व उसी प्रकार काव्य रचना उसी प्रकार भक्ति का रस मिश्रित है। लोक साहित्य मे इस प्रकार की अपूर्वता और कहीं पायी जाती है ऐसा विश्वास नहीं होता। (वही पृ २)

रहस्यमयी बाउल की भाषा औ वा ी मे स त सु मे सहजता है। शान्त सु दर भाव सम्पदा की सुरमय अभिव्यक्ति के रूप मे इ बा ल ॥ ो को क है। मनुष्य के जीवन का सहज एव सत्य ही अभिव्यक्त हुआ है। सत्य विलुप्त ससारी मन को भी सी त्य क स्प | देत है। साधारण मनुष्य अपनी ऐहिक भूमिका मे रहता है। वह मन के सूक्ष्म किन्तु वृहत्तर से अनभिज्ञ रहता है। बाउल गान उस साधारण मन मे माधुर्य का सचार करता है।

अपनी लोक गीता मकता मे भी बाउल गान की स्व ।ᕵव विशि ᕷ ति दि है। लोक गीत एव बाउल गीत मे सगीता मकता होने पर भी बाउल गान में एक प्रकार से गुणा मक विभेद है। कारण कि बाउल गान धर्म साधना एव लोकगीता मकता के साथ दर्शन तत्व को भी ग्रहण करता है। अत बाउल साहित्य की विशिष्ट व्याख्या के पूर्ण दर्शन की चर्चा आवश्यक हो जाती है। यद्यपि साहित्य न तो दर्शन का विश्लेषण और न दार्शनिक अभिव्यक्ति है किन्तु फि भी साहित्य किसी किसी नि से प्र वित हो है। ठीक उसी प्रकार सगीत में काव्य और काव्य मे सगीत तत्व का होना अनिवार्य है किन्तु काव्य त व की प्रधानता होने पर कोई भी रचना काव्य होती है।

बाउल काव्य के दर्शन पक्ष की चर्चा करते हुए प्रोफेसर सोमे द्र नाथ वन्द्योपाध्याय ने कहा है बाउल गान मुख्यत दर्शन एव बाउल दार्शनिक हैं फिर भी इसके गान को का य और बाउल को कवि कहा गया है इसका कारण सुरमयता है। इसी कारण मूलत दर्शन होने पर भी बाउल गान काव्य स्तर पर उत्तीर्ण होता है। अन्यथा इसको मात्र दर्शन नाम से ही अभिहित किया जाता। कारण दर्शन और काव्य एक नहीं हैं। दार्शनिक और कवि अभि न नहीं। (सो न व पृ ६५) दर्शन और काव्य की तुलना मक चर्चा को आगे बढाते हुए प्रो सोमे द्र नाथ व द्योपाध्याय कहते हैं सर्वदर्शी त वार्थज्ञ के हृदय

मे विश्व दर्शन मे जो भाव उठता है हार्दिक प्रेरणा मे उसी भाव का प्रकाश ही काव्य रूप ग्रहण करता है। भाव का प्रकाशक ही कवि है। दार्शनिक भी सर्वदर्शी तत्वार्थज्ञ होता है। किन्तु वि क थ यो। मे कवि की त ह ह अपने भाव को यथावत् कभी भी प्रकाशित नहीं करता। के अ र में न पृथक रू में क्रि शी रहत है। वह सिद्धान्त स्रष्टा है। दर्शन मे सभी विषयों का निश्चय होता है कवि के काव्य में सभी विषयों की अभिव्यक्ति होती है। भाव के ज्ञान के बाद अभाव निरूपण के द्वारा सिद्धान्त सृष्टि से ही दर्शन का स्वरूप होता है। अत कवि का विषय और दार्शनिक का विषय विभिन्न होता है। (वही पृ ६)

दर्शन एव काव्य के अतर को प्रतिपादित करने के बाद प्रो वन्द्योपाध्याय कहते हैं बाउलगान दार्शनिक अभिव्यक्ति है स्वाभाविक काव्यिक अभिव्यक्ति नहीं है। प्रकाश के क्षेत्र में काव्य से यह स्वतत्र है। फिर भी दर्शन होकर भी काव्य हो सका है। उसका कारण इसकी भाषा का माधुर्य अथवा उपमा आदि सौन्दर्य नहीं कारण इसमें सुर का प्रकाश हुआ है। सिद्धान्तमूलक होने पर भी कथा सुर में अभिव्यक्त है इसीलिए वह प्राण मे दोलन देता है आनन्द का सचार करता है। इस परिणति का आनन्द ही बाउलगान की काव्यिकता का प्राण है। आनन्ददान के व्यापार को काव्य लक्षण मान लेने पर बाउल अवश्य ही काव्य है यद्यपि भाव स्वरूप को प्रकाश रूप लक्षण की ओर से प्रकृत काव्य कहना उचित नहीं है। सुरगत अ दि से बा ल क क व्य रूप अवश्य स्वीकार्य है। यह उसी अर्थ में काव्य है जिस अर्थ मे उपनिषद् काव्य है।

(वही पृ ६८ ६९)

उपेन्द्रनाथ भ चार्य ने क व्य को ७ ढ त न्त्रिक हिन्दू तान्त्रिक सहजिया वैष्णव एव सूफियों के समन्वित एव खुद के वैशिष्ट्य को सवहन करते हुए एक काव्य धारा ध र्मिक सम्प्र ५ द निक चेतना के तिफलन की बात की है। यदि बौद्ध सहजिया कवि हो सकते हैं चण्डीदास कवि हो सकते हैं सूफी कवि हो सकते हैं तो बाउल को कवि क्यों नहीं कहा जा सकता ? केवल सुर और आनन्द ही बाउल काव्य को काव्य बनाता है ऐसा कहना समीचीन नहीं जान पडता। भूमिका का वक्तव्य कछ अन्य दिशा मे ले जाता है। वहा बाउल काव्य बगाल की नदी सवलित मेघाच्छन्न मुक्त एव रुक्ष लाल माटी का गीत है और यहा ? दूसरी तरफ प्रो बन्द्योपाध्याय चर्या गीत को बाउल काव्य के सापेक्ष काव्य ही नहीं मानते। किन्तु प्रो भूदेव चौधुरी चर्यागीत को बगला का आदि लोक साहित्य मानते हैं।

जो भी हो यहा हमे देखना है कि प्रो वन्द्योपाध्याय बाउल दर्शन के सन्दर्भ में क्या कहना चाहते हैं ? के विस्तृ वि ले।। को यथा स सक्षेप मे यहा प्रस्तुत करना चि होगा। वे मानते हैं बाउल गान मे बाउल का जीवन दर्शन अभिव्यक्त हुआ है। बाउल

दश का ैशि य यही है कि ऐकान्तिक उ ार्न और प्र ्भ अभिज्ञता न्ध सत्य यहा व्यक्त हुआ है। दार्शनिक त वालो ान मे बाउल कभी भी इसकी सीमा का अतिक्रमण नहीं करता। अपनी दृष्टि से बहिर्भूत सुदूर लोक की काल्पनिकता की कक उसकी वर्णना को आ छ न रके ग्कित को युक्तिहीन विवृत से भाराक्रान्त नहीं करती। यहीं गीता आदि का पथ ौर ाउल काव्य अभि न है। जहा तक अपने लिए एकदम स्पष्ट प्रत्यक्ष जिसके स्वरूप के सम्ब ध मे ज्ञान की नि सशय पूर्णता होती है प्राण की वही विशुद्ध उपलब्धि सज्ञान अभ्रान्त सत्य को ही बाउल गान के माध्यम से प्रकाशित करता है।   बाउल का दर्शन व्यक्त के स्वरूप निर्णय उसकी गति और प्रकृति का दर्शन है। वह मानता है जीव का आदि अत सूचना और परिणति अव्यक्त और अज्ञेय है। मात्र उसका अन्तर्वर्ती क्षणिक अस्ति व ही प्रत्यक्ष और व्यक्त है। असीम अज्ञान के महासमुद्र में एक क्षुद्र द्वीप की तरह है।

परान आमार स्रोतेरे दीया
आमाय भासाइला कोने घाटे
आगे आ धार आछे आ धार आ धार निसुइत्   टाला।
आ धार माझे केवल वाजे लहरेरि माला।
तार तलेते केवल चले निसुइत् रागेन धारा
साथेर साथी चले वाति नाइगो कल किनारा। (वही पृ   )

वे आगे कहते हैं कि प्रकृत दर्शन आ म दर्शन होता है। व्यक्ति जीवन के क्रमिक विकास मे उसी दर्शन का लाभ होता है।   बाउल गान मे इसी दर्शन का प्रकाश होता है। दार्शनिक बाउल अपने स्वच्छ ज्ञान की दृष्टि से जगत् का स्वरूप उपलब्ध करता है। उसकी ही व्याख्या करता है। व्यक्ति का स्वरूप कैसा है वैशिष्टय क्या है ससार मे इसकी चर्चा का धर्म और धारा किस तरह की है इसकी दु खानुभूति का मूलभूत कारण क्या है इसका अवसान कहा है और किस उपाय से ? इस प्रकार के विचित्र प्रश्न का उत्तर बाउल दर्शन मे निहित है। (वही पृ   १ २)

बाउल मानते हैं कि कर्म सम्पादन के लिए ही व्यक्ति का आगमन होता है। जगत मे ह   व्यक्ति को कर्म क   है। मानुष काजे हतो कर्मे रत होल भवेते।

अब प्रश्न उठता है कि कर्म करने की सार्थकता कहा हैं ? बाउल कहता है कि कर्म के लिए ही कर्म नहीं है। इसका एक उद्देश्य है   जिसकी सिद्धि से कर्म की सार्थकता होती है व्यक्ति जीवन का चरम लक्ष्य आ म दर्शन है। किन्तु माया उसका विघ्न है। कर्म द्वारा ही माया का ज्ञान होता है। मैला जब सम्पूर्ण कट जाता है कर्म के द्वारा जब माया विज्ञान सम्पूर्णता लाभ करता है तभी आ मा का प्रकाश होता है। जितनी कछ चचलता की शेष परिणति है शुद्ध पूर्णता के लिए होती है। बाउल कहता है

यार हयेछे करम सारा
मरार आगे सेइ मरेछे

कर्म क द्व र कर्म को ही सम प्त करना जीव क क्ष्य है। कर्म की समाप्ति मे ही इसकी सार्थकता है। अत कर्म के लिए ससार है। कर्म की समाप्ति के बाद माया विज्ञान के द्वारा आ म लाभ के लिए ही व्यक्ति का जगत् में आगमन होता है। (वही पृ २)

ाा मा को अधिकर्ता भाव से ग्रहण करते हुए बाउल मानते हैं कि आ मा की श्रेष्ठता के लिए व्यक्ति से कर्म की सृष्टि होती है। आ मा ही सकल कर्म की अधिकर्ता है। आ मा का कर्तृत्व बाउलगान मे सहज उपमा के माध्यम से सु दर रूप मे अभिव्यक्त हुआ है। लालन साई का एक उदाहरण दृष्टव्य है

कोन सुखे साँइ करेन खेला एइ भवे
देख से आपनि बाजाय अपनि मजे सेइ रवे।
आपने चोरा आपन वाड़ी
आपन से लय आपन वेडि
लालन वले ए नाचाडि केने थाकि चुपेचापे।

अन्यत्र आपनि राजा अपनि प्रजा भवेर पारे
वाजीकर पुरवल नाचाय कथा कहाय
आपि तारे जीव देहे
साई चलाय केराय सेइ प्रकारे।

सकल जीव के हृदय में वस्तुत एक जन मनुष्य है उसी मनुष्य के ही विभि न रूप का विचित्र आधार लीलामय है। ही व्यक्ति के हृ में क] रूप मे अधिष्ठि है। व्यक्ति का ही जगत् है। वह जगत् कर्म का है। फिर भी कर्त्ता व्यक्ति नहीं है। किन्तु जगत् मे व्यक्ति के कर्म की प्रकृति बडी विचित्र है।

आ मा के अधिकर्त्तव्य मे कर्म होने पर भी व्यक्ति से कर्म का प्रक । होने के क कर्मफल में अनुराग होता है एव उसी कर्म को ही आ मज्ञान कहते हैं। यही अज्ञान है यही भ्रान्ति है। इससे ही जगत् की अशान्ति और दु ख है। (वही पृ ३)

मायावरण के स दर्भ मे आगे विश्लेषण है। अहकर्त्ता भ्रा ति के कारण आ मा का जगत् होने पर भी व्यक्ति में आ मा मायावृत होती है। ज्ञान अज्ञान के आवरण मे आवरित होता है।

बाउल ने कहा है (आग है राख के भीतर) आगन आछे छाइयेर भितरे।

अथवा

अग्नि येमन भस्मे ढाका सुधा तेमनि गरल माखा।

ज्ञान का आवरण यही अवि था व्यक्ति के चित्त मे प्रथ की दृ को अस्वच्छ करती है चित्त को मोह ग्रस्त करती है। उसका भोला मन स्वरूप को भूलकर अस्वरूप के नित्यज्ञान मे सेवा करता है। इसी प्रकार स यासत्य स्वरूप अस्वरूप नि य अनि य का पार्थक्य विस्मृति की भित्ति करके यक्ति की चर्या मे आ जाता है। व्यक्ति की भ्रान्ति दो प्रकार की होती है। पहली अहकर्त्ता की धारणा द्वितीय कर्म मे आ मि व का आरोप कर्मलिप्तता। मायावृत आ मा अज्ञानी की तरह आचरण करती है। व्यक्ति मे उसका अभिनव प्रकाश होता है। लालन साई कहते है

साइजीर लीला वुझवि क्ष्यापा केमन करे
लीलाते नाइरे सीमा कोन समये कोन रूप धरे।
गोसाई गगाय गेले गगा जल हये
से ये अमनि करे भि न जनाय भि न वेशे विचरे।

(हे पागल ! स्वामी की लीला कैसे समझोगे। उस लीला की सीमा नहीं है। किस समय कौन रूप धारण करता है। वह गगा मे जाकर गगा हो जाता है। वह ऐसा करता है कि भि न प्रतीत कराता है और भि न वेश मे विचरता है) जो माया कठिन निर्मोक की तरह ज्ञान को वेष्ठत किए रहती है उसे बाउल ने अण्ड के साथ उपमित किया है। आमि डिमे एलेम डिमे गेलेम। (वही पृ ५)

बाउल ज मा तरवादी हैं। वे कहते हैं कि बहुज म की माला में गूँथे जीवन के प्रवाह के बहुविचित्र कर्मधारा के माध्यम से माया का विज्ञान होता है। अविद्या की माया का क्षय एक जीवम का कर्म नहीं है। एक ज म और मृत्यु के बीच एक क्षुद्र अति सीमित जीवन खण्ड मे व्यक्ति जो कर्म करता है ह । की स्थू की तुल मे नि न्त । य है अकिचितकर है। उसी खण्डित जीवन मे अधिगत विज्ञान अधिगम्य विज्ञान का अश मात्र है। अत सर्वज्ञान लाभ के लिए, विज्ञान की पूर्णता के लिए एकाधिक ज म की आवश्यकता पडती है। माया का वि मज म न्त के कर्म सम्प द के ऊ निर्भर करता है। निम्न उद्धरण मे इसका समग्र चित्रण है

अमि वुझते नारि भेवे मरि घटिल एकि
आमि डिमे एलेम डिमे गेलेम
हते नारलेम पाखी।
युगे युगे कत युग गेल
तुमि डिमे वसे ता दितेछ
डिम ना फटिल।
शुनेछि साधुर कथा
समय हले डिम फुराय देन पक्षीमाता।

वल आमार कवे स दिन हवे
ये दिन फटिवे आखि
ए माया डिमेर
ज्ञान भक्ति विवेक पेये
कागाल मानुष हये माया डिमे
रह वद्ध हये।
एकबार खुले दाअ ए ज्ञान आँखि
प्राण भरे तोमाय देखि
प्राणेर माझे।

अन्यत्र कमल की उपमा द्वारा बाउल कहता है

हृदय कमल उठछे फटे कत युग धरे ।

माया विज्ञान की परिसमाप्ति से ज्ञान का उदय होता है। तभी दृष्टि का विभ्रम दूर होता है। अन्तरतम का अप्रत्यक्ष अगोचर अचीन्हा मन का मानुष पहचाना जाता है पाया जाता है। माया के आडम्बर में फसा मन प्रत्यक्ष वस्तु को भी देख नहीं पाता। अपने रूप से स्वरूप की यात्रा नहीं कर पाता। अत अदृश्य सत्ता अपने से अभि न होकर भी अपरिचित हो जाती है। माया के ब धन और वि से छू ने ही शुद्ध प्रे की परि ति होती है। म की स्वच्छता र ही शुद्ध प्रेम की लब्धि होती है। यही प्रेम की अवस्था ही स्वरूपतत्व कृष्ण त्व परम की ब्धि की अवस्था है। माया अस्वच्छता का कारण है। इसी कारण व्यक्ति शान्त निर्लिप्त नहीं चित्त के योग में अशान्त रसाविष्ट होता है भोग में उसकी प्रवणता होती है। मन और दृष्टि वहिर्मुखी हो जाती है। ऐसी स्थिति मे मन अ कें स्वरूपनिष्ठ होक रू कें त हो है। ऐक्य का ज्ञान समाप्त होता है। अत भेद भित्तिक बहुज म प्राप्त करता है। अपनी इच्छा के वशीभूत होकर व्यक्ति प सत्त प स्वरू स से विच्छि न हो है। इच्छा के वशीभूत व्यक्ति आ मस्वरूप को भूल कर ससार में घूमता फिरता है। अब वह अहकर्त्ता भाव में रहते हुए कृत कर्म के फल की आकाक्षा करता है। यही कर्मफल भोक्ता का भाव ही दु ख और अशान्ति का मूल है। माया विज्ञान की समाप्ति से आ म त व या स्वरूपतत्व की पहचान होती है। अब पूर्ण मुक्ति हो जाती है।

प्रोफेसर व द्योपाध्याय कहते हैं कि बाउल दर्शन मे ज्ञान विशिष्ट कर्म की कथा है अर्थात् जीव के जगत् मे आगमन से मुक्ति तक ज मज मान्तर व्यापी जीवन प्रवाह के समस्त कर्म शुद्ध कर्म मात्र नहीं हैं। ये परस्पर विच्छि न और एकान्त स्वत त्र नहीं है। जागतिक जीवन के प्रारम्भ से परिसमाप्ति तक समग्र कर्म सम्पादन के बीच एक विशिष्ट धारा है। एक निगूढ योग सूत्र मे वे विधृत होते हैं। प्र येक ज म के कर्म पूर्व और परवर्ती

क कर्म के थ वि ो सम्ब ध युक्त होत है। इस सम वय के मूल मे स्मृति है।
(वही पृ ८२)

कर्म माया ज्ञानविशिष्ट कर्म की चर्चा के प्रसग मे बाउल एक विशेष शब्द पितृधन का प्रयोग करते है। दृष्टव्य हो

तोमार 'पितृधनेर विनाश करे
रति मध्यिखाने हारिये गेछे।
'दिन दिन पैतृक धन
निलो चोरे।

पितृधन या पैतृक धन पिता से पुत्र मे एक स्तर से समर्पित होता है। मनुष्य जीवन मे भी उसी प्रकार ज म ज मान्तर मे कर्मार्जित ज्ञान अर्पित होते होते चलता है। मरण के क्षण मे देही के देहावसान के साथ साथ उस ज म का कर्म समाप्त होता है किन्तु कर्म ब्ध र ज के लिए चित हो है कर्म का फल अनागत के लिए उत्सर्गीकृत होता है। मृत्यु से जीवन का सब चला जाता है स्थूल देह जाती है उस देह का गुण जाता है कर्म जाता है। ससार के आ मीय परिजन सम्पदा और सम्मान छोडकर चला जाना होता है किन्तु जो लाभ सकल क्षति के अत मे होता है वह बढता है कम नहीं होता वह लाभ हुआ ज्ञान। उस धन का नाम बाउल रखे हैं पितृधन असल धन ।

आसल धने नाहि चिने
करिते चाइ महाजनी

यही हुआ ससार का स्वरूप। इसीलिए ससारी को नाना दु ख अशान्ति क्षोभ और नैराश्य होता है।

इस स्तर पर पहुचकर व्यक्ति सर्वज्ञ होता है। आ मदर्शी मोहमुक्त। किन्तु माया मुक्त नहीं । माया तब भी पूर्णत समाप्त नहीं होती। कारण माया के विनाश का अर्थ व्यक्ति जीवन का ध्वस है देही की सर्वशेष परिणति मुक्ति है। ज्ञान के उदय काल में मनुष्य गुणमय मायामुक्त होता है ह वि नोत्तर पर्व मे उत्कर्षि हो है। माया का यह अश मोह युक्त अश मे अनतिक्रान्त होता है। यही गुणमय माया है। दूसरा अश दैवी माया तब भी अनतिक्रान्त रहती है जिसके अतिक्रान्त से मुक्ति होती है। गुणमयी और दैवी माया का यही दो रूप अपरा और परा अविद्या और विद्यामाया के नाम से जाना जाता है।

विज्ञानोत्तर पर्व का यही काल प्रलयकाल होता है। यहा त्रिगुणा मिका माया के स्तर मे सब कछ सचय और लय प्राप्त होता है। देही विप्लवी विवर्तन के द्वारा नव जीवन प्राप्त

रता है। वह जीवन मुक्त होता है। ईशानकोण का मेघ झञ्झा और पाकृतिक विपर्यय सूचित करता है। इसीलिए पलय के प्रसग मे बाउल गानो मे बार बार ईशानकोण का उ लेख दिखाई देता है। ईशान प्रलय का प्रतीक है। ईशानकोण ही उत्तरायण पथ का आरम्भ है। इसीलि ई को ही प्र य क प्र र भिक स्थान रू मे निर्देशि त किय जाता है। यह प्रलय पथ ही जीवन का उत्तरायण पथ मे गति है। महा मा लोग इसी उत्तरायण पथ के गामी होते हैं। लालन कहते हैं

ए घरखानाय आमार के विराज करे
आमि जनम भरे एक दिनओ देखलाम ना तारे।
नडे चडे ईशान कोणे
देखते पाइने ए नयने
हातेर काछे यार भवेर हाट बाजार
आमि धरते गेले हाते पाइने तारे।

इस प्रकार ज म चक्र के कर्म चक्र के आवर्त्तन मे जीव आवर्तित होता है। इस स्तर पर व्यक्ति जीवन एकान्त रूप मे प्राक्तन निर्दिष्ट अतीत नियन्त्रित होता है। प्रलय मे उसी क्त क निर्देश अती की ही नि । शक्ति विध्वस होती है। अतीत कवलित जीवन ग्रास मुक्ति प्राप्त करके विशुद्ध वर्तमान के किनारे समुत्तीर्ण होता है। बाउल गान मे यही वर्त्तमानिक उपलब्धि प्रकाशित हुई है।

वर्तमान अवस्था में व्यक्ति के पश्चात् में अतीत का द्वार रुद्ध होता है। अर्थात् इस ज म मे अतीत का और अनुप्रवेश नहीं होता। पूर्व ज मार्जित कर्मफल प्रलय मे विध्वस हो जाता है। इस जीवन की सूचना वासना भित्तिक नहीं होती। पूर्व ज मार्जित फल इस जीवन के विकास में और सक्रिय एव सहायक नहीं होता। शुभ हो अशुभ हो कर्मफल मात्र मे ही श्रृखलित होता है। विज्ञान मे श्रृखल छि न होता है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि जीवन मुक्त का जीवन कर्महीन है। वस्तुत देही मात्र में ही कर्म ही है। देह या माया का विनाश न होने तक कर्म समाप्त नहीं होता। प्रलय में मात्र व्यक्ति के ज मान्तरीय पाप पुण्य का ध्वस होता है। (वही पृ ८९)

उपनिषद में जिसे जीवन मुक्त कहते हैं बाउल उसे ही विशिष्ट बाउलिया परिभाषा मे ज्यान्तेमरा अर्थात् जीवनमृत कहते हैं। जीवनमृत अहकारमुक्त कर्म में कर्तृ वज्ञान हीन उदासीन निर्लिप्त निस्पृह शान्त होता है। राधाश्याम बाउल कहते हैं

मन यदि वासना छेडे
मानुष चाँदेर आशाय फेरे
तवे मानुष धरते पारे
हते हय रे ज्या ते मरा।

अन्यत्र पाते हैं

अनुरागी ज्यान्ते मरा
मरार आगे सेइ मरेछे

मरने के पूर्व मृ यु अर्थात् देह रहने पर भी न रहना। इस अवस्था मे योगी की देह अतिवाहिकता को प्राप्त होती है इस अवस्था मे यद्यपि देह दिखाई देती है फिर भी वास्तव मे वह थाका ओ ना थाकार सीमाय थाके। (रहने पर भी न रहने की सीमा मे रहता है।) (वही पृ ९)

जीवित मरना ही सहज है। इस अवस्था में व्यक्ति की कोई कामना नहीं रहती। बाउल सहज प्रेम प्राप्ति के लिए जीते जी मरने की बात करता है।

से प्रेम करते गेले
मरते हय।

बाउल अपने को अनुरागी कहते हैं। यहा अनुराग का अर्थ विषयानुराग नहीं है। आ मानुराग है। सकल कर्म मे उसका आ म अन्वेषण रहता है। उसके अन्वेषण की ही आकलता होती है। यह अनुराग या सहज प्रेम कामज नहीं होता। सहज प्रेम सकल्प नहीं है। यह प्रेम आ म प्रतिष्ठित होता है इस प्रेम मे व्यक्ति का कर्तृव नहीं होता। सहज अवस्था में मैं और कर्म में साम्य होता है। यहा मैं भी सार्वजनीन कर्म भी सार्वजनीन होता है। यहा न तो कर्म का बधन होता है और न फल की स्पृहा ही। माया विज्ञानोत्तर सहज अवस्था में उत्तीर्ण बाउल को ही सहजिया नाम से अभिहित किया गया है। बाउल कर्मानुष्ठान मूलक किसी साधना के विश्वासी नहीं हैं। वे मानते हैं कि सहजावस्था या मुक्ति कर्मानुष्ठान के परे की चीज है।

प्रोफेसर व द्योपाध्याय ने बाउल साधना के स दर्भ मे कहा है बाउल साधना दलबद्ध साधना नहीं है। अकेली साधना है। अ ने ्कत के त र की त ह ही वे निस एकाकी हैं। मन के मानुष की खोज के लिए अकेले ही निकल पडना होता है सघबद्ध होकर नहीं। हज स्थ की प्र प्ति मुक्ति ल भ के लिए मुचित स्थैर्य प्रतीक्षा का धैर्य आवश्यक है। जल्दबाजी से फल नहीं फलता। मुक्ति कामी का वेश भूषित होने से काम नहीं चलता। सब्र से ही काम करना पडता है। इसीलिए बाउल सिद्धि के आन द से आगे सिद्धि के नशे मे रहते हैं। सहज साधना से सम्बद्ध ये बाउल कर्म अनुष्ठान विवर्जित होते हैं। बाउलों की साधना के बीच जो त व क्रियाशील रहा है उसकी चर्चा सक्षेप मे द्वितीय अध्याय मे धर्म और साधना प्रसग मे ही गयी है। तमाम भारतीय एव अभारतीय धर्म तथा द नि क प्रभ ्व मन्व नित वैशिष्ट के र्भ मे ही बाउलो का साहि य अपने वर्तमान रूप में आया और वे सहजिया अनुरागी बाउल कहे गये।

अ ि अत्तिया इा ीोो र प मे है उर । ।।वन का ।ुभव उ गर्शनिक
आ ।। ।ामा। ।क विचारो ४ अरातल पर ही सहज भाषा मे अभि यक्त हुआ ह । अपनी
सह ।ता क कार । की उ के न था ी ो को ोक साहि य के धरातल पर खींचा गया। प्रा व द्योपाध्याय का पूरा विश्लेषण ही बडा रहस्यवादी एव दार्शनिक है। वे बाउलो के विश्लेषण को उतना ही जटिल कर देते हैं जितना कि वे सहज हैं। भारतीय दर्शन की गूढता का आरोप भी बाउलो पर और सोमे द्रनाथ की खुद की भाषा पर हुआ है।

प्रोफेसर वन्द्योपाध्याय मानते हैं बाउल काव्य गुणमय माया के उपान्त में विज्ञानोत्तर काल का सा ध्यकाव्य है। किन्तु ससार सम्ब ध अथवा आ मसम्ब ध भाव मे रचित नहीं है अधिदैव भाव में सृष्ट है। इसीलिए बाउल गान अधिभूत भाव के उर्ध्व में अवस्थित आध्या मिक काव्य के साथ समवर्ती होने पर भी आध्या मिक काव्य नहीं है परन्तु अधिदैविक काव्य है। ही अन्य काव्य के स थ तु ना करने प इ का भावगत एव रूपगत पार्थक्य है। यही बाउल गान का वैशिष्टय है।

ु यमय के ।र के न्त मे ।न म अ स्था के तर । के क । ल ोहमुक्त एव शान्तदृष्टि होते हैं। ससार के स्वरूप के प्रति विशेष जानकारी प्राप्त करने के बाद वे ससार के प्रति आसक्तिहीन हो जाते हैं। बाउलगान इसी ब्राह्मी स्थिति की अवस्था मे रचित हैं। इस गान का उपाश्रय अधिदैव भाव है। इसी कारण इस गाने को उपजीव्य तत्वार्थ के द्वारा ज्ञानमय भाव का निरसन है। स्वरूप ज्ञान ही इसकी भित्ति है उसी भित्ति पर प्रतिष्ठित होकर अस्वरूप का निर्देश दान ही इसका कार्य है। इसीलिए बाउल रचना नेतिमूलक है। जीवन औ त् क प्रकृत ता पर्य की व्याख्या अर्थात् इ की क्षणिकता एव क्षयिष्णुता इसका आलोच्य विषय है।

साधारण आ मभाव में रचित आध्या मिक काव्य का न्याय शुद्ध आ मा का ध्यान इसमे नहीं है। स्वरूप ज्ञान की बात होने पर उसके साथ अस्वरूप (निराकार) की भी बात है। यही द्वैत बाउल गान का वैशिष्टय है। एक तरफ वह सत्य की बात कहता है दूसरी ओर असत्य की समालोचना करता है। आध्या मिक कवि क न्याय स के ति निस्पृह निर्लिप्त होता है। निरीक्षण एव उससे उ प न आन दबोध उसका नहीं होता। वह दृष्टि अन्य दिशा में स्थापित होती है जिस ओर परलोक है। बाउल की भावना निर्वाण पर्व के पूर्व मे खडी अनागत एव अनधिगत की भावना है। यह अनधिगत बाहर भी नहीं दूर भी नहीं। अति निकट होने पर भी जो अप्राप्त है उसकी ही बात बाउल गान मे प्रकाशित हुई है। बाउल गान इसी अनागत अनधिगत का ध्यान अदृष्ट सत्ता का स्मरण है जो सर्वमानवातीत और सर्वका तीत महि । य पर पु जी की म ।ति चरम आन द है। बाउल इसे ही मन का मानुष कहते हैं। इसके सधान की कथा बाउल गान की मूल बात है। (वही पृ ३६ ३)

गगन बाउल के गान में इस खोज का स्वरूप देखा जा सकता है।

आमि कोथाय पाव तारे
आमार मनेर मानुष येरे।
(मैं कहा पाऊगा उसे मेरे मन का मानुष है जो)

अन्य पदो मे भी उसका सकेत है

सकल जीवेर घरे आछे
मानुष वस्तु एक जना
सर्पेर माथाय मणि थाके
सर्प ताहा जाने ना।

(सभी जीव के घर मे एक जन मानुष है जो उसी प्रकार अज्ञात है जैसे सर्प अपने माथे की मणि को नहीं जानता।)

अन्य एइ मानुषेइ सेइ मानुष आछे (इसी मनुष्य में ही वह मानुष है) फिर भी उसका साक्षात सहज नहीं है। अन्तर में के लिए विरह वे की भिव्य । अनेक गानो में हुई है। बाउलों की विरह व्यजना इसी मन के मानुष को न पाने की पीड़ा है। प्रोफेसर वन्द्योपाध्याय कहते है कि बाउलो का यह विरह अश्रु वाष्पाच्छ न नहीं है वह शुष्क रुक्ष एव विरलता के भाव से पूर्ण है। इसमें वेदना का चाचल्य नहीं है अचचल गभीरता एव अप्रमत्त गाम्भीर्य है। अ के लिए अस्पृह के अ मे विचित्र रूप मे स ध्या क्षण की उपलब्धि अभिव्यक्त हुई है। वहा जगत का स्वरूप भी स्पष्ट हुआ है। जगत मे सु दर का आलोक रस की गोद में सयुक्त होता है किन्तु विज्ञानी हृदय मे अपने घर की पुकार और नहीं पहुचती है असीम की वशी के सुर में शान्त सु दर सहजानद मिलता है। पद्मलोचन के गान मे इसकी अभिव्यक्ति सु दर ढग से हुई है।

आमार डुबलो नयन रसेर तिमिरे
कमल ये तार दल गुटाल
आधारेर तीरे।
गभीर कालच यमुनाते
चलछे लहरी
रसेर लहरी
ओ तार जले भासे काने आसे
रसेर वाशरी
आमि वाइरे छटि बाउल हये
सकल पासरि।
घर छाडिये केंदे मरि

भासाई कम्भ रसेर नीरे
आमार डुबलो नयन रसेर तिमिरे। (पृ ४ ४१)

प्रोफेसर वन्द्योपाध्याय ने एक भावनिष्ठता गेयता सुरम्यता आदि विशिष्टताओं को बाउल काव्य की काव्या कता को व्याख्यायित करने के लिए विषय बनाया है। सच पूछा जाये तो ये बाउल निगूढ त व कथा को सु दर सु दर उपमा रूप के माध्यम से व्याख्यायित किए हैं। किन्तु आधुनिक कालीन बाउलो ने अ धुनिक क ली रूपको क व्यवह र किया है।

उपेन्द्र नाथ भटटाचार्य ने हित्य क वि ले करते हुए काव्य क द के निर्माण की चेष्टा की है। वे स्वीकार करते हैं कि व्यक्तिगत भाव और अनुभूति जब निर्वैयक्तिक होकर एक सार्वजनीन रूप धारण करती है तब उसमे रस की सृष्टि होती है। यही रस सिक्त भाव और अनुभूति जब उपयुक्त भाषा मे अलकार एव छ दादि से युक्त होकर व्यक्त होती है एव चित्त मे रस सचार द्वारा आन द दान करती है तभी वह प्रकृत काव्य पद वाच्य होता है। समु नत क पना विपुल आवेग सगत गभीरता एव प्रकाश के अनवद्य कौशल को ही हम काव्य साहित्य के उत्कर्ष के मानदण्ड रूप मे ग्रहण करते हैं। कल्पना की लीला एव आवेग का तरग रहते भी यदि वह उत्कृष्ट कला के माध्यम मे प्रकाशित नहीं होता है तो वह प्रकृत साहित्य नहीं हो पाता। कला कौशल के माध्यम से ही काव्य साहित्य र्थक रू । क । है। रू क त्कर्ष ही हित्यिक उत्कर्ष का एक प्रधान लक्षण है। अत काव्य साहित्य अधिकाश रूप मे प्रकाश भगी के ऊपर निर्भर करता है। आधुनिक साहित्य विचार मे कला कौशल मे हम उपस्थापन का कौशल भाषा अलकार छ द इगित सकेत आदि अनेक कुछ समझते हैं। किन्तु साधारण रूप मे हम जिस पैमाने से वर्तमान साहित्यिक मूल्य निर्णय करते हैं बाउल गान (गीत) के विचार मे वह पैमाना नहीं चलेगा।

पुन वे कहते हैं बाउल गान का एक मूल विषय वस्तु धर्म तत्व एव उसी धर्म साधना का क्रिया कलाप है। इसकी परिधि सकीर्ण एव वैचित्र्यहीन है। यक्तिगत भावानुभूति का उत्सारण या किसी विशिष्ट दृष्टिभगी के रूपायन की सम्भावना इसमे नहीं है। फिर भी इस धर्म त व की विवृत्ति क्रि क के स्वरू निर्धा मे जि व्यक्तिगत अनुभूति एव आवेग का परिप्रकाश घटित हुआ है उसमे जितना साहित्यिक रस सम्भव है वही इसका साहित्यिक मूल्य है। उसी आवेग एव अनुभूति को सार्थक रूप मे प्रकाशि क के त्क रिक की सृष्टि क पा । कि नहीं वही बाउल गान के स दर्भ मे विचारणीय है। (उ ना भ पृ १ ९)

उपे द्रनाथ भटटाचार्य मानते हैं कि बाउल गान अति शिक्षित लोगो की रचना नहीं है। अशिक्षित लोगो ने ही ये गान लिखे हैं। सरल हृदय धार्मिक ग्रामीणो के काव्य मे सुगठित

काव्य सौ दर्य एव चम कार का अभाव तो होगा ही। उनकी भावानुभूति उच्छवसित होकर जिस रूप को प्राप्त कर सकी वही उसका अपना रूप बन गया। कृत्रिमता एव प्रयास से परे एक सहजात कवि व बाहर आया है। इन बाउलो ने अपने विषय प्रतिपादन के लिए जिन उपमा या रूपको का प्रयोग किया है वे एकदम उनके सामजिक जीवन के बीच से लिए गये हैं। उनकी भाषा भी चलती भाषा है। ज्यादा समीचीन होगा कि उनकी भाषा को मिश्रित भाषा कहा जाये। अनेक बोलियो एव भाषाओं के शब्दो का मिश्रण मिलता है। ज्यादा सभव है कि हि दी के सन्तों की भाषा का प्रभाव हो। बहुत से पदों मे इन बाउलो ने गुरु रूप मे कबेर या कबीर का उल्लेख किया है। जो भी हो बाउलो की रचना स्वाभाविक सहज सरल निश्चेष्ट सवर्धित है।

भटटाचार्य जी ने बगला साहित्य मे बाउल गानो (गीतो) को प्रकीर्ण वनफूल की तरह माना है। इस ग्राम गीत के साथ बगाली सस्कृति एव धर्म की विचित्रता का प्रदर्शन भी होता है। वे मानते हैं इसमें बगालियो के एक धर्म सम्प्रदाय के अन्तर्जीवन की रस सिक्त अभिव्यक्ति है। वह धर्म सम्प्रदाय आर्य एव अनार्य हि दू बौद्ध एव सूफी भाव धारा के
य मे ।ठित ब क ८क नि स्व ८क धर्म सम्प्रदाय है। यह धर्म किसी अभिजात सम्प्रदाय का धर्म नहीं है यह जन साधारण का धर्म है।

इ र्म के वि स्तु या प्रतिप द्य वि के य अनेको का तभे हो सकता है। किन्तु उसके साथ जडित मानवीय भावानुभूति आशा आकाक्षा आन द वेदना नैराश्य का वैशिष्टय पूर्ण प्रकाश तो साहित्य की सीमा से अलग नहीं कहा जा सकता। गुरु के पास एक बारगी आ म समर्पण मानव के हृदय स्थित भगवान के निकट दैन्य साधन भजन मे अक्षमता के लिए नैराश्य साधना मार्ग मे व्यक्तिगत विचित्र अभिज्ञता आदि इन्हीं गानो के उपजीव्य एव इसी भावानुभूति मे जो कारुण्य जो माधुर्य है प्रकाश भगी मे एक बारगी जो सौ दर्य की सरलता है वही इनका साहित्याश है। इस प्रकार प्राण की सहज सरल अभिव्यक्ति मे एक मनोरम साहित्य रस है। एक दृष्टि से ये गान बगला साहित्य की ८क अ न्य स ।र।८ स्वकीय वैशि य पू । सम्पदा हैं। (उ ना भ पृ ११) अपनी सीमा में वैचित्रही त मे बा ल ।।न विविध ध से सम्बद्ध होने पर भी एक ही परिपाटी को वहन करते हैं।

बाउल गान के विषय प्रतिपादन के अनुक्रम को उपे द्रनाथ के शब्दों मे ही देखा जाए
पहले भगवान के निकट दैन्य या आर्त्त प्रकाश गुरु की प्रशस्ति एव गुरु के निकट आ मसमर्पण करके करुणा प्रार्थना। इसके बाद देहत व का वर्णन मन के मानुष का स्वरूप एव लीला क्रीड़ा वर्णन साधना की नाना पद्धतियो का सकेत साधना का काठिन्य और उस विषय मे कठोर सतर्कता के अवलम्बन की बात अपने साधन जीवन की अक्षमता साधना के पूर्ण फल का स्वरूप आदि की एक निर्दिष्ट धारा या पथ पर प्राय सकल सगीत

रचयिता ही अग्रसर हुए हैं। साधारण प्रवर्त साधक एव सिद्ध इन तीन अवस्थाओ का अनु । क के इन्होने । न रचना की है। प्रर्वत अवस्था मे भगवान के निकट दैन्य और गुरु की करुणा प्रार्थना साधक अवस्था मे देह तत्व मन का मानुष साधना का स्वरूप आदि वर्णन सिद्ध अ स्था मे स धना की रिपू । । का स्वरूप प्रभृति नके । मे व्यक्त हुआ है। अवश्य ही सभी इसी धारा को एक के बाद एक अनुसरण करके चलते हैं ऐसा नहीं हैं सिद्ध अवस्था मे गान की सख्या खूब ही कम पायी जाती है साधक अवस्था मे से दो चार सिद्ध-अवस्था के गान माने जा सकते हैं। वैसा होने पर भी प्राय ये सब विषय वस्तु उनके गान का प्रधान उपजीव्य है। इसके बाहर के विषय सम्ब ध मे साधारणत कोई कथा उनके गान में नहीं पायी जाती। फिर भी साधना जीवन के प्रचलित धर्म विश्वास और रीति नीति का अन्तर्निहित असार व प्रभृति के सम्ब ध मे बाउलों की दृष्टिभगी और मन्तव्य अनेक गानों मे व्यक्त हुए हैं।

विष स्तु की इसी सी । द्ध के लिए बा ल गान में एक पुनरावृत्ति है। एक ही विषय लेकर सबने रचना की है मूल मे तत्व और साधना का ऐक्य रहने के कारण वक्तव्य प्राय एक ही हो गया है केवल भाषा एव उपस्थापन मे जो प्रभेद है उसके द्वारा ही एक के से दू रे के ान मे कछ र्थक्य सूचित हो है। यहा कवि के व्यक्ति मानस की स्वाधीन अभिव्यक्ति का स्थान नहीं है। इसीलिए देखा जाता है गुरु व दना का पद शरणागति का पद देह तत्व का पद मन के मानुष का आदि भाव और त व की दृष्टि से मूलत प्राय सभी समान हैं भि न भि न कवि की रचना होने पर भी भाव क पना क र्थक्य ए नूत या दृष्टि भगी की ौलिकता वि ो कछ नहीं है। किन्तु विषयवस्तु की सीमाबद्धता धर्म त व और साधना प्रणाली के वर्णन की शुद्धता होने पर भी गानो मे सहज कवि व शक्ति और साहित्य रस का बहुत दृष्टा त लक्ष्य किया जाता है।

(उ ना भ पृ १११ ११२)

ु मे सहज चि की क त त व्यक्त हुई है। यह कातरता करुण माधुर्य मे परिणत होती जान पडती है।

दयाल दरदी कागाल एल तोमार द्वारे।
अक्षय भण्डार तोमार केउ यावे ना फिरे।
सर्वधनेर दाता तुमि त्रिमहिमण्डले
विना मागाय कत धन दियाछिले मोरे।
एखन आर कोन धन चाई ना गुरू
चरण दाअ आमारे।।
कलेर वाहिर ह लाम आमि चरण पाव वले
कत महापापीर दिले चरण ताइ एसेछि शुने।

दाडालाम दरजाय एसे स्क ध झुलि निये।।

यहा पाजशाह की कारुणिक स्थिति दिखाई देती है। उस दयाल दरदी के सामने कगाल भाव का निवेदन है। क धे पर झोली लटकाकर वह बडी आशा से दरवाजे पर खडा है। गुरु के चरणा मे बस आ मनिवेदन करना चाहता है।

पूर्वबग के जलधर के एक गाने को देखा जाये

गुरू गो सुजन नाइया
भव पारे नेओ आमारे वाइया।
आमार जीर्ण तरी
नाइ काण्डरी
हारे तरी के निवे आउगाइया।।
भवनदी अकूल पाथार
आमि जानिना सातार
ओगो आमारे माइर ना चुवाइया।
तोमार नामेते कलक हवे
गुरू गो यदि मरि हावुडुवु खाइया।।
भव नदीर दुरन्त धार
(आमार) दाड़ीते टानते चाय ना दाड
सोल आना खाइया
ओगो मन माझि बड पाजी
गुरू गो भव पारेर व धु
आमारे चाइते चाय फालाइया।।

यहा गुरु के सामने साधक का आर्त्त निवेदन है। भव सागर मे वह अपनी टटी नौका लेकर असहाय पडा हुआ है। सारी परिस्थिति ही वि ८ वि री हैं। वह भव पार के ब धु गुरु के प्रति आर्त्तनाद करता है।

ये बाउल साधक गुरु के प्रभाव को किस प्रकार व्यक्त करते हैं। लालन के कई गानों मे उसका वर्णन है

गुरू दोहाइ तोमार मनके आमार
लओ गो सुपथे।
तोमार दया विने तोमाय साधव कि मते
तुमि यारे हओ गो सदय
से तोमारे साधने पाय
विवादी तार स्ववशे रय

तामार कपाते।।
यन्त्रे ते यन्त्री येमन
येमन वाजाय वाजे तेमन
तेमनि यन्त्र आमार मन
बोल तोमार हाते।।
जगाइ माधाइ दस्यु छिले
तादेर गुरूर कृपा हल
अधीन लालन दोहाइ दिल
सेइ आशाते।
(देखिए हिन्दी अनुवाद खण्ड २ पद सख्या २५)

गुरू सुभाव दे ओ आमार मने।
तोमार येन भुलिने।।
गुरू तुमि निदय यार प्रति
ओ तार सदाय घटे दुर्मति
तुमि मनोरथेर सारथी
यथा लओ याइ सेखाने।।
गुरू तुमि तन्त्रेर तन्त्री
गुरू तुमि मन्त्रेर मन्त्री
गुरू तुमि यन्त्रेर यन्त्री
ना वाजाओ वाजवे केने।।
आमार जन्म अन्ध मन नयन
गुरू तुमि नित्य सचेतन
चरण देखव आशाय कय लालन
ज्ञान अजन देओ नयने।।
(दृष्टव्य हिन्दी अनुवाद द्वितीय खण्ड पद २३)

गुरू पदे निष्ठा मन यार हवे।
यावे तार सव ससार
अमूल्य धन हाते सेइ पावे।।
गुरू यार हय काण्डारी
चालाय से अचल तरी
तुफान वले भय कि तारि
नेचे गेये भव पारे यावे।।
आगमे निगमे कय

गुरू रूपे दीन दयामय
असमये सकाशे हय
ये तारे भजिवे।
गुरू के मनुष्य ज्ञान यार
अघ पाते गति हय तार।
लालन वले ताइ आज आमार
घटल वुझि मनेर क स्वभावे।।

(दृष्टव्य हि दी अनुवाद खण्ड २ पद स २४)

इन पदो मे गुरु माहात्म्य के वर्णन के साथ उसे ईश्वर रूप में अभिव्यजित किया गया। वह सर्वशक्तिमान सर्वक्षम दीन दयामय है। इसीलिए कवि गुरु क र हो चाहता है।

नाना प्रवृत्ति कल रिक नुष्य के स्व का रि र्तन नहीं होता कारण उसका भाव जीवन या प्रकृति साधक जीवन में आरम्भ नहीं होता पद्लोचन के पद मे यह भाव सु दर रूप मे व्यक्त हुआ है।

एवार परश छुँये सोना हव साध छिल मने।
ह लो ना ता तो हा लो ना
केवल तावार मिशाले जन्ये।।
स्थान गुणे गगा जल
पात्रगुणे धरे फल
जेतेर गुणे स्वभाव याय जाना।
ओ से भेक भ्रमरे कमलवने
कमलेर स्वभाव भ्रमरे जाने
भ्रमर करे मधुपान
(ओ रे मन आमार) भेक थाके अज्ञान
जेने शुने मधु खाय ना केने।।
के जाने हरिनामेर महिमे
शिला भासे घोर तुफाने
सेघाय पगु लघ्ये गिरि
वोवाय वले हरि
खज नृत्य करे हरि सकीर्तन।।
निम्बवृक्ष शतभारे
यदि दुग्ध दिए रोपण करे

तव स्वभाव छाडिते नारे।
गोसाइ हरि पोदोय वले
(ओरे मन आमार) स्वभाव याय ना भले
स्वभाव ना छाडिले
भावेर मुकल हवे केने।।

(दृष्टव्य हिन्दी अनुवाद खण्ड २ पद सख्या ८५)

यहा पद्मलोचन ने बडे मार्मिक ढग से इस बात को बताया है कि ससारी मनुष्य साधना के भाव लोक मे अपनी स्व त ज । के क । हीं त । वह निम्बवृक्ष के दृष्टान्त से इस जडता या परिवर्तन हीनता को अभिव्यजित करते हैं।

बाउल धर्मसाधना को राग का कारण मानते हैं क्योकि राग या प्रेम ही उनकी साधना का मूल लक्ष्य है। इस राग की उपलब्धि मे ही स्वरूपतत्व या कृष्णत व की उपलब्धि होती है। यह गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है। पोथी पत्रा पढने से या किसी की कथा से वह प्राप्त नहीं होता है। यह गुरू भी तो सूक्ष्म देहस्थित ईश्वर या आ मा या रस बीज है। यह ईश्वर की तरह ही सर्वशक्तिमान है। इस स दर्भ मे आ मलोचन का पद लिया जा सकता है

ना जाने से रागेर करण
शुधु कथाय कि हय प्रेमेर आचरण।
कथाय कथा सवाइ तो कय
वोवा नय तो जगत् जन
छेडा च्याटाय शुये थाके
देखे लाख टाकार स्वपन।।
गाभीते हय गोरोचना
से जाने ना तार मरम।
देख सापेर माथाय मानिक ज्वले
तवु करे भेक भोजन।

ससारी मनुष्य की अजनबीयत एक अच्छे दृष्टान्त से यहा व्यक्त हुई है। मनुष्य और परमा मा एक साथ हैं किन्तु मनुष्य उससे अनभिज्ञ होकर ससारी कप्रवृत्तियो मे मस्त रहता है। साप के माथे पर मणि जलती है फिर भी वह मेढक खाता है। यही उसकी अज्ञानता या विवशता है। कहावत है कि ऊट लादता है चीनी और खाता है नीम की पत्ती इ दे । का मनुष्य कवल कथ ही कहता है। एक अन्य गाने मे राग के करण (क्रिया) का वैशिष्टय व्यक्त हुआ है

गोल छेडे माल लओ वेछे।

गोल माले माल मिशाल आछे।।
जान ना मन रागेर करण
येमन वालिर सगे चिनिर मिलन
सहस्र वर्णे मिशेछे
ओरे मत्तहस्ती टेर गेल ना
चेउटि मरम जेनेछे।।
ओरे पोदो होल काना वेडाल
दह वले कापाश खाच्छे।

यह कवि ने डे चमत्क री से स री न के वि म को व्यक्त किय है। इस जीवन मे ुद्ध प्रे सी प्रक मि हुआ है जैसे लू में चीनी। मदमत्त हाथी उसे अलग करने की विधि नहीं जानता। अत वह मिटटी के भाव से उसे ग्रहण करता है लेकिन क्षुद्र चींटिया उसके मर्म को जानती हैं और बालू में से चीनी को ही ग्रहण करती हैं। साधक इसी ग्रहण शक्ति से काम में से शुद्ध प्रेम को प्राप्त कर लेता है।

बाउल मानते हैं कि स क नु इसी देह मे ही करता है किन्तु इ द्रिय विकारों से विकृत इस देह गृह में वह बास नहीं करता। अत काया के शुद्धीकरण की आवश्यकता पडती है। इस शुद्धीकरण के बाद साधक का शरीर पक्व देह कहा जाता है। गुरु ही इस पक्वावस्था तक ले जाने मे सहायक होता है। साधक स देह की स्थिति मे ही गुरु के प्रति कातर निवेदन करता है

भागा घरे टिकवे कि रे मानुष आर।
आमार घरे हयेछे अनाचार।
दैवमाया घरे यार मने
नारिकेलेर जल कोथा आसे जाय के वा ता जाने
येमन गुटि पोकाय गुँटि वाधे रे
आपनार मरण करे सार।।
छटि इदुर काटर कटर काटछे आमार घर
(ओ तार) चौदिके हाओया ढुके आलगा नय दुयार
तीर धरे नीर छेंचते गेले
झरना रेये हय पाथार।
गोसाइ हरि वले ओ पोदो नच्छार
मूले चूरि करलि रे गोयार
ओ तोर मस्तके दशेछे फणी
आमार तामा वाधा हल सार।

यन ‌कवि ने सु‌दर एव सहज प्रतीको का प‌‌‌‌‌ ‌‌‌ा किया है। नारिकेल के ज‌ की तरह माया शरीर के भीतर ही रहती है। रेशम के कीडे की तरह अपनी ही रचना से मनुष्य ‌ष्ट हो जाता है। छ इ‌द्रियों की क्रिया को छ चूहो के द्वारा व्यजित किया है। मस्तक मे फणी के काटने से मौत की निशिचन्तता आदि सर्वजन ज्ञात एव साधारण विषय की उपमा तथा दृष्टान्त द्वारा व्यक्तिगत साधन जीवन की समस्याओ को व्यक्त किया गया है। सारे के सारे प्रतीक एकदम सहज जीवन के पूर्ण परिचित प्रतीक हैं।

मछली पकडना खेत जोतना खजूर का पेड काटना और गुड बनाना आदि साधारण ग्रामवासियो के जीवन के दैन‌दिन कार्य व्यापारों को अनेक बाउल कवियों ने अपने साधना जीवन की अवस्था के वर्णन में अपने गानो में विषयीभूत किया है। यादु बिन्दु के गाने में इसका उदाहरण मिल सकता है

आमार एइ कादा माथा सार होल।
धर्म माछ धरव वले नामलाम जले
भक्ति जाल छिडे गेल।
केवल हिन्से नि‌दे गुग्लि घोडा
पेयेछि कतक गुल।।
एइ सत्य धर्म विले
सुरसिक वागदी दुले
शुद्ध भावे जालटि फेल
आन‌दे माछ धरछे भाल।
आमि पडलाम फाके माया पाके
बल बुद्धि चलोय गेल।।
कसगे विल गावालाम
कक्षण जाल नावालाम
क्षमा खालुइ हारालाम
उपाय कि करि वल।
आमि विल घुणे पाइ चादा पुटि
लोभ चिले लुटे निल।।
पाचरा भूत लागल पिछे
माछ धराय प्याच पडेछे
भये प्राण शुकिये गेछे
आर वादी जना सोल।
आमि माकाल पूजार मत्र भुले
हयेछि एलोमेलो।।

इसी प्रकार एक और गाने मे कृषि कर्म का रूपक लिया गया है

एमन चाषा वुद्धिनाशा तुइ
केन देखलि ना आपनार भुइ
तोर देह जमिर पाका धाने
देख लेगेछे छटा वावुइ।।
वहु कष्टे करलि कृषाणि
ऐइ मानव देह चौघ पोषा लाल जमिखानि
ताते भक्ति फसल ज मेछिल
सव खेये गेल हिंसा चडुइ।।
चेतन वेडा उपडे पडेछे
सव जायगा आलगा पेये
गुरू छागल पाका फसल खेये फेलेछे।
एखन गोंफ फुलिये वसे आछे
देख तोर माया भरा विघ्न पुइ।।

कितना सु दर वर्णन है। बुद्धिहीन कि न ने अ नी देहरूपी जमीन को नहीं दे ।। उसकी देह रूपी जमीन के पके धान मे छ इद्रिय रूपी पक्षी लगे हुए हैं। इस देह मे उत्प न भक्ति रूपी फसल को हिंसा रूपी पक्षी खा गये। चेतना रूपी बेडा ऊपर गिर पडा है। अब चारो ओर खुला पाकर पशु एव बकरिया फसलो को खा ली हैं। अब भी तुम मूछ पहराकर बैठे हो। देखो तुम्हारा मचान विघ्न रूपी पुई से भरा हुआ है। कबीर की सन्तो भाई आई ज्ञान की आधी रे कविता का सादृश्य यहा दिखाई देता है।

एक अन्य गाने मे प्रेम के वृक्ष को काटने वाले का रूपक लिया गया है

अनुरागे गाछ काटलेइ कि
गाछी होउआ याय
ओ ये घोला रसे वीज मरे ना
गाछी राग करे रस टेले फेलाय।।
प्रेमेर गाछी हय ये जन
ओ से मन दडा दिये गाछ करे वधन
तीक्ष्ण दाये
हृदय भेदिये
फटिका रसेर वहाय प्लावन।
ओ से मनेर सुखे रस ज्वालाये
मिछरि वानाय।

रीर रूपी वृक्ष को मन की रस्सी से ाध कर तीक्ष्ण दाव से ृदय भेदकर म टिक रस को बहाता है। मन के सुख मे रस जलाकर मिश्री बनाता है। यह प्रेम की मधुर मिश्री होती है।

बाउलों ने (भाव रस) या प्रेम रस को अति मह वपूर्ण माना है। इसको बिना समझे कोई भी साधना नहीं कर सकता। प्रेम रस के आवर्त्तन से रस के भियान (निर्माण) की बात साधना प्रसग मे कही गयी है। चतुर हलवाई ही गुड या मिस्री बनाने में सफल होता है। बडे ही चमत्कृत दृष्टान्तो से बाउलो ने व्यक्त किया है।

एक गान द्रष्टव्य है

काना चोरे चुरि करे
घर थाकते सिध देय पगारे
शुधु वेगार खेटे मरे
कानार भाग्ये धन मिले ना।।
काना वेडाल लोभी हये
दधि वले कापास खेये
गलाय बेधे छटपट करे
शेषे(ओ) तार प्राण वाचे ना।।
उल्लुकेर हय उर्ध्व नयन
से देखे ना सूर्येर किरण
देख पिपडे पाय चिनिर मर्म
रसिक हले यावे जाना।

यहा अभिव्यजना का कौशल बडे चिर परिचित दृष्टान्तों से प्रस्तुत हुआ है। अधा चोर सेध लगाकर चोरी करना चाहता है किन्तु घर मे सेध न लगाकर चहारदिवारी मे सेध लगाता है। केवल बेगार खटता है धन नहीं मिलता। अधी बिल्ली दही के लोभ मे कपास खा लेती है। गले में कपास के फस जाने से छट पट करके मर जाती है। उ लू की आख ऊपर होती है। किन्तु वह सूर्य की किरण नहीं देख पाता। चींटी ही चीनी का मर्म जानती है। रसिक होने पर ही रस का मर्म जाना जाता है।

[illegible] जी की स्तुस्थिति के बी व्य ह जी चर्चा को ये ग्रामगीतकार विषय बनाते हैं। एक बाउल ने आ मत व ज्ञान त व और [illegible] तीन त वो को स्वर [illegible] व्यजन और युक्ताक्षर के माध्यम से व्यक्त किया है।

आ म त व विचार कर देखि ओरे मन पाखी।
तुमि कि पोडे पण्डित हयेछे तोमार स्वरवर्ण आछे वाकी

आ म त व स्वरवर्ण से तो नय रे सामान्य
पर त व व्यजन वर्ण फलाते गण्य
से ये स्वर भि न नय
स्वर हते हय दुयेते माखामाखि।।
यारे गुरू त व कय से ये युक्ताक्षर हय
स्वरवर्ण ज्ञान विने युक्त केह ना वुझय।

इसी प्रकार गाजा पीने की पद्धति के साथ अपनी साधना का सामजस्य करके एक कवि ने एक सु दर गान की रचना की है

ओ भाई एस प्रेमेर गाजा खावे के।
धरवे नेशा घुचवे वासा लह आश्रेय धर्म कलिके।
रागेर स्वरसान दिये
मधुर रसेर जल मिशाये
गोलाप तक्ति नीचे धुये
काट रिपु के प्रेम काटारिते।।
किन्तु कलकेय दिय ठिकरे
नइले पडे यावे ठिकरे
ठिक छाडा हाये ना भाई
काजेर कथा वलि तोमाके।
सापिखानि करे लये
कलकेर तलाते दिये
प्रेमेर गाजा पिये
निष्ठा दम रेखे गुरूर पदे।।

यहा प्रेम गाजा है चिलम धर्म का आश्रय है प्रेम की आग को रखने से पूर्व मधुर रस के जल से भिगाना होता है रिपु काम है चिलम का ठीकरा आ मबल है दम खींचना श्वास क्रिया यानी दम की क्रिया है।

पहले ही कहा है कि ये बाउल (प्राय जो आधुनिक बाउल हैं) आधुनिक य त्रो आदि का भी रूपक व्यवहार किए हैं। जैसे रेलगाडी रिक्शा कोर्ट कचहरी साइकिल की सवारी आदि। साइकिल की सवारी के आधार पर एक बाउल ने गान की रचना की है

'मन यदि चडवि रे साइकेल
आगे दे कोप्नी एटे अकपट सा चा कर देल।।
फटापिने दिये पा
हपिंग करे एगिये जा

पिनेर परे उठे दाडा
वेद विधि हवि छाडा
सामने कर नजर कडा
अगागोडा
ठिक राखिस ह्याण्डेल।।
सीटेर परे वसे (मन)
व्यालास धरवि क से
कम्भक न्यासे
चास ना आशे पाशे
छय आर दशे मूल मन्त्रे कर प्याडेल।।
कर सुपथे सुलक्ष्य
छाडि कुशाग्र कतर्क
दिवि रान हये अध्यक्ष
भितर वाहिर करे ऐक्य हये सुदक्ष
वाजावि तुइ विवेक बेल।।

बाउलो ने अपने गानों में ब्राह्मण धर्म की देन सामाजिक विषमता भेद भाव छआछूत जातिपाँति का स्पष्ट रूप में विरोध किया है। सामाजिक भेद भाव कर्मकाण्ड मूर्तिपूजा आदि का उन्होने बडे सशक्त ढग से विरोध किया है। जाति भावना का विरोध करते हुए लालन कहते हैं

सब लोके कय लालन कि जात ससारे।
लालन कय जेतेर कि रूप देखलाम ना ए नजरे।।
छ नत दिले हय मुसलमान
नारी लोकेर कि हय विधान ?
वामन चिनि पैतार प्रमाण
वामनी चिनि कि धरे।।
जाओया किवा आसार वेलाय
जेतेर चि ह रय कार रे।।
गर्ते गेले कप जल कय
गगाय गेले गगा जल हय
मूले एक जल से जे भि न नय
भि न जानाय पात्र अनुसारे।

यही बाउल सम्प्रदाय की जाति भेद सम्ब धी धारणा है। इसमें लालन का व्यक्तिगत व्यापार अवश्य ही जडित है। लालन पहले हि दू थे बाद मे आचार व्यवहार की दृष्टि से और

सामाजिक भाव मे मुसलमान हो गये। हो सकता है इसी विषय मे लोग उनके जाति का प्रश्न उठाते या हो सकता है कि व्यग विद्रूप करते । सम्भवत उसके उत्तर में यह गान रचित हुआ था।

भगवान के पास जाति भेद नहीं है। परमात्मा भक्ति द्वारा ही बधा है। भक्ति के क्षेत्र मे जाति पाति का कोई विचार नहीं होता है। । के ही ऽक ने को लिथी सक । है

भक्ति द्वारे वाधा आछेन साइ।
हिन्दू कि यवन वले
तार काछे जातेर विचार नाई।।
भक्त कबीर जेते जोला
प्रेम भक्तिते मातोयाला
धरेछे सेइ व्रजेर काला
दिये सर्वस्वधन ताय।।
रायदास मुचि एइ भवेर परे
पेल रतन भक्तिर जोर
तार स्वर्गे सदाइ घण्टा पडे
साधुर मुखे शुनते पाइ।।
एक चाँदे हय जगत् आल
एक बीजे सब जन्म होल
फकिर लालन कय मिछे कल
केन करिस सदाइ।।

इसी प्रकार एक गाने में है

धर्म प्रभु जगन्नाथ
चाय ना रे से जात अजात
भक्तेर अधीन से।
यत जात विचारी
दुराचारी
याय तारा सव दूर हये।।
जात न गेले पाइने हरि
कि छार जातेर गौरव करि
छसने वलिये।
लालन कय जात हाते पेले

पडालाम आगुन दिये।।

सप्त रथी जिस प्रकार अभिमन्यु को घेर लिए थे इस ससार रूपी युद्ध क्षेत्र मे काम क्रोध दि सप्त थी भी सी कार एक क को घेरे हुए हैं। अभिमन्यु निगम नहीं जानता यहा एकमात्र अनुराग स्वरूप उसका पिता पार्थ उसकी रक्षा कर सकता है। किन्तु पार्थ का आगमन सम्भव नहीं है। एक बाउल कवि ने एक गाने मे मन के इसी भाव को इस रूपक मे प्रकट किया है

ए माया ससारे घिरेछे आमाय सप्तरथीते।
आमि पडेछि एइ माया चक्रे चक्रव्यूहते।।
आमार मन कुमति दुर्योधन तार सगे रथी छयजन।
आमार वधिते आइल प्राण अन्याय युद्धेते।।
काम कर्ण महावीर तार शरे प्राण जरजर
म लाम क्रोध दु शासनेर दुष्ट शासनेते।।
घिरेछे लोभ शकनि मोह कृप मद अश्वत्थामाते
मात्सर्य से द्रोणाचार्य दुर्जय जगते।।
शुनियाछि आगम म त्र नाहि जानि निगम त त्र
ए समयते कोथाय पार्थ अनुराग पिते।।

रक्त मास का देहधारी यह मानुष बाउलो के लिए परम सम्पदा है। इस मनुष्य मे ही उनका मन का मानुष है इसी मनुष्य की देह मे ही ब्रह्माण्ड है वे अनुमान नहीं मानते यही मनुष्य ही उनका 'वर्तमान सत्य है इसी देह की साधना के द्वारा ही वे परमार्थ लाभ करते हैं। यही परम रहस्यमय मानव देह और परम ऐश्वर्यमय मानव जीवन चिरदिन उनकी श्रद्धा और विस्मय का उद्रेक करता है। माधुर्य भजन का मूल उपादान तो यही देह है। नारी पु अपनी रू और स्वरू की सत्ता मे क ही दो विग्रह हैं। लालन ने कहा है

अनन्तरूप सृष्टि करलेन साइ
शुनि मानवेर उत्तम किछइ नाइ
देव देवता गण
करे आराधन
ज म निते मानवे।।
कतो भाग्येर फले ना जानि
मन रे पेयेछ एइ मानव तरणी।।
वेये याओ ‍ वाराय सुधाराय
येन भरा ना डोवे।।
एइ मानुषे हवे माधुर्य भजन

ताइतो मानुष रूप गटले निरजन।
एवार ठकले आर
ना देखि किनारे
अधीन लालन ताइ भावे।।

वर्तमान राढ के अ यतम विख्यात बाउल निताइ क्षेपा मनुष्य के बहुतर एव बहुमुखी लीला देखकर विस्मित हुए थे

आछे मानुष मानुषेते
ये पावे मानुष देखिते चिनिते।
मान हुस होये मानुष लये।
फिरछेन सदाइ तिनि हूसेते।।
मानुषेते मानुष आछे
मानुष नाचाय मानुषइ नाचे
मानुष याय मानुषेर काछे
मानुष हइते।।
नारायण मानुष रूप धरे
नर नारायण होन द्वापरे
युगे युगे अवतार तिनि
हए मानुष रूपेते।।
मानुष डोवे मानुष भासे
मानुष काँदे मानुष हासे
मानुष याय मानुष आसे
केवल कर्म प्रकाशिते।।

नुष्य की र्वव्य पक ८ र्व सि वे पह अभिव्यजित है। इससे बडी सप्रभुता एक देही की क्या हो सकती है कि नारायण को भी कछ करने के लिए मनुष्य होना पडता है। । वी क्रि ो मे ध्ह होक ह वी रि को ही पुष्ट करता है। इसी स दर्भ मे बाउल गोपी नाथ ने दु ख व्यक्त किया है कि मनुष्य मे जो परम मानुष है मूर्ख मनुष्य उसे समझ नहीं पाता।

मानुषे मानुष आछे
देखले खुजे
मानुष होले यावे जाना।
आचल थाकले सोना गोपन हय ना
वाहरे किरण प्रकाशे।।
वासे हय वासलोचन

गाभीते हय गोरोचना
हाये तुइ सोनार वेने
हच्छिस काना
राग कि सोना देख ना कोषे।।
मृगते मृगमद ज म अध
पाय ना देखते अद्यावधि।
एमनि अवोध फणी माथाय मणि
थाकते भेक भोजने आसे।।

लम ते हैं कि री नुष्य त्य ज्ञान के अभाव मे धन जन प्रभाव को ही मह वपूर्ण मानता है वह स्वप्न में राजा होने की तरह है। वास्तविक ज्ञान होने पर ही यह प्रतीत होता है कि यह सब झूठा है भ्रान्ति है। ऐसा ही भाव एक बाउल गान मे व्यजित है।

किछ हय नाइ आर हवे नाइ।
या आछे ताइ या आछे ताइ।।
स्वप्ने हयेछिलाम राजा जगत् जुडे आमार प्रजा
घुम भागिते आर किछ देखते नाहि पाइ।।
वसे छिलाम राज सिहासने सिहमय राज आसने
छिलाम आन द मने मनेर सुखे काल काटाइ
सिह वले मानतो सवे पाश मोडा दिए देखलाम भेवे
सिह ना सिंहेर मामा भोस्वल दासेर भासतुतो भाई।।

बाउल मानते हैं कि मनुष्य की अन्तनिर्हित प्रकृत सत्ता के सम्ब घ मे हमारा कोई ज्ञान नहीं है। नुष्य की अन्तरतम सत्ता एक औ अभि है। वहा भेदाभेद नहीं है। द्वेष हिंसा का स्थान नहीं है। मनुष्य एक प्रकार से अभिनेता मात्र है। नाना साज में अभिनय करता है। इसलिए भेदाभेद ज्ञान एव द्वेष हिंसा व्यर्थ है। यही भाव बाकडा के बाउल गोवि द दास ने एक गाने में सु दर रूप में प्रकाशित किया है

आमार भितर आमि के तार
खवर राखलि ना।
शुधु आमि आमि करे वेडाओ
सेइ आमि वल कोन जना।।
तोदेर मत स्वभाव नय आमार
देख कारेओ तोरा वासिस भालो
कारेओ वा करिस वेजार
आमि सवारे आपनार देखि
कारेओ आमार नाइ घृणा।।

वाजिकर एक जुडेछे वाजि
सेइ कारखानाय नाम लेखाये
नाना साजे साजि
साज खुल ठिकानाय गेले
कार वोल एइ ठिकाना।

इन तमाम त वो के साथ बाउल साहि य अपनी विशिष्टता रखता है। वस्तुत बाउल धर्म ्क न्व मू क धर्म है जिसकी न पद्धति ता त्रिक बौद्ध धर्म के ऊपर प्रतिष्ठित है। उसके ऊपर शिव शक्तिवाद राधाकृष्णवाद वैष्णव सहजिया त व सूफी दर्शन और त व गोडीय वैष्णव धर्म त व आदि का प्रभाव पडा है। इसके बाद कितने ही अपने वैशिष्टय के सम वय मे यह एक विशेष धर्म रूप मे गठित हुआ है। इस वैशिष्टय का प्रभाव उनकी साहित्यिक अभिव्यजना पर भी पडा है। देह के भोग से परम तत्व की प्राप्ति यदि ता त्रिक साधना की देन है तो प्रकृति पुरुष मिलना मक प्रक्रिया शिव शक्तिवाद की देन है। प्रेम क की त्व हजि । वैष्ण ों की दे है तो वि ह क त त ् प्रे की म होशी सूफियो की देन है। ग्रामीण सहजता उनकी लोक गीता मकता के मूल में है। ग्रामीण चिरपरिचित रूपको एव प्रतीको का प्रयोग काव्य को और सहज बना देता है। अपनी एकतानता एकसुरता एकनिष्ठता ही बाउल गानो का आकर्षण है जो एकदम ससारी जन के मन मे कछ क्ष । क लि् भ ि ति पे करता है। ससारी मन भी कछ क्षण के लिए विरक्ति और त मयता की धारा में प्रवाहित हो जाता है। वह बेसुध होकर खो जाता है एकतारे की स्वर उ चता एव बाउल के आरोह में। बाउल गान के प्रति आकर्षण लिखित पदों के पढने से नहीं हुआ है हुआ है गाते हुए तल्लीन स्वरो को सुनने से। उसका अपना राग है। अपना सगीतिक आरोह अवरोह है। प्रोफेसर सोमे द्र वन्द्योपाध्याय ने इस ओर अपनी पुस्तक मे ध्यान दिया है। उसको यहा प्रस्तुत करना समीचीन होगा। अपनी बाउल व्याख्या के अनुकल उन्होने सगीत की विशेषताओ का उल्लेख किया है। उसका विवेचन किए बिना विषय का प्रतिपादन अस्पष्ट होगा। अत उनकी ही भाषा में इस

को भ वि अ नी टिप्प ी के थ प्रस्तु क हू । शिक्षा का अव्यवहित फल आन द होता है। नीति कथा मे भी शिक्षादान का प्रयास होता है किन्तु उस शिक्षा में आन द नहीं होता। शुष्क नीति मात्र बताती है अनुभव नहीं कराती। इसलिए उससे हृदय मे योग स्थापित नहीं होता। कि तु बाउलगान मे जिस शिक्षा की बात कही गयी है वह वही नीति शिक्षा नहीं है। यहा सुरवाहन से सत्य की यात्रा होती है। इसलिए अन्तरलोक मे उसकी गति बाधाहीन होती है। यह योग व्यक्तिगत नहीं सत्यगत होता है। इसके मूल मे स्वर है। उन्होने बाउलगान के प्राण पक्षी को सुर का डिब्बा कहा है। वे कहते हैं कि बाउलगान श्रोता के हृदय में आन द का उद्बोधन करता है उसका प्रधान कारण इसका सुर है। बाउल कवि ने कहा है

आगरा पाखीर जात
आमरा हेटे चलार भाओ जानि ने
आमादेर उडे चलाइ धात।

(हम पक्षी जात हैं। हम पैदल चलना नहीं जानते। हमारा उडना ही स्वभाव है।)

पक्षी जिस प्रकार पख फैलाकर उडता है बाउल भी उसी प्रकार सुर का पख फैलाकर उडता है। गाने मे सुर का पक्ष विस्तार होता है सुरमय वाणी ही गान या सगीत है। इसीलिए बाउल कहते हैं गान ही उनकी भाषा है। बाउल गुणमय मुक्त पुरुष हैं। गाने मे जीवन मुक्ति की भावना का प्रकाश होता है। प्रकाश का यही तो माध्यम है। गाने की भाषा छोड़कर गति कहाँ है ? गान की तान सुर का डैना फैलाकर हृदय के आकाश में उड़ती चलती है। यह सुर बाहर से आरोपित गेयसुर नहीं है परन्तु वाणी के भीतर से उत्सारित सूक्ष्मतर गभीरतर सुर है। गाने की शुष्क वाणी रूप का निजस्व सुर है।

गेयसुर के स दर्भ मे विवेचन को आगे बढाते हुए प्रोफेसर सोमे द्र नाथ व द्योपध्याय कहते हैं। गेयसुर आन्तरिक सुर का अनुयायी होता है। फिर भी इसका मूल्य बहुत ज्यादा नहीं है। क्योंकि इसका परिपूर्ण सर्वजनीन नहीं है। व्यक्ति विशेष के निकट यह रूप विशेष प्राप्त होता है। इसलिए व्यक्ति के लिए इसका मूल्य होने पर भी वस्तुत इसका मूल्य बहुत ज्यादा नहीं है क्योंकि प्र भेद मे ोयसुर की विभि ता होती है। तब यह बात भी सत्य है कि लोक सगीत का सुर नाना कठ मे नाना रूप मे रूपान्तरित होने पर भी उसकी एकता या विशिष्टता एकबारगी क्षुण्ण नहीं होती। बाउल के गेयसुर मे एक सहज विशिष्टता है। उसके बीच गान का वैचित्र्य नहीं अतिशयता भी नहीं है। भीड नहीं है मात्र छोटे छोटे सुर का अलकार है। स्वर की एकतान कटी कटी नहीं या कदती नहीं चलती। कोई अनावश्यक बाहु य इसका रस भग्न नहीं करता। मात्र आन्तर स्वर की लय के अनुसार एकतार के साहचर्य में सहज आ दोलन में गायक के कण्ठ मे स्वर आ दोलित होता है। वह सुर के दर्द को प्राण का स्पर्श कराता है। उदार आकाश के नीचे उन्युक्त क्षेत्र मे उदात्त क ठ की उदासी बाउलसुर श्रोता मात्र के कान के भीतर से हृदय में प्रवेश करके मन को उदास करती है। इस गान में वेदना है किन्तु उस वेदना के भीतर आन द है। बाउल के सुर मे एक विशिष्ट भगी और विशिष्ट स्थान भी है। इसके सरल अनाडम्बर सहजसुर ने रवी द्रनाथ को भी आकृष्ट किया है एव वे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सचेतन एव असचेतन रूप में इस गाने का सुर अपनी रचना के क्षेत्र में ग्रहण किये हैं।

गाने के सुर के साथ आन्तर सुर की चर्चा आती है। गान के शुद्धवाणी रूप का जो निजी सुर है उसी सुरमयता का दूसरा नाम छद है। छद विश्ववाणी के रस के स्पर्शामृत मे वाच्य को अभिसिचित करता है। इसकी हिल्लोल से प्राण हिल्लोलित होता है। बाउल पदावली के का य स्तर मे उत्तरण के मूल मे प्रधानतम उपादान के रूप में अभिव्यक्ति

का यही छन्दित रूप है। गेय सुर से विरहित बाउल पदावली के आस्वादन के समय वाणी में स्थित छन्द ही पाठक को नन्दित करता है। नटराज का यही नृत्य छद सुर नाम से अभिहित होता है।

सुर के बिना काव्य प्राणहीन होता है। सुर को अलग करके वाणी का विचार प्राण को अलग करके देह को लेकर खींचा तानी करने की तरह है। इसीलिए रवीन्द्रनाथ ने कहा है सु ही ।। शिख ही प्रदी की ह है सगीत को अलग करके सगीत के वाहनों को रखने पर कैसा होता है जे । ति को अ करके के चूहे को कडे रहना।। यह बात आरोपित गेय सुर के सम्बन्ध मे नहीं कही गयी है।

मनुष्य के मन के अज्ञात होने पर भी यह सुर उसके प्राण का अतिपरिचित है। इसीलिए व्यक्ति विशेष में ति में इ क सह सचर।हो है। सर्वजन के हृदय मे सचरणशील सुरमय काव्य ही यदि रोमान्टिकता का अन्यतम लक्षण है तो यह बात बोलने में भी बाधा नहीं कि बाउल गान और बाउल काव्य रोमाटिक है। कर्मभाव या भोग की कथा को जागतिक कर्म की धारा और धारण को उपजीव्य न बनाने पर भी आत्मयुक्त होकर ससार के भाव का निरसन उपाश्रय होने पर भी बाउल काव्य रोमाटिक है।

सुरमयता ही बाउल गान का काव्यत्व है। इसीलिए अतात्विक मन में भी बाउल का आदर कम नहीं है। बाउल गान मे तत्व का निर्देश होने पर भी सहज सुर मे कथित होने के लिए त वरूप से क व्यत्व ही र्व को ग्रह ी होता है। बाउलगान में सर्वांगीण समादर दिखाई देता है। यही उसकी सार्वजनीनता होती है। तात्विक उत्कर्ष के बीच सार्वजनीनता नहीं है। तत्व के प्रकाश में इस काव्य में सर्वजन के समादर लाभ की चेष्टा भी नहीं है। सहजभाव से सुर की प्रधानता में आज्ञा। वि य के नि र मे लकर विषय का प्रकाश करना बाउल काव्य का वैशिष्टय है और सुर के द्वारा सर्वजन गृहीत होता है। इसीसे वह काव्य है। काव्याभिव्यक्ति में उपमा अलकार दिखाई देता है। बाउल गान में भी स्थान स्था अ दि अलकार का प्रयो। है। किन्तु बाउलो का उपमा आदि प्रयोग स्वाभाविक एव छन्दित रूप मे है।

उपमा आदि अ क रू की परि टी में ही सु दर के ह शान्त स्वरूप का प्रकाश नहीं होता। शुद्ध रूप परिपाटी में आवेश तीव्र चाचल्य की सृष्टि नहीं होती शान्त सहज आनन्द का प्रकाश नहीं होता। इसलिए रूप की परिपाटी में ही काव्यत्व नहीं होता। आवेशहीन सहजानन्द का प्रकाश रूप परिपाटी के मध्य से ही भव हीं होता। काव्य में उपमा आदि अलकार की साजसज्जा स्थान पाती है स्थान जोडती नहीं है। प्रकाश के क्षेत्र मे वह आभरण पृथक यत्न से चेष्टित भाव से नहीं आता काव्य की सहज धारा और सहज भाव मे वह आता है। इसलिए ो क नैपु य विचार काव्य विचार का अग नहीं है यह बात कहना ही पर्याप्त है। मात्र सज्जा की परिपाटी मे आवेग चचल

ला को सष्टि होती है। रूप जगत मे रूपासक्त व्यक्ति के अन्तर में उस आवेग चचलता का सचार होता है चचलता ही उसकी परिणति है। बाउल काव्य उस श्रेणी में नहीं है। सुन्दर उपमा आदि का प्रयोग होने पर भी यह काव्य उस सचेतन प्रयास से प्रसूत नहीं है। इसलिए उपमा अलकार के चमत्कारत्व का विश्लेषण करके बाउल कवि के कृतित्व और बाउल काव्य के उत्कर्ष की प्रतिष्ठा का प्रयास अर्थहीन है।

पाठक या श्रोता की प्रतिक्रिया की दृष्टि से बाउल काव्य के आलोचना प्रसग मे प्रोफेसर वन्द्योपाध्याय चर्चा करते हैं। काव्य की जो सुरम्यता होती है श्रोता के चित्त मे उसकी प्रतिक्रिया ही विचित्र है। यह सुर मु के चित्त को ज । है निद्रा तोडता है प्राण के आनन्द से पूर्ण करता है। विवश मन मे बुद्धि अतीत विषय के उत्स का आभास देकर आनन्द लाता है। सुर के अग्नि चकित स्पर्श से मुग्ध अन्तर मे अग्नि प्रज्वलित करता है। वह काला कोयला क्षणभर के लिए अ। के प्रज्वलि रू को धार। करता है। अपने घर के काज खोने वाले गाने का सुर ससार के ऊपर के परिचित आवरण को पल भ मे छि न क के अ चि का सकेत दे है। वह अजाना एक मुहुर्त के लिए आभासित होता है। वस्तु जगत के हिसाब निबद्ध मन में बेहिसाबी भाव चमक जाता है। निम्न लिखित बाउल गान मे जब सुनते हैं

आमि कोथाय पावो तारे
आमार मनेर मानुष जेबे
हाराये सेई मानुषे तार उद्येशे
देश विदेश वेड़ाइ घुरे
(मैं कहा पाऊगा उसे
मेरे मन का मानुष है जो
खो दिया है उस मानुष को उसी के लिए
देश विदेश घूमता फिरता हू)

किवा सहज प्रेम घटल ना हाय
सेइ मानुषेते
(सहज प्रेम हुआ नहीं हाय।
उस मानुष मे)

तब ससार विमुग्ध मे ॥ त वैरा य का दय होता है। प्रतिदिन के परिचित निर्भीक एक पल के लिए हटकर असल मनुष्य को पुकारता है।

सुर की तुलनात्मक समीक्षा के क्रम मे प्रोफेसर वन्द्योपाध्याय कहते हैं कि असल मे यह सुर गायक मे भी नहीं है ठीक वाणी मे भी नहीं है अन्तर्निहित परपुरुष के आकाश मे उस सुर का प्रकाश होता है। यह सुर के सम्बन्ध मे शिखर लोक की बात हुई। गाने

की तान मे प्राण के आन द की पूर्णता मि ी है। श्रोता का हृदय शान्त ोक मे उतर जाता है। गान सम पर आकर पहुचता है और प्राण प्रशान्ति से पूर्ण होता है शान्त लय मे आ दोलित हो उठता है।

उडे याय विमानेर याने
शीतल वातास लागे गया। बाउल
(उडा जाता है विमान के यान पर
शीतल बतास लगे देह मे।)

बाउल गान सुनने मे आ म विस्मृत कहता है हू, बोलता है बचा । इस गान आलोक की शिखा स्वर्ग का देवदूत है। इ सु के क ही की अनित्य वि क री की अप्रिय कथा ही प्रिय रूप मे प्रतीयमान होती है अन्तर मे आन द का सचार करता है। रवी द्रनाथ की भाषा मे कहे

ससार मे कछ स्थायी नहीं होता सकल अस्थायी है यह बात ससारी के लिए नयी नहीं प्रिय भी नहीं यह एक अटल कठिन सत्य है। किन्तु तब भी वशी के मुख से सुनने पर इतना अच्छा क्यो लगता है ? का शी के स पि सुक ो सत्य को स पिक्ष सुमधुर करके बोलती है। मन मे मृत्यु रागिनी की तरह सकरुण और सगिनी की तरह सु दर होती है। जगत ।र के व ो ुस्त तद पत्थर से हु है इस ने क सुर से ्क से धुकर दे ।है। एक जन के हृदय कहर से उच्छवसित हो जाने पर जो वेदना चीत्कार कर उठती है क्र दन करके फट पडती है वशी उसे ही स्त त्क मु होक ध्वनि क ती है। इस प्रकार अगाध करुणापूर्ण और अनन्त सान्त्वना मय रागिनी की सृष्टि करती है। पचभूत बलाका की एक विस्मयकर पक्ति से यह सत्य भावघन रसनिविड आश्चर्यमूर्ति परिग्रह करती है।

पर्वत चाहिल हते वैशाखेर निरूद्देश मेघ

एकान्त जड व का जो विराट स्तूप चिरस्थ वीरत्व की अचल मूर्ति लेकर हम लोगो के सामने अटल हो गया है सुरस्पर्श होने पर चेतना के परिवर्तन में क्या उसका आश्चर्य रूपान्तर होता है ? क्षण मे मालूम होता है कि गहरायी मे धसी उसी स्थविर मूर्ति की अचलता के भान के अलावा और कछ नहीं है। असल मे यह आपात जगतता एक मस्त फाकी है। असल मे विश्व की छ दित गति उसमे भी है। हम अपनी अस्वस्थ दृष्टि से उसे देख नहीं पाते। इसलिए चेतना का जागरण मृत्यु से ही देखा जाता है। यह पर्वत वैशाखी आकाश में मेघ की तरह हलका होकर भावहीन लघुगति से चलता है।

जहा प्राण नहीं वहा जड व है। जहा सुर नहीं वहा चिन्ता के स्तूप भावना का भार है। सुर ही प्राण है। सुर मे जब प्राण को जगाते है तब गान भी अन्तर मे जगता है और साथ दु ख का भय का मुखौटा खिसक जाता है। उसके विकृत विभीषिकामय निपुण अभिनय

पदा पडता है।

न्र । रागिनी मे बाउल के साथ बाउल के श्रोता को जीवन मुक्त के साथ ससारी को आत्मा की आत्मीयता के सूत्र मे बाधा देता है। वह गान एक गायक का नहीं है दो जन को गाना होगा बाउल जब हाथ मैं एकतारा लेकर उदात्त कठ मे गान पकडता है तब ज्ञान के चकित जागरण जनित आनन्द मे श्रोता भी उसके साथ मन का कठ मिलाता है। यही बाउल गान की काव्यात्मक सार्थकता है। इस प्रकार युगल मिलन न होने पर बाउल को कवि अथवा बाउल गान को काव्य नाम से अभिहित करना सभव नहीं है।

(प्रो सोमेन्द्र वन्द्योपाध्याय पृ ५ ६४)

इन विश्लेषणो के आधार पर बाउल काव्य की लौकिकता अलौकिकता का चित्रण किया गया। काव्य से आलोचना करते हुए उपेन्द्रनाथ भटटाचार्य की विचारधारा को ग्रहण किया । ो प्रोफेस सोमे द्र य वन्धो ध्या के अति सूक्ष्मीकृत विश्लेषण को भी ग्रहण किया गया। काव्यतत्वो के परिचय के साथ साथ उसकी गेयता आदि का भी जो उसका अपना वैशिष्टय है विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उसमें सामाजिक विषमता जाति पाँति भेदभाव आश्रित वैदिक परम्परा का भी विरोध किया गया है। तान्त्रिक साधना को आधार मानने के कारण साधना मूलत देह केन्द्रित ही रही है। इस देह की सत्ता के साथ मानवीय मूल्यो को प्रतिपादित करने का तत्कालीन प्रयास और क्या हो सकता है ? कभी कभी जातीय समस्याओं पर भी दृष्टि डाली गयी है। जातीय भाषा एव विदेशी भाषा के प्रति देशी लोगो की आसक्ति जैसे विषयो पर भी बाउलो मे काव्य दृष्टान्त पाये जाते हैं दुधु शाह जब घोषणा करते हैं कि ये खोजे मानुषे खोदा सेइ तो बाउल। वस्तुते ईश्वर खुजे पाय तार उल। (देखिए भाग २ पद १५७)। मानव जीवन की मूल्यात्मक अभिव्यजना इस पद में हुई है। स्तु दी सत्ता का इससे दाहर । क्या हो क । है ? यद्यपि खोज ईश्वर की है किन्तु ह ८क र ी ई की नोज नहीं है बल्कि मानव के ईश्वरीय अद्वैत की पहचान है। ईश्वर को देश काल की सीमा से हटाकर दुधु शाह उनकी मानवीय सत्ता को स्वीकार करते हैं। वह मन का मानुष है। उसकी अभिव्यक्ति और बोध मन की भाषा मे होता है। यहा इसी प्रसग मे कवि कह बैठता है कि भले ही भाषा का सम्बन्ध किसी ईश्वरीय सत्ता के साथ हो किन्तु उसकी अभिव्यक्ति भाव रस मे है। न कि धर्म ग्रन्थ की भाषा में। इसी चर्चा क्रम मे कवि ने अपनी भाषा के प्रयोग की ओर भी दृष्टि आकर्षित की है। द्वितीय भाग मे सग्रहीत पद १५६ को उदाहरण रूप मे लिया जा सकता है

महम्मदेर जन्म यदि हत ए देशे।
बेहेश्तेर कोन भाषा हतो वलतो एसे।।
मातृभाषा त्यजे सवाइ
अरवी भाषा शिखले रे भाई

तातें भाई फ्यदा तो नाई
अवशेषे।।

हिबुते इजिल ताओरात
आवेस्ता भाषार खोदार मत
सस्कृत वेदान्तेर वयेत्
लेखा आछे सविशेषे।।
केन कपमण्डुक हओ रे भाइ
हिसेव करे वोझ सवाइ
खोदार स वार कोथाओ खोज नाइ
अधीन दुघु भावे रसे।।

कितनी सफाई से बाउल दुघु ने परायी भाषा में उलझने को कप मण्डूकता माना है। अपनी भाषा छोडकर परायी भाषा सीखना लाभदायक नहीं है। ग्रामीण सहजता का कवि विदेशी मन और विदेशी भाषा की बात नहीं कह सकता। वह तो जनमन का प्रतिनिधि है। जनमन को पढेगा जनमन की भाषा मे बोलेगा। इन विशेषताओं के क्रम में ही बाउल साहित्य का अपना वैशिष्टय है। अगले अध्याय में इसके कछ मूल्यात्मक पहलू पर ध्यान दिया जाएगा।



पड़ा पडता है।

ऱ॥ रागिनी मे बाउल के साथ बाउल के श्रोता को जीवन मुक्त के साथ ससारी को आत्मा की आत्मीयता के सूत्र मे बॉधा देता है। वह गान एक गायक का नहीं है दो जन को गाना होगा-बाउल जब हाथ मैं एकतारा लेकर उदात्त कठ मे गान पकडता है तब ज्ञान के चकित जागरण जनित आनन्द मे श्रोता भी उसके साथ मन का कठ मिलाता है। यही बाउल गान की काव्यात्मक सार्थकता है। इस प्रकार युगल-मिलन न होने पर बाउल को कवि अथवा बाउल गान को काव्य नाम से अभिहित करना सभव नहीं है।

(प्रो सोमेन्द्र वन्द्योपाध्याय पृ० ५७-६४)

इन विश्लेषणो के आधार पर बाउल काव्य की लौकिकता-अलौकिकता का चित्रण किया गया। काव्य से आलोचना करते हुए उपेन्द्रनाथ भट्‌टाचार्य की विचारधारा को ग्रहण किया गया तो प्रोफेसर सोमेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय के अति सूक्ष्मीकृत विश्लेषण को भी ग्रहण किया गया। काव्यतत्वो के परिचय के साथ-साथ उसकी गेयता आदि का भी-जो उसका अपना वैशिष्ट्‌य है-विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उसमे सामाजिक विषमता जाति-पॉति भेदभाव आश्रित वैदिक परम्परा का भी विरोध किया गया है। तान्त्रिक साधना को आधार मानने के कारण साधना मूलत देह केन्द्रित ही रही है। इस देह की सत्ता के साथ मानवीय मूल्यो को प्रतिपादित करने का तत्कालीन प्रयास और क्या हो सकता है ? कभी-कभी जातीय समस्याओ पर भी दृष्टि डाली गयी है। जातीय भाषा एव विदेशी भाषा के प्रति देशी लोगो की आसक्ति जैसे विषयो पर भी बाउलो मे काव्य-दृष्टान्त पाये जाते हैं दुघु शाह जब घोषणा करते हैं कि "ये खोजे मानुषे खोदा सेइ तो बाउल। वस्तुते ईश्वर खुंजे पाय तार उल।" (देखिए भाग २ पद १५७)। मानव जीवन की मूल्यात्मक अभिव्यजना इस पद मे हुई है। वस्तुवादी सत्ता का इससे बडा उदाहरण क्या हो सकता है ? यद्यपि खोज ईश्वर की है किन्तु यह एकबारगी ईश्वर की खोज नहीं है बल्कि मानव के ईश्वरीय अद्वैत की पहचान है। ईश्वर को देश-काल की सीमा से हटाकर दुघु शाह उनकी मानवीय सत्ता को स्वीकार करते हैं। वह मन का मानुष हे। उसकी अभिव्यक्ति और बोध मन की भाषा मे होता है। यहॉ इसी प्रसग मे कवि कह बेठता है कि भले ही भाषा का सम्बन्ध किसी ईश्वरीय सत्ता के साथ हो किन्तु उसकी अभिव्यक्ति भाव रस मे है। न कि धर्म ग्रन्थ की भाषा मे। इसी चर्चा-क्रम मे कवि ने अपनी भाषा के प्रयोग की ओर भी दृष्टि आकर्षित की है। द्वितीय भाग मे सग्रहीत पद-१५६ को उदाहरण रूप मे लिया जा सकता है

"महम्मदेर जन्म यदि हत ए देशे।
बेहेश्तेर कोन भाषा हतो वलतो एसे।।
मातृभाषा त्यजे सवाइ
अरवी भाषा शिखले रे भाई

ताते भाई फयदा तो नाइ
अवशेषे।।

हिबुते इजिल ताओरात
आवेस्ता भाषार "खोदार" मत
सस्कृत वेदान्तेर वयेत्
लेखा आछे सविशेषे।।
केन कूपमण्डुक हओ रे भाइ
हिसेव करे वोझ सवाइ
खोदार सत्वार कोथाओ खोज नाइ
अधीन दुघु भावे रसे।।

कितनी सफाई से बाउल दुघु ने परायी भाषा मे उलझने को कूप मण्डूकता माना है। अपनी भाषा छोडकर परायी भाषा सीखना लाभदायक नहीं है। ग्रामीण सहजता का कवि विदेशी मन और विदेशी भाषा की बात नहीं कह सकता। वह तो जनमन का प्रतिनिधि है। जनमन को पढेगा-जनमन की भाषा मे बोलेगा। इन विशेषताओ के क्रम मे ही बाउल साहित्य का अपना वैशिष्ट्य है। अगले अध्याय मे इसके कुछ मूल्यात्मक पहलू पर ध्यान दिया जाएगा।



||४||

बाउल साहित्य की प्रासगिकता

●

युग परिवर्तन के साथ युगीन सन्दर्भ और अपेक्षाओ मे परिवर्तन होता है। युगीन मूल्यो मे बदलाव की आवश्यकता होती है और सबसे बडी बात है उस बदलाव की भूमिका की आवश्यकता को समझना। इसी समझ के साथ युगीन जीवन की अभिव्यक्ति मे भी परिवर्तन आता है। अतीत से जुडते हुए वर्तमान के उत्कर्ष ओर भविष्य की सम्भावनाओ को प्रक्षेपित करने वाली साहित्यिक रचना मे अतर आता है। युग सन्दर्भ युगीन चेतना एव युगीन जीवन दर्शन के क्रम मे साहित्य मे परिवर्तन नवीनता के क्रम मे आता है। तभी कोई साहित्य अपनी अस्मिता बना पाता है। अतीत की श्रृखता मे उसका होना इसी बात पर निर्भर करता है किसी साहित्य की नयी परम्परा सृष्टि उसकी गुणवत्ता है तो मात्र परम्परा का निर्वाह उसका दोष है याकि उसके अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह है। किसी भी युग का रचनाकार अपने युग के लिए नहीं लिखता। एक सच्ची और ईमानदार सवेदना वाला कवि ऐसी रचना प्रस्तुत करता है जो भविष्य मे भी जीवन सत्य बनकर आती है। यहीं उसकी भविष्य द्रष्टा दृष्टि प्रमाणित होती है। हर रचनाकार की सभी बाते तो नहीं किन्तु कुछ बाते अवश्य ही युग सत्य के साथ जुडी होती है और हर युग मे रचनात्मक आयाम खोलती है। रचनाकार की यही भावी सम्भावना जिस रूप मे युग सापेक्ष रह जाती हे उसी क्रम मे वह सार्थक भूमिका अपनाती हे और युग-युग तक युगीन जीवन तथा साहित्यिक रचना के लिए दृष्टि प्रदान करती है। यह तभी होता है जब रचनाकार अपने युगीन जीवन के प्रति ईमानदार सवेदनाओ से जुडता है और सच्चे अर्थो मे मानव जीवन का कवि होता है तभी वह युग-युग तक मानवजाति के लिए अनजाने मे सन्देश देता रहता है। केवल उदात्त एव अलौकिक बात कहने वाला कवि ही महान नही हो जाता। इसके विपरीत जनजीवन का कवि ही सच्चा कवि होता है और हर युग मे अपनी प्रासगिकता को लेकर चलता रहता है। वह जहाँ तक युग सन्दर्भ मे अर्थवान बनता है वहीं तक युग-जीवन के साथ प्रासगिक भी होता है। बाउल काव्य की परम्परा अपने अतीत की धारा से बहुत कुछ ग्रहण करती है प्रभावित होती है किन्तु वर्तमान के सन्दर्भ-परिवर्तन

की प्रक्रिया से गुजरते हुए उसकी समकालीन अवस्था एक प्रकार की मौलिकता का परिचायक है। सारे काव्य की सहजता सार्वजनीनता एव सास्कृतिक मूल्यात्मक अभिव्यजना ही बाउल काव्य को प्रसगिक बनाती है। किसी भी साहित्य के प्रासगिक होने का पक्ष यही है कि वह अपने सामाजिक एव जातीय जीवन-अभिव्यक्ति के सन्दर्भ मे साहित्यिक श्रृखला मे कहाँ तक साहित्यिक सम्पदा को आगे बढाता है ? मूल्यात्मक बनाता है ? भावी युगीन जीवन की वस्तुस्थितियो के सन्दर्भ मे मानव जीवन को कितना गतिशील करता है ? जीवन को बन्धनो से निकालकर प्रगामी बनाने की जितनी शक्ति किसी साहित्य मे होगी उतना ही वह साहित्य अर्थवान भी होगा। इसी सन्दर्भ मे बाउल-काव्य की चर्चा की जानी चाहिए। अभी तक उसका विवरणतमक परिचय दिया गया।

बाउल साहित्य बगाल का साहित्य है अत बगाली साहित्य के सन्दर्भ मे बाउल काव्य की आलोचना आवश्यक है।

पिछले विवेचन से ज्ञात हुआ कि बाउल-धर्म एक समन्वय मूलक धर्म है। इसकी मूल साधना-पद्धति तान्त्रिक बौद्ध धर्म के ऊपर प्रतिष्ठित है। उसके ऊपर शिवशक्तिवाद राधाकृष्णवाद वैष्णव-सहजियायत्व, सूफी दर्शन और तत्व गोडीय वैष्णव धर्म-तत्व आदि का प्रभाव पडा है एव इसके साथ कितने ही निजस्व वैशिष्ट्य के समन्वय मे यह एक विशेष धर्म-रूप मे गठित हुआ है। इसका प्रभाव उसके साहित्य पर भी पडा। प्रथम अध्याय मे इस धर्म और काव्य के ऐतिहासिक प्रभाव को निर्दिष्ट किया जा चुका है। समय के सापेक्ष बगाल के धर्म मे परिवर्तन आया और साहित्य भी परिवर्तित हुआ। इसी प्रकरण मे देखा गया है कि शिव-शक्तिवाद प्रज्ञा उपाय एव राधा-कृष्ण वाद का अन्तर्सक्रमण हुआ और साहित्य की दिशा तात्रिकता की ओर मुडी। मानव देह की अस्मिता की स्वीकृति के द्वारा मानवीय मूल्यो का दार्शनिक एव साहित्यिक प्रयास आरम्भ हुआ। प्रेम की सूक्ष्मता के सन्दर्भ मे दैहिक आकर्षण एव दैहिक मिलन की सत्ता स्वीकार की गयी। यह अलग बात है कि पाल युग में प्रभावी प्रज्ञा-उपायवाद ने सेन युग मे प्रकृति-पुरुष वाद की भूमिका मे राधा-कृष्ण वाद का स्वरूप ग्रहण किया। पूर्व से प्रकृति मिलन एव योग-साधना धर्म तथा दर्शन का आधार बन रही थी। वैष्णव काल मे भी उसकी रक्षा हुई। बौद्ध एव हिन्दू धर्म मे समन्वय स्थापना के साथ साहित्य मे भी समायोचित परिवर्तन हुए। श्रीकृष्ण कीर्तन के योग-क्रिया के वर्णनात्मक पद इसको प्रमाणित करते हैं। यही वैष्णव-सहज-साधना चैतन्यदेव के आविर्भाव के बाद नूतन शक्ति एव वैशिष्ट्य लेकर अविर्भूत हुई थी किन्तु इसका बीज पूर्व ही अकुरित एव अनेकश वर्धित हुआ था। प्रभाव परिवर्तन और समन्वय की प्रक्रिया धर्म और साहित्य दोनो क्षेत्रो मे चल रही थी।

भारत मे मुसलमान-शासन के स्थापित होते ही सूफी-धर्म और साहित्य का प्रवेश भारत मे हुआ। यह मतवाद भी आनुष्ठानिक इस्लाम से भिन्न था। इसका धर्म

आत्मोपलब्धि मूलक था। मनुष्य के हृदय स्थित आत्मा को प्रेम पथ से उपलब्ध करके अपनी दिव्य-सत्ता या परिपूर्ण सत्ता की अनुभूति ही इस धर्म साधना का लक्ष्य था। इस धर्म-साधना के अनुयायी उदारवादी थे। वाह्याडम्बरो से परे मानवीय अनुभूतिक सत्ता मे ये उदारवादी सूफी परम्परा मे परिवर्तनकामी थे। इनमे भी मनुष्य मनुष्य मे, जाति-जाति मे धर्म-धर्म मे कोई प्रभेद मानने का सस्कार नहीं था। इन्होने उदार एव सार्वजनीन धर्म का प्रचार किया। इनके आने पर सहजिया मत के मुसलमानो को एक बडा आश्रय मिला। दोनो मे काफी सादृश्य था। मनुष्य की देह मे परम तत्व का वास धर्म के अनुष्ठान का त्याग साधना की अन्तर्मुखीनता आदि मे सादृश्य था। इन मुसलमान सहजियो ने सूफी धर्म साधना को आत्मसात् किया। यही प्रभाव समय सापेक्ष विकसित मुसलमान बाउलो के काव्य मे भी प्रकट हुआ है।

चैतन्य देव के आविर्भाव के समय वैष्णव सहजिया-धर्म को एक निर्दिष्ट आधार-प्रदान किया गया। बाद मे सूफी धर्म के वाह्यवेश धारी मुसलमान-सहजिया फकीर सम्प्रदाय भी वैष्णव सहजियो के द्वारा विशेष रूप मे प्रभावित हुए।

१६२५ ई तक बाउल नामक धर्म-सम्प्रदाय की कल्पना की जा सकती है जिनके धर्म का तत्व एव दर्शन राधा-कृष्ण का या प्रकृति पुरुष का युगल तत्व, उपनिषद, एव सूफी धर्म के परमात्मवाद एव व्यक्ति गत भगवान का मिश्रण था-साधना अश प्रधानत बौद्ध सहजिया-मत या रूपान्तरित वैष्णव सहजिया मत का था। अपने कुछ वैशिष्ट्य धर्म के साथ बादउ-धर्म और काव्य ने एक नवीनता ग्रहण की। उस नवीनता मे ही मानव जीवन के युगीन सन्दर्भ मे मूल्यात्मक प्रासगिकता का निदर्शन होता है।

अब उस नवीन मूल्यात्मक परिवर्तन को विश्लेषित करने से पूर्व बाउलो से पूर्व बगाल के साहित्य पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा। वैष्णव सहजिया साहित्य का महत्व और परवर्ती बगला साहित्य पर प्रभाव निर्विवाद है। चण्डीदास एक प्रसिद्ध कवि के रूप मे माने जाते हैं। चण्डीदास को १४०० से १६०० के बीच का माना जाता है। कुछ लोग चैतन्य परवर्ती भी मानते हैं। डॉ सुकुमार सेन मानते है कि प्रचलित चण्डीदास की पदावली मे राधाकृष्ण की जो प्रेमलीला देखते हैं, वह प्राकृत प्रेमलीला से ऊपर उठकर एक अपार्थिव आलोक मे उज्जवल होकर शोभा पाती है। राधा की जो मूर्ति चण्डीदास ने अकित की है, वह एक आध्यात्मिक दीप्ति से गौरवान्वित है। राधा-भाव की यह अनवद्य परिणति चैतन्य परवर्ती युग मे सम्भव है। चैतन्य देव का समग्र जीवन ही इसी राधा-प्रेम की वास्तविक अभिव्यक्ति-राधा भाव का जीवन्त भाष्य है। कृष्ण प्रेम मे राधा की जो विह्वलता जो तन्मयता जो उन्मादना इन्द्रियो से ऊपर आकर जो अलौकिक चेतना हम लोग पदावली मे देखते हैं चैतन्य देव के दैनिक जीवन मे उसका ही दृष्टान्त, उनके ही जीवनी ग्रन्थ मे पाया जाता है। चण्डीदास की पदावली मे हमलोग साहित्य-रस के आस्वादन के साथ-साथ

एक प्रकार के आध्यात्म रस का आस्वादन करते हैं। राधा-कृष्ण प्रेमलीला के इस आध्यात्यिक स्तर की उन्नति चैतन्य परवर्ती समय मे ही सभव है।"

(उ० पा० भ० वही पृ० १५)

"भागवत पुराण' मे श्रीकृष्ण की ब्रज लीला का विस्तृत वर्णन है। वात्सल्य सख्य आदि के साथ गोपियो के साथ श्रीकृष्ण की माधुर्य लीला का भी वर्णन है। माधुर्य लीला का चरम प्रकाश रासलीला मे है। अभी तक राधा सकेत रूप मे ही आयी हैं। हित हरिवश, विष्णु पुराण आदि मे भी राधा का उल्लेख नहीं है, वहॉ एक पुण्यवती गोपी का उल्लेख है। पद्मपुराण मे राधा का नामोल्लेख है। मत्स्य पुराण मे भी केवल नामोल्लेख मात्र है। बराह पुराण "वायुपुराण आदि मे राधा का उल्लेख पाया जाता है। पुराण एव तन्त्रादि के धार्मिक ग्रन्थो मे राधा-कृष्ण की एकान्त माधुर्यमय युगल लीला का निदर्शन नहीं है। राधा-कृष्ण की यह मधुर युगल-लीला का बहुत निदर्शन प्राचीन भारतीय काव्य-साहित्य एव अलकार शास्त्र के ग्रन्थो मे पाया जाता है।

हाल की 'गाहा सत्तसर्ग" मे राधा के साथ कृष्ण की सुस्पष्ट प्रेम लीला की एक कविता सकलित है। भट्ट नारायण के "वेणी सहार" नाटक के नान्दी श्लोक मे रास के समय राधा-कृष्ण का प्रेम मूलक एक वर्णन है। ध्वन्यालोक (नवम शताब्दी) एव कवीन्द्र वचन समुच्चय नामक ग्रन्थो मे राधाकृष्ण-लीला विषयक कई सुन्दर कविताऍ उद्धृत हैं।

द्वादश शताब्दी मे कृष्ण और राधिका को नायक-नायिका रूप मे अवलम्बन करके कवि जयदेव ने गीतगोविन्द नामक एक ग्रन्थ लिखा। राधा कृष्ण के प्रेम साहित्य मे यह प्राक्-चैतन्य युग का सर्वश्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ माना जाता है।

राधा-कृष्ण-प्रेम लीला कवियो के लिए विषयवस्तु थी। काव्यानुभूति ही उन रचनाओ का मुख्य उत्स था धर्मानुभूति छठीं से बारहवीं शती तक गौण ही थी। पूरी कविता साधारण कविता की धारा का ही अनुसरण करती है। जो भी हो राधा-कृष्ण लीला को जन-प्रियता प्राप्त हो चुकी थी। धीरे-धीरे चैतन्यदेव के समय राधा का आध्यात्मिक उत्कर्ष हुआ। राधा-कृष्ण की प्रेम लीला मे गौडीय वैष्णवो द्वारा आध्यात्मिकता की सृष्टि की गयी।

चण्डीदास या द्विज चण्डीदास या बडुचण्डी दास के सहज भजन के पद या "रागात्मिका पदो का महत्त्व निर्विवाद रहा है। इन रागात्मिका पदो की रचना का मूल आधार बासली देवी और उनकी आज्ञा से सहज-भजन की रचना तथा "रजक-पुत्री" रामी को साधना सगिनी के रूप मे ग्रहण किया जाना है। चण्डीदास ने घोषित किया है कि बासली देवी के वर से उन्होने काव्य-रचना की। यह बासली विशालाक्षी या वज्रेश्वरी का अपभ्रश है। चण्डीदास की चण्डी के प्रति भक्ति थी। शक्ति के उपासक चण्डीदास ने राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला विषयक ग्रन्थ की रचना की यह विवाद का विषय है। यह माना जाता है कि

[illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] नी हो [illegible]-रचना म काव्य का उपयोगी [illegible]षय है। कवि की दृष्टि सबसे पहले [illegible] करता है। विद्यापति के सन्दर्भ मे भी यही बात सत्य हे वे वैष्णव होने के कारण राधा-कृष्ण की प्रेम कविता नहीं लिखे थे। एक और कारण माना जाता है कि शक्ति की पूजा छठीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक किसी न किसी रूप मे धर्म का अग होकर चली आ रही थी। शक्तिवाद, तान्त्रिक आचार-व्यवहार और योग-क्रिया धर्म के एक विशेष अश के रूप मे परिगणित हुआ था। इस समय हिन्दू तत्र और बौद्ध तत्र दोनो का दोनो के ऊपर प्रभाव विस्तार हुआ था एव हिन्दू और बौद्ध देव देवियो का मिश्रण हुआ था। बगाल मे शक्तितत्व जो एक अद्वय परम पुरुष का पुरुष और प्रकृति मे द्विधा विभक्ति है शिव दुर्गा विष्णु-लक्ष्मी उपाय-प्रज्ञा वज्रसत्व-वज्रेश्वरी कृष्ण-राधा रूप मे व्यक्त हुआ है। सभी देवताओ की शक्ति कल्पना की गयी एव इनकी मिलनात्मक साधना ही काम्य मानी गयी। चण्डीदास की साधना सगिनी रजकिनी रामी है। हिन्दू तत्र के अनुसार साधना सगिनी का प्रयोजन होता है। बौद्ध तान्त्रिक मत एव सहजिया साधना मे भी सगिनी का प्रयोग होता है। इसका प्रभाव इस काल की काव्य-रचना के ऊपर पडा। प्रेम मे नारी एव मानव देह की सत्ता का भी मूल्यात्मक प्रभाव हुआ।

बौद्ध सहजिया मत ही बारहवीं शदी मे वैष्णव-सहजिया मत मे रूपान्तरित हुआ। साधना पद्धति मूलत दोनो मे ही समान है। केवल प्रज्ञा-उपाय की जगह "युगल मिलन" ने धर्म का आदर्श स्थान प्राप्त किया।

छठी शताब्दी के दशकुमार चरित मे कापालिको का चित्र अकित है। आठवीं शती मे भवभूति का "मालती माधव", नवम शती के राजशेखर विरचित "कर्पूर मजरी" एव ग्यारहवीं शती के कृष्ण मिश्र विरचित "प्रबोध चन्द्रोदय" नामक नाटक मे इसी सम्प्रदाय का उल्लेख है। कापालिक कपाल-पात्र से मद्यपान करते हैं। हरिहर प्रभृति देवताओ को वे वश मे लाकर एव पार्वती की तरह सुन्दरी कामिनी का वे भोग करके परमानद लाभ करते हैं। ये तान्त्रिक गण वैदिक आचार और उपासना पद्धति का अवलम्बन नहीं करते।

चाहे जो भी सम्प्रदाय हो उस समय नारी की मिलनात्मक प्रवृत्ति योग साधना आदि का प्रभाव सब पर रहा है। प्रकृति-पुरुष-मिलन घटित साधना के समर्थको ने गौडीय वैष्णव गोस्वामियो की प्रकृति की बात का उल्लेख किया है। इसी क्रम मे अनेक प्रभावो के साथ एक नये सम्प्रदाय का सूत्रपात हुआ जिसमे अनेक धर्मों की साधना-चेतना का प्रभाव था। फिर भी उसकी अपनी निजता थी। काव्य मे प्रकृति-पुरुष मिलनात्मक प्रेम के साथ ग्राह्य सहजता सुर की एकतानता एव समाज की विषमताओ के निदर्शन की शक्तिशाली अभिव्यक्ति की क्षमता थी, इनके धर्म साधना तत्व आदि विषय की चर्चा की जा चुकी है। बगाल के साहित्य की परम्परा मे बाउल साहित्य का क्रमिक विकास हुआ है।

प्रकृति-पुरुष के मिलन मे अपने आनन्द-स्वरूप की उपलब्धि की साधना का प्रभाव उनके काव्य म भी अभिव्यजित होता हे।

मूलत सभी तान्त्रिक धर्म ही देहाश्रित रहे है। देव-देवियो की कल्पना वे नहीं करते। अपने भीतर ही ब्रह्माण्ड का दर्शन करते हैं। बाउल भी देवी देवताओ की बात को नहीं मानते हैं। देव-देवी की कल्पना उन्हे अनुमान लगती है। वे प्रकृति-पुरुष मिलनात्मक साधना के द्वारा वर्तमान की उपासना करते हैं। उनके काव्य मे उनकी यह चेतना अभिव्यक्त हुई है। बाउलो की साधना एव उसका चरम लक्ष्य इस मानव देह मे स्थित रति रस-आनन्द से युक्त मन के मानुष्य की खोज है। इसकी ओर पिछले अध्यायो मे निर्देश दिया जा चुका है। वे शुद्ध प्रेम के द्वारा ही चरम लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हैं। वैदिक परम्परा और कर्मकाण्ड तथा मूर्ति पूजा का बाउल बडे स्पष्ट ढग से विरोध करते हैं। यह उनके युग की मूल्यात्मक आवश्यकता थी। सेन वश के राजत्व काल मे जिस वैदिक ब्राह्मण धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ था उसने व्यक्ति-व्यक्ति मे, जाति-जाति मे विभेद सृष्ट किया है। जातिवाद ऊँच नीच छुआ-छूत आदि कुसस्कारो का उदय हुआ। अत समाज मे अन्त्यज वर्ग को नागरिकता ही नहीं मिली थी। इस प्रकार एक सास्कृतिक खतरा तैयार था। इसी समय बाउलो ने बिना किसी परवाह के इस सामाजिक गतिहीन विचार धारा का विरोध किया और परमपुरुष या परमात्मा को "मन के मानुष" रूप मे मनुष्य की वैदिक स्वरूप सत्ता मे लाकर रख दिया। अत बाउलो की पहली अनिवार्यता थी कि वे वैदिक परम्परा का विरोध करे। अपने मे बेसुध रहने वाले बाउल सामाजिक मूल्यात्मक अपेक्षाओ के सन्दर्भ मे पागल नहीं दीखते। वे बाउल अपने को हीन नहीं मानते। बल्कि ये हीन समझने वालो को ही इन्कार कर देते हैं। अनेक उदाहरणो के साथ बाउलो के वैदिक विरोध को दिखाया जा चुका है। उसे युगीन प्रासगिकता मे दिखाने की चेष्टा की जाएगी।

इन बाउलो ने तत्कालीन धार्मिक साधना के विभिन्न सम्प्रदायो की कुण्ठा गतिहीनता को अच्छी प्रकार परखा था। निश्चय ही वैदिक परम्परा ने अपनी सामाजिक मूल्यवत्ता खो दी थी। अत इन साधको ने जीवन को गतिशील बनाने एव धर्म साधना को मूल्यात्मक सन्दर्भ देने का प्रयास किया। अत इन्होने मानव मन के साथ परमात्म तत्व का एकात्म प्रस्तुत किया। मनुष्य का मन ही ईश्वर का मन्दिर हुआ-वह भी रति-रस-आनन्द की क्रियात्मकता से एकनिष्ठ मन। इसीलिए वे वैदिक परम्परा की सारहीनता का हमेशा वर्णन करते हैं। लालन के गीतो मे इसे हम देख सकते हे

"पावे सामान्ये कि तार देखा-
यार वेदे नाइ रूपरेखा।"

या वेदे कि तार मर्म जाने।

येरूप सॉइर लीला-खेला
आछे एइ देह-भूवने।।
पच तत्व वेदेर विचार
पण्डितेरा करने प्रसार
मानुष-तत्व भजनेर सार
वेद छाडा वैरागेर माने।।" (देखिए भाग-२ पद ३६)

एक अन्य बाउल ने भी वेदविधि की निस्सारता की ओर सकेत किया है

"तुई तारे धरवि केमन करे।
वेदाविधिर उपर वसे आछे से
सप्ततालार पर।।"

जहॉ ये बाउल वेद- विधि की असारता मानते है वहीं मानव जन्म और देही मानव के महत्व को एक बारगी मानते हैं। वैदिक परम्परा हमेशा व्यक्ति -व्यक्ति मे भेद मानती है और उसके जीवन के अतीत कर्मकाण्डो मे धर्म को सन्निविष्ठ करती है किन्तु बाउल चरम सत्ता को मानव देह से बाहर नहीं मानते। इस मानव जीवन के बाहर कुछ भी नहीं है उससे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। सहजिया कवि चण्डीदास ने कहा था "सबसे ऊपर मानुष है उससे ऊपर कोई नहीं है।" इस प्रभाव की भूमिका मे लालन कहते है

"एमन मानव-जनम आर कि हवे।
मन या त्वराय करो एइ भवे।।
अनन्तरूप सृष्टि करलेन सॉई
शुनि मानवेर उत्तम किछुई नाइ
देव-देवतागण
करे आराधन
जन्म निते मानवे
× × × × (द्वितीय खड पद-१)

वे आगे कहते हैं

"आछे आदि मक्का एइ मानव देहे
देख ना रे मन भेये।।
देश देशान्तर दौडे एवार
मरिस केन हॉपिये।।
× × × × (द्वितीय खड पद-१४)

या "एइ मानुषे सेई मानुष आछे।" (द्वि० ख० पद-१६)

यादुविन्दु के एक गीत मे भी इसी देह मे ईश्वर के होने की बात बतायी गयी है

"मेले ताय खुँजले आपनार देह-मन्दिरे।
ओ सेई जगत् पिता कच्छे कथा
अति मिष्ट मधुर स्वरे।।' (द्वि० ख० पद-९३)

पाजशाह के पदो मे भी इस प्रकार के विचार देखने को मिलते हैं

"आदमेते आल्ला आछे मिले।
"आलाकुल्ले साइन मोहित कोरानेते वले।" (द्वि० ख० पद-११७)

अथवा "खुँजे कि आर पावि से अधरा से नयन तारा।
एइ मानुषे मिशे गोपी-मन चोरा।।" (वही पद-११८)

अनन्त गोसॉइ तो इस देह रचना की जटिलता से आश्चर्य चकित हो गये हैं। वे देह कर्त्ता की प्रशसा करते हुए कहते हैं

"के गडेछे एमन घर धन्य कारिकर
तार कारिकुरिर वलिहारी
सेइ कारिकरेर कोथाय घर
धन्य कारिकर।" (द्वितीय खड पद-१४७)

दार्शनिक एव धार्मिक स्तर पर जीवन को गतिशीलता प्रदान करने के सन्दर्भ मे मानव जीवन के मूल्यो को प्रतिपादित करने की चेष्टा की गयी है। पुरुष-प्रकृति की "वर्तमान" मिलनात्मक साधना मे मानव देह की महत्ता की ओर पहले ही विवेचन किया जा चुका है। उस समय वैदिक धर्म अनेक रूढियो आडम्बरो तथा कर्म काण्डो के साथ सामन्त वर्ग का हथियार बन गया था। जीवन मे जडता आ गयी थी। सार्वजनीनता का कोई प्रश्न ही नहीं था कारण धर्म ही एक वर्ग विशेष मे चिपक गया था और शोषण का पोषक बन गया था। हिदू एव मुसलमान बाउलो ने अपने-अपने आनुष्ठानिक धर्मों का विरोध किया। इन परम्परित धर्मों मे ही अनेक निरर्थक उपायो का प्रवेश हो चुका है। दुघु ने बडे तार्किक ढग से तीर्थयात्रा की निरर्थकता को व्यक्त किया है। ये परम्परित धर्मावलम्बी तीर्थ करने कहीं जाते हैं, किन्तु यह नहीं देखते कि उन तीर्थों मे पैदा होने वाले ही पवित्र नहीं होते है। एक दिन जाकर वे कैसे पवित्र हो सकते हैं

"हज्ज करिल यदि येतो गुना
मक्काय जन्मिया केउ पापी हतो ना।"
× × × × × (द्वि० खड० पद-१५४)

और आगे कहते हैं

"मुसलमाने भावे आल्लाह अमादेर दले।
एमन वोका देखछे के कोन् काले।।" (देखिए द्वि० खड० पद-१५५)

बाउल हमेशा इस देहिक सत्य के बीच मानवीय मन के बीच [illegible] सत्य का अनुसधान करते हे। परम्परित भक्ति और साधना की गतिहीनता को इन बाउलो ने करीब से परखा। अत प्रेम और भक्ति को स्वीकार करके भी ये सकाम साधना नहीं करते। वे तो इसी ससार की नि सारता मे इसी मानव देह मे ही सम्पूर्ण मूल्यो का आरोप करके जीवन-मुक्ति की कामना करते हैं जहॉ आडम्बर नहीं है है केवल एकनिष्ठ प्रेम की भाव-प्रवण साधना।

बाउलो ने जाति धर्म वर्ग वर्ण आदि से निरपेक्ष एक मानव सस्कृति तथा धर्म की परिकल्पना सामने रखी जो अनुमान पर आश्रित नहीं थी-एकदम "वर्तमान" पर आधारित थी। जिस समय ये बाउल काव्य-रचना कर रहे थे उस समय बगाल मे सेन राजाओ के युग मे ब्राह्मण धर्म के वर्चस्व के परिणाम स्वरूप जातीय भेद-भाव चरम सीमा पर था। उस समय भारतीय जीवन के ऊपर जातीय जीवन के क्रम मे बाह्याभ्यन्तरीय खतरा उपस्थित था। जीवन इस देश के भीतर की परिस्थितियो मे ही विखण्डित हो रहा था। खतरा तो अपने ही समाज मे प्रान्तीयता जाति-पॉति भेद-भाव आदि के रूप मे वर्तमान था। हमारी चेतना अपनी मिट्टी से नहीं जुड रही थी। इन परिस्थितियो ने बाध्य किया था कि लोग अपने समाज मे ही एक दूसरे से अजनबी महसूस करे। सामाजिक रूढि और दो सस्कृतियो के बेमेल निरर्थक नियमो मे जीवन का विध्वसकारी स्वरूप इन बाउलो को स्पष्ट था। ये बाउल हिन्दू एव यवन के साथ अवास्तविक पिदरत को पहचानने मे सन्नद्ध हैं और स्पष्ट ढग से उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। लालन बडे सहज ढग से घोषित करते हैं

"भक्तिर द्वारे वॉधा आछेन सॉइ।
हिन्दू कि यवन वले
        तॉर काछे जातेर विचार नाइ।।
भक्त कवीर जेते जोलो
प्रेम भक्ति ते मातोयाला
धरेछे सेइ व्रजेर काला
        दिये सर्वस्व धन तार।
रामदास मुचि इए भवेर परे
पेलो रतन भक्तिर जोरे
तार स्वर्गे सदाइ घटा पडे
        साधुर मुखे शुनते पाइ।।
एक चॉद हय जगत आलो
एक वीजे सव जन्म हलो
फकिर लालन कय मिछे कल
        केन करिस सदाई।" (द्वितीय खण्ड पद-४०)

बडे तर्क के साथ कवि ने जातीय कलह को दूर करने की चेष्टा की। यह बताना चाहा है कि एक ही बीज से सबकी उत्पत्ति है जैसे एक ही चॉद से सारा जगत प्रकाशित होता है। वे आगे कहते हैं

'एकवार जगन्नाथे देख रे येये जात केमन राख वॉचिये।
चण्डाल आनिले अन्न ब्राह्मणे ताइ लय खेये।।
जोला छिलो कवीर दास
× × × × ×
धर्म प्रभु जगन्नाथ
चाय ना रे से जात-अजात
भक्तेर अधीन से।
यत जात-विचारी
दुराचारी
याय तारा सव दूर हये।।
जात ना गेले पाइ ने हरि
कि छार जातेर गौरव करि
हुॅसने वलिये।
लालन कय जात हाते पेले पुडाताम
आगुन दिये।।" (द्वितीय खड पद-४६)

यहॉ पुरी के जगन्नाथ का तथा कबीर दास का उदाहरण देकर लालन ने जाति की निरर्थकता को व्यक्त किया है। अत मे बडे आवेश के साथ कह देते हैं कि यदि मैं जाति को हाथ मे पाता तो आग मे डालकर जला देता। लगता है कि इस जातीय विडम्बना से कवि काफी खिन्न है। इस जातीय विभीषिका मे यह भारतीय जीवन ही जकड गया है। मनुष्य जन्म किसी जाति मे नहीं लेता। आते और जाते समय उसकी कोई जाति नहीं होती। कुछ जातीय चिन्ह मनुष्य बाजार से खरीदकर पहन लेता है और एक विशिष्ट जाति का हो जाता है। लालन की जीवन गाथा भी लगभग कबीर दास की तरह थी। लालन कायस्थ हिन्दू के घर पैदा हुए थे किन्तु उनका बाद का जीवन एक मुसलमान के घर बीता। अत लालन स्वय भी इसी जातीय विवाद के घेरे मे थे। इसीलिए लालन को इस जातीय विभेद के दुष्प्रभाव का ज्यादा अनुभव था। उन्होने इस जातीय अजनबीयत को दूर करने की बडी चेष्टा की। वे यह समझाना चाहते थे कि इस जातीय विषमता ने मानव जीवन को गति हीन कर दिया है उसके मूल्यात्मक सन्दर्भ को खो दिया है। लालन के एक गाने मे इसका स्पष्ट चित्रण मिलता है

"सब लोके कय लालन कि जात ससारे।
लालन कय जेतेर कि रूप देखलाम ना ए नजरे।।

छुन्नत दिले हय मुसलमान
नारी लोकेर कि हय विधान ?
वामन चिनि पैतार प्रमाण
वामनी चिनि कि धरे।।
केउ माला केउ तस्वि गलाय
ताइते कि जात भिन्न वलाय
याओया किवा आसार वेलाय
जेतेर चिन्ह रय कार के।।
गर्ते गेले कूपजल कय
गगाय गेले गगा जल हय
मूले एक जल से ये भिन्न नय
भिन्न जानाय पात्र अनुसारे।।
जगत् वेडे जेतेर कथा,
लोके गौरव करे यथा तथा
लालन से जेतेर फाता
विकियेछे सात वाजारे।।' (द्वितीय खड पद-६१)

बडी स्पष्टता से लालन ने इस जातीय गौरव का असारत्व प्रतिपादित किया है। वे स्पष्ट कहते हैं सात बाजार मे बिकने वाले जातीय चिन्ह को धारण करके लोग अपनी जाति का गर्व करते हैं।

ये बाउल अच्छी प्रकार से जानते थे कि वैदिक परम्परा की यह जातीय विरासत देश की अस्मिता को हमेशा खतरे मे डालती रही है। यह जातीय विचार एव मान्यता भारतीय समाज के लिए ही अभिशाप थी और रहेगी। आज तक पूरा भारतीय जीवन इसी विभीषिका को भोग रहा है। इसी जातीय भावना के कारण लोग आपस मे सघर्ष करते रहे हैं और ईर्ष्या के कारण आपसी सहयोग को खो दिए है। इस भारत की एकता के अभाव मे ही इसे बार-बार गुलाम होना पडा है। इस जाति-पॉति के नशे को त्यागे बिना देश का कल्याण नहीं हो सकता। बाउल दुधु इसी राष्ट्रीय शक्ति के अभाव से चिन्तित है और इसके मूल मे जातीय भावना को मानते हैं। गुलामी तो राष्ट्रीय जीवन की सम्पूर्ण गतिहीनता का प्रमाण है

"शुधु रे भाइ जाता जातिर दोषे।
फिरिगीरा राजा हलो एदेशे एसे।।
हिन्दु बोद्ध जैन मुसलमान-
परस्परे हिसाय दिल प्राण

ताइते तो पाद्री खृष्टान
यीशुखृष्टेर दीन प्रकाशे।।
कोटि कोटि भारतवासी
एक हये रइलो ना मिशि
कयजन फिरिगी आसि
एदेशे जुडे वसे।।
हाय रे धर्म मानुष जाति
एइ कि रे तोर रीति-नीति
लालन सॉई कय दुदुर प्रति,
त्याज जात पात-नेशे।।" (द्वितीय खड पद-१५८)

राष्ट्रीय सत्ता और शक्ति के निर्माण का इतना अच्छा सचेतन प्रयास कहॉ मिलेगा! अध्यात्म के सुर मे तान की गहरायी मे, मन के मानुष की खोज मे सन्नद्ध साधक इस व्यापक राष्ट्रीय चेतना की बात कहता है। पूरे देश की हीन शक्ति पुनर्जीवित करना चाहता है। यही नहीं वह एक राष्ट्रीय चेतना के निर्माण मे अपनी भाषा के प्रयोग की बात भी कहता है। विदेशी शासको की भाषा बोलना यहॉ गौरव की बात मानी जाने लगी थी। अपना गौरव एकदम भूल गया था। राष्ट्र मे वैचारिक एकता के लिए सशक्त माध यम भाषा का भी अपप्रयोग हो रहा था। अत कवि बाउल दुघु ने अपनी भाषा के महत्त्व को प्रतिपादित करके एक समग्र राष्ट्रीय चेतना के सवाल को खडा किया है

"महम्मदेर जन्म यदि हतो ए देशे।
वेहेश्तेर कोन भाषा हतो वलतो एसे।।
मातृभाषा त्यजे सवाइ
अरवी भाषा शिखले रे भाइ
ताते भाई फयदा तो नाई
अवशेषे।।
हिवुते इजिल ताओरात
आवेत्ता भाषार "खोदार" मत
सस्कृत वेदान्तेर वयेत्
लेखा आछे सविशेषे।।
केन कूप मण्डूक हओ रे भाइ,
हिसेव करे बोझ सवाई
खोदार सत्वार कोथाओ खोज नाइ
अधीन दुघु भावे रसे।।"
(द्वितीय खड-पद-१५६)

कितना प्रासगिक पद है। यह कूपमण्डूकता आज भी है। राष्ट्रभाषा बोलन कठिन एव अपमान जनक है किन्तु अग्रेजी बोलना गौरव की बात है। सच तो यही है कि अपनी और युगीन जन मानुस से जुडी भाषा का प्रयोग देश एव समाज की प्रगति का सहायक होता है। कबीर ने भी कहा था,। "ससकिरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।" बाउलो की सार्वजनीनता उनकी जनभाषा के प्रयोग मे सन्निहित है। यही कारण कि अपनी राग रागिनी के बीच बाउल काव्य को लोक गीत की श्रेणी मे भी लाया गया। जहाँ तक सम्भव है ये बाउल मानव जीवन के सत्य मे ही परम सत्य को खोजते हैं आडम्बरो रूढियो से परे इसी जीवन के सत्य मे ही उनकी सारी मान्यताएँ दोलन करती हैं। अनेक प्रसगो मे उस बात की चर्चा हुई है। नाना प्रकार के कर्मकाण्डो को वे ढकोसला मानते हैं। वे तो मनुष्य मे ही खुदा को ढूँढते हैं और मानते हैं कि सब कुछ मनुष्य मे ही मिलता है। दुघु के एक पद मे सम्पूर्ण रूप से बाउलो का चरित्र निरूपित हुआ है

"ये खोजे मानुषे खोदा सेइ तो बाउल।।
वस्तुते ईश्वरे खुंजे पाय तार उल।।
पूर्व पुनर्जन्म ना माने
चक्षु ना देय अनुमाने,
हय रे कवुल।।
वेद तुलसी माला टेपा,
एसव तारा वेले धोका
शयताने दिये धाप्पा
सव करे भुल।।
मानुष सकल मेले,
देखे शुने वाउल वले
लालन सॉइजीर कुल।।

(दि० हि० अनुवाद खण्ड २ पद-१५७)

मनुष्य मे खुदा और खुदा मैं चरम सत्य की पहचान बाउलो का चरम सत्य है। इस जगत एव जीवन की क्रियाओ मे ही जीवन से उपराम सत्य को ढूँढना मानव मूल्यो की स्थापना का निश्चय ही एक अभीष्ट प्रयास है। ये बाउल ब्राह्मण धर्मावलम्बियो की तरह न तो कर्मकाण्डो मे विश्वास करते है न जॉति-पॉति जनित विभेदो मे विश्वास करते हैं और न तो वे "वर्तमान" की सत्ता को इन्कार करते हैं। मानवमूल्यो की स्थापना मे "वर्तमान" को स्वीकार करना एक महत्वपूर्ण प्रसास है। ये बाउल हिन्दू देव-देवियो की कल्पना मे अपने को "अनुमान" तक नहीं ले जाते। ये मानते हैं कि हिन्दुओ के देव-देवियाँ केवल अनुमान मात्र है। अत उनकी पूजा मानव-मन मे स्थित "मन के मानुष' को समर्पित हे जो हरदम मनुष्य मे ही वर्तमान है। यही गुरु रज कृष्ण अधर धरा आदि रूप मे

हे । एक मन के मानुष की खोज मे ही इन बाउलो की साधना वर्तनानाश्रित रही है। जो मानवोय मन की सम्पदा होने के कारण प्रेमाश्रित या भावाश्रित भी हुई। इसीलिए बाउल विभेदो आडम्बरो कर्मकाण्डो देव-देवियो के अनुमानो पर आश्रित वैदिक परम्परा का विरोध करते है । वे तान्त्रिक पूजा पद्धतियो के आधार पर ही मनुष्य (नारी और पुरुष) के शरीर की महत्वपूर्ण भूमिका मानते हैं । मानव जीवन के सहज मनोविज्ञान को स्वीकार करते हुए इन साधको ने नर-नारी के जनेन्द्रिय तथा जननेन्द्रिय-क्रिया-कलापो की स्वीकृति मे अपनी आध्यात्मिक-चेतना को स्वरूप दिया । पुरुष एव प्रकृति की युगनद्ध मिलन-क्रिया के द्वारा अपनी योग साधना का प्रयोग इन बाउलो की विशिष्टता रही है। ब्राह्मण धर्मावलिम्बयो मे एक वैष्णवी प्रभाव आया था जिसके कारण वे किसी भी प्रकार के मानवीय सहज सत्य को साम्जिक रूप मे स्वीकृति नहीं प्रदान करते थे। सब कुछ मानवीय स्वाभाविक वृत्तियॉ अछूत थीं । बाधाएँ थीं । इन बाउलो ने उनकी बाधाओ मे से ही यात्रा की । काम से होकर काम पर विजय प्राप्त करके प्रेम की उपलब्धि बाउलो की विशिष्टता थी। वे नर-नारी के भोग को इन्कार न करके उससे ऊपर उठना चाहते थे जबकि ब्राह्मण धर्म इसे इन्कार करके उसमे ही सन्नद्ध था। अपने क्रिया-सत्य को स्वीकार न करना ब्राह्मण धर्म की विशेषता हो गयी थी। उनके यहॉ नारी साधना मे बाधक थी। बाउलो मे नारी साधना का मूल तत्व थी। इसीलिए उपास्य थी। ब्राह्मण धर्म के प्रभाव ने नारी को और रजस्वला नारी को एकदम अपवित्र माना था किन्तु बाउलो की साधना का सबसे श्रेष्ठ समय नारी के रज प्रवृत्ति का समय होता है। रज प्रवृत्ति के तीन दिन को ही बाउलो ने महायोग काल या अमावस्या कहा है । साधना-सन्दर्भ मे इसका वर्णन किया जा चुका है। वे मानते हैं कि यह योग क्रिया का तीन दिन का समय त्रिवेणी मे बाढ का समय होता है । इसी त्रिवेणी घाट पर रमण द्वारा साधक-साधिका दोनो मछली रूप मे सहस्रार से आये मन के मानुष या परमात्मा को पकडने का प्रयास करते है। अपनी योग-क्रिया तथा रमण के द्वारा ही आनन्द की सक्रिय अवस्था मे वह अचेतन ब्रह्म सक्रिय होकर अनुभवगम्य होता है । इस प्रकार बाउलो की सारी साधना ही मानव-देहाश्रित है। भाषा और अभिव्यक्ति सार्वजनीन है। एक नये मूल्य की तलाश मे ये बाउल जीवन की सम्पदा मे जीवन की परम सम्पदा की पहचान करते हैं। एक सामान्य जीवन यापन के द्वारा ये समाज मे ही जीवन जीते हैं अपनी रोजी-रोटी के लिए अनेक पेशो का व्यवहार भी करते हैं। अपने को बाउल कहने वाले साधक अपने पागलपन मे से मानवीय जीवन की परम सत्ता की पहचान ही नहीं करते अपितु अपने भीतर राधा-कृष्ण की खोज करते हैं। रूप और स्वरूप तत्व की खोज मे वे स्वय को ही राधा-और कृष्ण मानते हैं। उनका यह शरीर ही चिर मक्का एव चिर वृन्दावन है-ऐसा वे मानते है। ये बाउल मानव के मनोवैज्ञानिक सत्य को ही हर क्षेत्र मे स्वीकारते नजर आते ह। अपनी साधना-प्रकृति के साथ वे सहजिया वैष्णवो की तरह स्वकीया होने पर भी परकीया-प्रेम

– –– ः क्योंकि परकीया पेम स्वकीया प्रेम से विलक्षण एव तीक्ष्ण होता है। परकीयात्व के मनोवैज्ञानिक सत्य पर ही इनकी प्रेम क्रिया आधारित है। जीवन को उसके सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक एव भौतिक सत्य मे स्वीकार करके उसको परम रूप मे लेने वाले बाउलो ने अपने इसी साधनात्मक आयाम मे मानव मूल्यो को प्रतिपादित किया।

कर्मकाण्ड, पूजा विधि भेद–भाव मन्दिर–मस्जिद तथा रूढियो के सर्वथा परिहार तथा मानव जीवन को यहीं अपनी तथता मे स्वीकार करने की वैज्ञानिकता मे ही बाउल-धर्म-साधना तथा साहित्य की प्रासगिकता को देखा जा सकता हे।



।।५।।

बाउल साहित्य साधना और हिन्दी के सन्त साहित्य का तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य



क्षितिमोहन सेन की बाउल सम्बन्धी समीक्षा की आलोचना करते हुए उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य ने जो टिप्पणी की है उसी से ही चर्चा का आरम्भ किया जाए। एक लम्बी चर्चा के साथ उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य ने अपना मन्तव्य जाहिर किया है कि "आश्चर्य का विषय है कि बगाल के बाउलो के साधना-तत्व के हिसाब से जो बाते कही गयीं हैं (क्षितिमोहन सेन द्वारा विश्वभारती पत्रिका मे क्रमश छपे निबन्धो मे) वे अब बगाल के बाउलो के सम्बन्ध मे ठीक नहीं लगतीं। ये सब बाते धर्म तत्व और साधना-पद्धति के हिसाब से मध्य युग के उत्तर-पश्चिम भारत के साधक नानक कबीर दादू, रज्जब आदि मे प्रचलित हो सकती हैं किन्तु आज बगाल मे बाउल ठीक इसी प्रकार साधना नहीं करते। आज बगाल के बाउल जो गान गाते हैं जिस प्रकार धर्म-जीवन यापन करते हैं धर्म-धर्म करते हैं उसके साथ क्षितिमोहन बाबू द्वारा प्रचारित गान या उनके द्वारा वर्णित साधना-प्रणाली का कोई मेल नहीं है।" (उ० ना० भ० वही पृ० ७३)

क्षितिमोहन बाबू की समीक्षा पर यह आरोप सिद्ध करता है कि बगाल के बाउलो एव मध्य कालीन हिन्दी सन्तो की साहित्यिक एव आध्यात्मिक चेतना मे काफी अन्तर है। क्षितिमोहन बाबू की इन सन्तो के आधार पर की गयी बाउलो की समीक्षा कहीं न कहीं साम्य का भी प्रमाण है। कोई ऐसा साम्य अवश्य है जिसने क्षितिमोहन बाबू को समभूमि पर लाकर रखने के लिए वाध्य किया। बिना किसी साम्य के उन्होने आरोप मात्र नहीं किया और विभेद न होने पर उपेन्द्रनाथ भी आरोप नहीं मानते। अत साम्य और विभेद की भूमिका मे ही सबका मन्तव्य तैयार हुआ है। इन विन्दुओ पर सक्षेप मे दृष्टिपात करना समीचीन होगा।

उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य भी मानते हैं कि बाउलो की सहज साधना तथा सन्तो की सहज-साधना मे मूल रूप मे प्रभेद हैं। बाउलो की सहज साधना केवल सन्तो की तरह अनुभूतिक

प्रेन की साधना नहीं है जिसके लिए हठ योग का सहारा सन्तगण लते है। स ˉ की सहज साधना सुरति-शब्द-योग 'की प्रक्रिया हे जिसमे लौकिक प्रेम की शुद्धता एव उत्कृष्टता का सहारा तो लिया जाता है किन्तु वह लौकिक भोग की भूमिका पर प्रतिष्ठित नहीं है।" प्रिय मोरा राम मैं राम की बहुरिया" या दुलहिन गावहु मगल चार, मोरे घर आये हो राजा राम भरतार" या विरहिन को भीचु दै या आया दिखराव आदि प्रसगो से नारी-पुरुष के प्रेम और विरह की पराकाष्ठा तो ज्ञापित होती है किन्तु उसका आधार बाउलो की तन्त्रात्मक साधना नहीं है। प्रकृति पुरुष के युगनन्द्ध मिलनात्मक आनन्दातिरेक मे सुलभ प्रेम नहीं है। परमात्मा की अनुभूतिक सत्ता की कल्पना मे, अपनी सूक्ष्मता मे नारी-पुरुष के प्रेम की पराकाष्ठा मे वह प्रेम भी "अनुमानाश्रित" ही है। सूफी प्रेम की प्रवणता और विरह वेदना का प्रभाव दोनो सम्प्रदायो के ऊपर पडा है किन्तु प्रभाव की प्रक्रिया भिन्न है। बाउलो का यह प्रभाव साधना-प्रकृति के क्रम मे आता है जबकि सन्तो मे यह अनुभूतिक होकर आया है। यही नहीं सन्तो का प्रेम माँ और बेटे के प्रेम के रूपक मे भी अभिव्यजित हुआ है। कबीर का प्रसिद्ध पद इसका उदाहरण है।

> "हरि जननी मैं बालिग तोरा काहे न अवगुन बकसहि मोरा।
> सुत अपराध करै दिन केते जननी के हित रहै न तैते।।
> कर गहि केस करै जो घाता तऊ न हेत उतारै माता।
> कहै कबीर एक बुद्धि बिचारी बालक दु खी दु खी महतारी।"

निश्चत ही इन सन्तो का प्रेम लौकिक सम्बन्धो के बीच प्रतिपादित है किन्तु उसमे एक सात्विक अनुभूतिक सूक्ष्मता है जिसमे लौकिक भोग का कोई स्थान नहीं है। जबकि बाउलो का प्रेम काम से आरम्भ होकर काम से अतीत शुद्ध प्रेम तक पहुॅचने की प्रक्रिया है। इस सन्दर्भ मे अनेक प्रसग मे चर्चा हो चुकी है। हॉ इतना जरूर है कि बाउल और सत दोनो प्रेम की पराकाष्ठा मे इन्द्रिय शुद्धता की बात करते हैं। इन्द्रिय जनित छ विकारो के परिहार की बात सभी करते हैं। एक हठयोग और इन्द्रिय-निग्रह द्वारा दूसरा भोग से होकर दम की क्रिया करके षट्-विकारो का परिहार करना चाहता है। बाउलो ने काम को कुम्भीर के रूप मे माना है। इस काम कुम्भीर को मारे बिना शुद्ध प्रेम तक पहुॅचना सम्भव नहीं है। शुद्ध प्रेम तक पहुॅचकर परम ब्रह्म "मन का मानुष" मिलता है। यही परमात्मा स्वय प्रेम स्वरूप है।

बाउलो एव सन्तो के धर्म-तत्व एव दर्शन के सन्दर्भ मे कोई मेल नहीं है। बाउलो के धर्म-तत्व एव दर्शन के सन्दर्भ मे चर्चा हो चुकी है। हिन्दी के पाठक सन्तो के धर्म तत्व एव दर्शन से परिचित ही है। यहॉ सक्षेप मे चर्चा करना ही पर्याप्त होगा। सन्तो का परमात्मा सर्वदर्शी सर्वशक्तिमान अनुभूतिगम्य सर्वद्रष्टा सूक्ष्मातिसूक्ष्यम है। प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे विराजमान है। यह अदृश्य है। निराकार होने के कारण केवल बोधगम्य है। वह पुष्प की गध की तरह अनुभव गम्य एव कस्तूरी के मृग की तरह अपने भीतर होकर भी अज्ञात

है। वह अपनी सूक्ष्मता मे हृदयस्थ साधक का पति दूल्हा और अराध्य भी है। यह सूक्ष्मता अनुभव गम्यता आदि तो बाउलो के गीतो मे उनके परमात्मा के लिए ठीक है किन्तु उनका परमात्मा सहस्रार मे निश्चेष्ट होता है। साधना-सगिनी के रज प्रवृत्ति के तीन दिन वह रमण के क्रम मे आनन्दावस्था की सक्रियता को प्राप्त करके मीन रूप मे त्रिवेणी की बाढ मे प्रवाहित होता है और साधक उसे सम्भोग और दम की क्रिया के साथ पकडता है। यह क्रिया प्रेम की पूर्णता मे ही पूरी होती है। यही कारण है कि उनका परमात्मा भी केवल अनुभव की चीज है किन्तु बाउल उन्हे रज रूप बीजरुप गुरु रूप और रूप से स्वरूप तक की यात्रा मे राधा-कृष्ण के युगल रूप मे मानते हैं। इन सन्दर्भ मे उनकी साधना 'चारिचन्द्रभेद' की क्रिया को ग्रहण करती चलती है। सन्तो की साधना बस केवल अपनी आत्मा के साथ स्थित परमात्मा को एकनिष्ठ भाव से निष्काम रूप मे प्रेम करने की साधना है जिसके लिए उन्हे हठ योग का सहारा लेना पडता है किन्तु सन्तो का योग कोई व्यवस्थित योग-साधना नहीं है। बाउलो की योग साधना एक व्यवस्थित योग साधना है। कुम्भक रेचक आदि वायु क्रियाओ के प्रति उनकी धारणा काफी प्रौढ रही है।

इतना ही सकेत करने के बाद यह भी जान लेना आवश्यक है कि आचार-व्यवहार प्रथा एव अनेक विश्वासो मे दोनो सम्प्रदायो मे मेल है। कुछ मूल समानताओ की ओर सकेत करना समीचीन है।

(क) धर्म के वाह्य आचार-अनुष्ठान के प्रति अवज्ञा।
(ख) गुरु के प्रति अटल निष्ठा।
(ग) मानव-देह मे ही परमतत्व का निवास मानने का विश्वास एव देह को ही साधना का केन्द्र बनाना।
(घ) अधिकारी साधको के लिए जनसाधारण से दुर्बोध्य साकेतिक एव उलट वासी भाषा मे मतवाद का प्रकाश।

इन्हीं प्रकरणो मे दोनो साधना-सम्प्रदायो के साम्य को देखा जा सकता है।

सन्तो ने ईश्वर को अनुभूति मे उतारा। भूत दया प्रेम करुणा, अहिसा वैराग्यवाद आदि सात्विक गुणो का आग्रह बढा। साधना मे ज्ञान कर्म भक्ति का महत्व बढा। ससार को माया रूप मे निर्दिष्ट किया गया। सत् चरित्र पर जोर दिया गया। इस काल की विशेषता थी समर्पण की भावना। लौकिक प्रेम को चरम प्रेम तक पहुँचने का सोपान माना गया किन्तु केवल ज्ञान रूप मे। अन्तरात्मा के मूल्य को स्वीकारा गया। जीवन को समग्रता मे समन्वित किया गया। जीव मात्र मे समता का नैतिक आरोप हुआ। मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा हुई। ईश्वर पुरुष रूप मे महामानव हुआ या अनुभूतिक सत्य के रूप मे चरम मूल्य के स्तर पर प्रस्तुत किया गया। ईश्वर को नायक रूप मे समस्त मूल्यो ओर मर्यादाओ

से पूर्ण माना गया। इन भक्तो ने दिव्य को मानवीय अनुभूति मे खींचकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मानव-ज्ञान की परिपूर्णता मे उससे परे दिव्य सत्य की ओर मनुष्य की इच्छा और हृदय का झुकाव हुआ। ईश्वर को पाने की लालसा बढी। उसके अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए श्रद्धा और भक्ति आवश्यक हुई। ईश्वर से सहज प्रेम करके ही यह सब किया जा सकता है। भक्ति ही मूल्य मानी गयी। लौकिक मूल्यो का सम्पूर्ण विकल्प ईश्वर मे ही माना गया। ईश्वर की निर्गुणी स्थापना मे मनुष्य ईश्वर से काफी पृथक नहीं था। बाउलो की साधना मे एव उनके गीतो मे इन विशेषताओ का स्वरूप दिखाई देता है।

सन्तो भक्तो एव बाउलो ने तात्कालीन धार्मिक साधना के विभिन्न सम्प्रदायो की कुठा गतिहीनता को भली प्रकार परखा था। निश्चय ही वे धर्म साधनाएँ अपनी सामाजिक मूल्यवत्ता खो चुकी थीं। अत इन्होने जीवन को गतिशील बनाने एव धर्म-साधना को मूल्यात्मक सन्दर्भ देने का प्रयास किया इन्होने प्रेम को केन्द्र बनाकर अपनी साधना को लौकिक सहजता प्रदान की। इस प्रेम की स्वाभाविकता को केन्द्र मे रखकर ही इन भक्तो ने शैव शाक्त बौद्ध जैन ब्राह्मण आदि सम्प्रदायो की परम्परित रूढि पर आश्रित साधना का विरोध किया किन्तु उनकी मूल्यात्मक परिणति भी युगानुकूल धार्मिक साधना मे प्रस्तुत थी।

ये दोनो साधक जाति-पॉति, रूढियो एव अनुष्ठानो आदि का विरोध किए हैं। यद्यपि सन्तो के काव्य मे यह प्रक्रिया काफी क्रान्तिकारी रूप मे आयी है और एक सुचिन्तित सामाजिक दृष्टि का प्रतिफल है जबकि बाउलो मे यह विरोध एकाध उदाहरणो को छोडकर इतना तीव्र या क्रान्तिकारी नहीं रहा है। कारण उनकी जीवन के प्रति घोर उपेक्षा की भावना है। फिर भी मुद्दो पर दोनो की अभिव्यक्तियॉ समान-सी लगती हैं। यद्यपि इन बाउलो के गीतो मे कबीर का नामोल्लेख अनेक जगह हुआ है। अत सन्तो की विचारधारा से प्रभावित होना सम्भव लगता है। जाति के सन्दर्भ मे कुछ सन्तो के और बाउलो के गीतो को उद्धृत करने से उनकी रूढि विरोधिता को अच्छी प्रकार समझा जा सकता है।

"हिन्दू तुरक हम एकै जाना। जो यह मानै सब्द निसाना।
अन पानी सब एकै होई। हिन्दू तुरक दुजा नहीं कोई।। दरिया साहब

या- "कैसे हिन्दू तुरक कहाया। सबही एकै द्वारे आया।।
कैसे बाम्हन कैसे सूद। एकै हाड चाम तन गूद।।
एकै बिन्द एकै भगद्वारा। एकै सब घट बोलन हारा।।
कौम छतीस एकही जाती। ब्रह्म बीज का सबकी उतपाती।।
एकै कुल एके परिवारा। ब्रह्म बीज का सकल पसारा।।
ऊँच नीच इस विधि है लोई। कर्मकुकर्म कहावे दोई।।
गरीबदास निज नाम पिछाना। ऊँच नीच पद ये परमाना। गरीबदास

जाति-पॉति का यह जबरदस्त विरोध है। लालन के कुछ पदो को यहॉ रखना उचित होगा

सब लोक कय लालन कि जात ससारे।
लालन कय जेतेर कि रूप, देखलाम ना ए नजरे।।
छुन्नत दिले हय मुसलमान,
नारी लोकेर कि हय विधान ?
वामन चिनि पैतार प्रमाण
वामनी चिनि कि धरे।।
केउ माला केउ तस्वि गलाय
नाइते कि जात भिन्न वलाय
याओया किवा आसार वेलाय
जेतेर चिन्ह रय कार रे।।

लालन से जेतेर फाता
विकियेछे सात वाजारे।। (दे० हिन्दी अनुवाद खण्ड-२ पद ६१)

दुघु के एक पद मे देखते हैं

शुधु रे भाई जाताजातिर दोषे।
फिरगीरा राजा हलो एदेशे एसे।।
हिन्दू बौद्ध जैन मुसलमान-
परस्परे हिंसाय दिल प्रान

लालन सॉइ कय दुछुर प्रति,
त्याज जात पात-नेशे।। (दे० हि० ख० पद-१५८)

पलटू दास के एक पद को यदि यहॉ देखे तो लालन के पद की समानता दिखाई देती है। पद का पद समान दिखाई देता है बाम्हन तो भये जनेऊ को पहिरि कै बाम्हनी के गले कुछ नाहिं देखा। आधी सुद्रिनि रहै घरै के बीच मे करै तुम खाहु यह कौन लेखा। सेख की सुन्नति से मुसलमानी भई सेखानी की नाहि तुम कहौ सेखा। आधी हिन्दुइनि रहै घरे के बीच मे पलटू अब दुहुन मारूँ मेखा।। पलटू दास

यहॉ साम्य होने पर भी उग्रता ज्यादा है। अपनी प्रगतिशील चेतना के अनुकूल विरोध तो दोनो मे है किन्तु एक वैचारिक आधार की क्रान्ति का स्वरूप सन्तो के काव्य मे ज्यादा पाया जाता है।

बाउल और सन्त दोनो वेद तथा ब्राह्मणो का विरोध करते हैं। दोनो वेद विरोधी है उससे अधिक धार्मिक जडता के विरोधी है।

वेद पुरान पडित बाचे करता अपनी दुकान है जी।

पलटू कागद मे खोजत है साहिब कहीं लुकान है जी।।

या "पडित बाद बदे सो झूठा।-कबीर

एक बाउल ने भी पण्डितो और साधुओ के अन्धत्व की ओर सकेत किया है

यतो सव काणार हाट वाजार
पण्डित काणा अहकारे साधु काणा अभिचारे
काणाय काणाय युक्ति करे हते चायेत भवेर पारे।
× × × × × (दे० हिन्दी अनु खण्ड-२ पद-१९३)

या

तुइ तारे धरवि केमन करे
वेदविधिर उपर वसे आछे से
सप्ततालार परे।। (दि० खड-२ पद-१०२)

या लालन का एक पद

जान गे मानुषेर करण किसे हय।
भुलो ना मन वैदिक भोले
रागेर घरे रओ।। (दि० द्वि० खड पद- ५५)

अथवा

एवार कि साधने शमन-ज्वाला याय।
धर्माधर्म वेदेर मर्म शमनेर विकार ताय।। (दे खड-२ पद-५२)

इन उदाहरणो से सन्तो एव बाउलो के वेद एव ब्राह्मण विरोध का साम्य देखा जा सकता है।

बाउलो को गुरु के प्रति निष्ठा बौद्ध तान्त्रिको एव सूफियो से विरासत मे मिली। सन्तो का गुरु भी विरासत से मिला है। बाउलो का गुरु केवल वाह्य मानव देहधारी ही नहीं है। अपितु वह देह-स्थित परमात्मा स्वरूप है। वह रज और वीर्य-स्वरूप है। उसके प्रति परमात्मा की तरह ही बाउलो ने आत्म निवेदन किया है। उनका सच्चा गुरु ही परमात्मा स्वरूप है। विभिन्न उदाहरणो के द्वारा साधना तत्व मे इसका विवेचन किया गया है।

"मुरशिद विने कि आर आछे रे ए जगते।
मुरशिद चरण-सुधा
पान करिले हरे क्षुधा
कोरो ना देले द्विधा

ये हि मुरशिद से हि खोदा।" (दि० खड-२ पद-२२)

या "गुरू सुभाव दे ओ आमार मने।
तोमाय येन भुलिने।।" (दि० खड-२ पद-२३)

या " गूरूपदे निष्ठा मन यार हवे।
पावे तार सव ससार
अमूल्य धन हाते सेइ पावे।। (खड-२ पद-२४)

या "गुरू दोहाइ तोमार मनके आमार
लओ गो सुपथे।" (खड-2 पद-25)

इसी प्रकार पद सख्या २६, २७ आदि मे गुरु का माहात्म्य वर्णित है। गोपाल कवि के पद स १४० मे गुरु तत्व का उल्लेख है।

सन्तो ने गुरु को काफी महत्व दिया किन्तु इनके गुरु और ईश्वर मे कोई भेद नहीं है। यह मनुष्य के भीतर की विद्या माया ही है। यह मानव रूपी अध्यापक नहीं है। यह तो मनुष्य के भीतर की वह विवेक शक्ति है जो उसे मानव और कि अतिमानव बना देती है। इसी विद्यामाया को इन सन्तो ने ईश्वर से भी महान बताया है। क्योकि इसीने हमे ईश्वर का दान किया है। हमने अपने को, परिवेश को और उसके विराट आयाम को प्राप्त किया है। सन्तो जैसा गतिशील आन्दोलनकारी भक्त बाहरी अध्यापक को इतना महत्व नहीं दे सकता था। वह जानता था कि अध्यापक हमेशा सामती सस्कारो के अनुकूल अपने स्वार्थ के अनुकूल ही शिक्षा देता है। अत सच्चा गुरु तो ईश्वरीय ज्ञानात्मक शक्ति विद्यामाया है। अध्यापकीय गुरु की तो वह निदा करता है सब कुछ विवेक सम्मत ही स्वीकार करना चाहता है।

गुरू को रामहि, जान कृष्ण सम जानिये।
गुरू नरसिह औतार जो बावन मानिये।
गुरू को पूरन जान जो ईश्वर रूप ही।
सब कुछ गुरू को जान यह बात अनूप।। चरणदास

आइये अध्यापक या कनफूकवा गुरु को इसी कवि के मुख से सुने

गलियारे गुरू फिरत हैं घर-घर कठी देत।
और काज उनकू नहीं द्रव्य कमावन हेत।। चरनदास

सच्चे गुरु के प्रति एक प्रकार की अनन्य भक्ति इन साधको मे थी। वे ईश्वर की ही क्रियात्मक शक्ति के रूप मे गुरु को मानते थे। एक अटल निष्ठा इन दोनो साधको की भावाभिव्यक्ति मे गुरु के प्रति दिखाई देती है।

- नो ही साधक मानव-देह को ही परमतत्व का निवास मानते है एव मानव-देह मे ही साधना करते है। यद्यपि दोनो के परम तत्व और साधना की पद्धति मे भेद है। बाउलो के साधना तत्व अध्याय मे उनके भाण्ड-ब्रह्माण्ड वाद की चर्चा की गयी है। वे देह से भिन्न ईश्वरीय सत्ता को नहीं मानते। सब कुछ इसी देह भाण्ड मे ही है। याद बिन्दु के एक पद को देखे

मेले ताय खुँजले आपनार देह-मन्दिरे।

यादुविन्दु टेटा वृद्धि मोटा,
से कि कुवीर के चिनते पारे।। (दे० खड-२ पद-९३)

इस प्रसंग मे याद विन्दु ने कुवीर या कबीर का नामोल्लेख भी किया है। लालन के पदो मे भी कबीर एव रैदास का उल्लेख आया है। अत सन्तो का प्रभाव पडना तो सम्भव ही है। पाज के पद मे इस मानव देह की विशिष्टता व्यजित है।

"आदमेते आल्ला आछे मिले।" (दि० खड-२ पद-११७)

या "खुले कि आर पावि से अधरा से नयनतारा।
एइ मानुषे मिशे आछे गोपी-मनचोरा।।" (खड-२ पद-११८)

या "एइ मानुषे नवीर नुरे झलक देय।
देह खुँजले पाओया याय।।" (खड-२ पद-१२०)

एक अन्य गाने मे पाज ने शरीर को अल्लाह-लीला-भूमि माना है। उसीने रचना की है और वही हर रूप मे प्रकट होता है।

सॉई-रूप गठे, गठे कत लीला करले, आल्ला
सव घटे घटे।" (खड-२ पद-१२४)

इन उदाहरणो से बाउलो के भाण्ड-ब्रह्माण्डवाद को अच्छी तरह समझा जा सकता है। उनकी पूरी साधना ही देहाश्रित है। गुरु परमात्मा भाव, प्रकृति-सेवा योग क्रिया सब कुछ देह के भीतर ही है। देह से बाहर कुछ भी नहीं है। रूप-स्वरूप वाद के सन्दर्भ मे इसकी चर्चा हो चुकी है। सन्तो की साधना भी देहाश्रित है किन्तु भाव के स्तर पर। साधना का प्रसार भिन्न है। योग इन्द्रिय निग्रह परमात्मा प्रेम सब कुछ दैहिक है और देह मे ही उसका स्थान है। जैसे तिल मे तेल है चकमक पत्थर मे आग है उसी प्रकार ईश्वर भी मनुष्य के भीतर बराबर विराजमान है। पुष्प की गन्ध की तरह वह अनुभव गम्य है। कस्तूरी की भाँति मृग की नाभि मे रहते हुए मृग से अज्ञात रहने वाला ईश्वर मनुष्य के घट-घट मे व्याप्त है। इन सन्तो ने अपने प्रेम को गत्यात्मक सन्दर्भ देने के लिए ही व्यक्तिगत पारिवारिक और मानवीय अनुभूति के स्वाभाविक प्रेम की परिधि मे

ही ईश्वर को उतारा। उनका ईश्वर पेम का सन्दर्भ बना और अपने रागात्मक सम्बन्धो मे इष्ट भी हुआ। इन्होने पेम को सयोग और वियोग दोनो रूपो मे स्वीकार किया। इनका ईश्वर परम्परा से भिन्न सर्वव्यापी अनादि और सूक्ष्म मानवीय अनुभूतियो मे रहने वाला हे। वह साम्प्रदायिक मतभेद तैयार करने वाला ईश्वर नहीं है। उसका कोई रूप नहीं हे। मानव अनुभूति की तरह अनुभवगम्य है। फिर मानव या जीव मात्र की ईश्वर के साथ साम्यता है। इस विराट भावभूमि पर उनका ईश्वर प्राणी मात्र मे अभेद पैदा करता है। वह साहब भी है शब्द भी है, वह कहॉ फिर नहीं है वह साहिब तो सबमे है तनिक भी जुदा नहीं है।

लोग बोलै दुरि गये कबीरा यह मत कोई-कोई जानै धीरा।
दसरथ सुत तिहुॅ लोकहि जाना राम नाम का मर्महि आना।। (कबीर)

प्रेम की एकनिष्ठता, सयोग वियोग रूढियो का खण्डन मानव देह की महत्ता और अपने अपने ढग से साधना के सन्दर्भ मे उसका उपयोग गुरु मे ईश्वरत्व का आरोप आदि बातो मे दोनो सम्प्रदायो मे साम्य है। साधना तत्व मे भेद होने एव प्रकृति-पुरुष मिलनात्मक साधना को मूल रूप मे बाउलो द्वारा ग्रहण किए जाने के कारण ही सन्तो की साधना तथा योग-क्रिया मे मौलिक अन्तर है। सन्तो की योग-साधना चित्त स्थैर्य देह-शुद्धि के लिए अनुष्ठित होती है। इसको मूल साधना का आधार नहीं बनाया गया। बाउलो मे यहीं मूल साधना का आधार है।

बौद्ध तन्त्र एव हिन्दू तत्र से चली आ रही समस्त धार्मिक एव सामाजिक धारणाओ को सन्तो ने सुन्दर भाषा एव सुन्दर अभिव्यक्ति दी। उन्हे युगोपयोगी बनाया। चेतना का नयापन दिया। निखार दिया। प्रगतिशीलता दी। हिन्दी के सन्तो की साहित्यिक समृद्धि काफी है। उन्होने अनेक छन्दो का व्यवहार किया। एक तरफ दोहो की रचना की तो दूसरी तरफ लोकप्रचलित छन्दो और रागो का प्रयोग किया। यही कारण है कि उनके साहित्य मे प्रौढ साहित्यिक स्वरूप है तो लोक गीतात्मक सहजता भी है। इसीलिए इनके काव्य की लोकप्रियता बढी थी। व्यवस्थावादी ब्राह्मणो एव वेद के पक्षधर रचनाकारो को उनके काव्य की लोकप्रियता से बडा खतरा प्रतीत होने लगा था। अत तुलसी दास जेसे कवि को भी सन्तो की काव्य-रचना की निदा करना आवश्यक हो गया था। प्रकारान्तर से उन्होने इस आतक को स्वीकार करते हुए कहा था

"साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहि भगत कलि निदहिं वेद पुरान।।'

बाउलो के काव्य की तरह लोक गीतात्मकता या एकतानता भले ही सन्तो के काव्य मे न हो किन्तु अपने क्षेत्र के लोक गीतो की सरसता के साथ गेयता ओर काव्यात्मकता जरूर है। हर दृष्टि से सन्तो की काव्य-धर्मिता कुछ साम्य के बावजूद बाउलो से समृद्ध

च्चम्तरीय है। वि-ार भय स उसका ृष्टात ५ना आच-त नही ल ।।

बौद्ध सहजियो के काल से ही रहस्य की बात करन के लिए कुछ विचित्र उल्टी लगने वाली बाते कही जाने लगीं थीं। इन्हे उलटबॉसी कहा गया। सन्तो ने भी इन उलटबॉसियो का प्रयोग किया। शायद इसीलिए इन सन्तो को रहस्यवादी एव जीवन से बहुत दूर का कवि कहा जाने लगा। बाउलो ने भी ऐसी उलटबॉसियो की रचना की है। सच पूछा जाए तो सन्तो ने मौलिक विचारधारा का तत्र जन-जन के मन मे खडा कर दिया था। जनरुचि के कलात्मक आयाम मे ही इन सन्तो ने नये धर्म की पीठिका तैयार की। इन कवियो की रहस्यात्मकता एक साथ ही सामाजिक और धार्मिक भी है। उनका रहस्य भी जीवन के बीच से ही फूटता है। वे अपनी उलटबॉसियो मे जीवन की विडम्बना को ही प्रस्तुत करना चाहते हैं और इससे भी आगे परम्परित गृह्य रहस्य का मखौल उडाने के लिए ही इस कठिन साधना का उल्टे भावो के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहते थे। इनके उदाहरण भी इसी समाज की सामान्यता से ही उद्भूत है।

सन्तो अचरज एक भी भारी पुत्र धरल महतारी।
पिता के सगहि भई बावरी कन्या रहलि कुवारी
खसमहि छोडि ससुर सग गौनी सो किन लेहु विचारी।
भाई के सग सासुर गौनी सासुहि सावति दीन्हा।
ननद भौज परपच रच्यौ है मोर नाम कहि लीन्हा।
समधी के सग नाही आई सहज भई घर वारी।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो, पुरूष जन्म भौ नारी।। (कबीरदास)

निश्चय ही जहॉ इस पद मे रहस्य की हठयोग की भावना है उससे ज्यादा उस समाज की विडम्बनाओ की अभिव्यक्ति हुई है जिसमे समाज का व्यभिचार व्याप्त है। लैंगिक सम्पर्क मे ब्राह्मण धर्म के पवित्र हठ के बीच समाज का विषय भोग सकेतित है। अनेक सामाजिक विडम्बनाओ को इन सन्तो ने अपने विविध रचना प्रकारो मे प्रस्तुत करने की कोशिश की है। एक अन्य उदाहरण मे देख सकते हैं।

"चली जात देखी एक नारी तर गागरि ऊपर पनिहारी।
चली जात वह बाटहिवाटा सोवनहार के ऊपर खाटा।।
जाडन मरै सफेदी सौरी खसम न चीन्है घरनि भौ बौरी।
सॉझ सकारे दिया लै बारै खसमहि छॉडि सँवरै लगवारै।।
वाही के रस निसुदिन राची पिया से बात कहै नहि साची।
सोवत छॉडि चली प्रिय अपना ई दुख अब दहुँ कहव कैसना।। (कबीर)

यह तो सामाजिक विडम्बना भी है। जहॉ समाज की उल्टी धारा को समझने का प्रयास किया गया है जहॉ पूरी की पूरी व्यवस्था जिसके लिए बनाई गई है उसी को खा रही है।

इसी क्रम मे बाउलो की उलटबॉसियो को भी देखा जाए। लालन का एक पद देखे

'लीला देखे लागे भय।
नौकार उपर गगा वोझाइ
गगा डागा वेये याय।।" (द्वितीय खड पद ४४)

या पद्मलोचन का एक पद -

"दिन दुपुरे चॉदेर उदय रात पोहान भार
हलो अमावस्याय पूर्णिमार चॉदे तेर प्रहर अधकार।।
सूर्य मामा मरे गेछे वुके मेरे शूल
वामन पाडाय कायेत बुडी माथाय वइछे चूल।
आवार कामरूपेते काका मल
काशीधामे हाहाकार
मयरा-मामीर कुलेर स्वामी वसे रयेछे
तार गर्भेते तिन जनार जन्म हयेछे।
अवार भाद्र-मासेर तेरोय पौषे।
चडक पूजार दिन एवार।" (दे० खण्ड-२ पद ८८)

दुघु के एक पद को उदाहरण रूप मे देखे

"चाँदे चॉदे आछे घेरा
वड से आजगुवि कथा
व्याङे खाय सापेर माथा " (दे० खण्ड २ पद-१५१)

या "दुइ मरा एकत्रे करलो रमण
ताइते छेले एक हलो सृजन।।
जन्म निये खोजे माके
वावा थाके मरार वॉके
हातेर काछे पाय याके
करे सेवन।। (दे० खण्ड २ पद-१५२)

इस प्रकार हम यह निर्णय ले सकते हैं कि बाउलो की काव्याभिव्यक्ति एव सामाजिक चेतना तथा कुछ धार्मिक चेतना के सन्दर्भ मे हिन्दी के सन्तो से साम्य है। यद्यपि वैषम्य ज्यादा है। सन्त साहित्य के बाद का होने के कारण उससे प्रभावित होना भी सम्भव लगता है। कई बाउलो ने तो कबीर का एव रैदास का प्रतीक रूप मे या दृष्टान्त रूप मे या गुरु मे नामोल्लेख किया है। दोनो साहित्य की तुलना करने पर साम्य एव विभेद अच्छी प्रकार मूल्याकित किया जा सकता है।



।। उपसहार।।

●

"बगाल के बाउल और उनका काव्य" विषयक ग्रथ रचना के सन्दर्भ मे नाना विषयो की चर्चा की गयी। बाउल शब्द का तात्पर्य इतिहास, बगाल का राजनीतिक एव साहित्यिक इतिहास आदि की चर्चा प्रसग मे बाउलो का विश्लेषण हुआ। धर्म और साधना प्रसग मे विविध पहलू पर विचार किया गया। दर्शन और साहित्य प्रकरण मे बाउलो का चेतनात्मक आधार और विविध गान (गीत) के उदाहरणो के साथ साहित्यिक स्वरूप की चर्चा की गयी। प्रासगिकता प्रसग मे उनके पदो का समकालीन प्रगामी स्वरूप चित्रित हुआ। आज की समस्याओ का समाधान ही नहीं ढूँढा गया अपितु तत्कालीन रचनात्मक जगत मे बाउल-काव्य की मौलिकता की खोज की गयी। अत में बाउल एव हिन्दी सन्तो की काव्य चेतना धर्म और दर्शन के साम्य एव विभेद की ओर दृष्टि दी गयी। तुलनात्मक अध्ययन हेतु आगे बढने वाले अनुसधित्सुओ के लिए यह अध्ययन मात्र अगुलि निर्देश हो सके-यही इच्छा थी। अब अत मे बाउलो के गीतो की जो सागीतिक विशेषता भाषिक अभिव्यक्ति के रूप मे प्रस्तुत हे उसकी सगीत भाषा यानी स्वर-लिपि दे देना समीचीन समझता हूँ। अत उपसहार मे परिशिष्ट रूप मे बाउलो के कुछ गीतो की स्वर-लिपि तथा कुछ सुलभ चित्रो को देकर इस प्रकरण को समाप्त करना चाहता हूँ। स्वर-लिपि भी ग्रन्थो मे दिए गये प्रकाशित अश से ज्यो की त्यो हिन्दी वर्णों के साथ प्रस्तुत है। भातखण्डे की परम्परा मे ही स्वर-लिपि का निर्देश हुआ है।

●

।। स्वर लिपि।।

बाउल गान एक

●

से लीला वुझवि क्षेपा केमन क'रे
लीलार यार नाइरे सीमा
कोन खाने कोन् रूप धरे।।
आपनि घर से आपनि घरी
आपनि करे रसेर चुरि
घरे घरे
ओ से आपनि करे म्याजिस्टारी
आवार आपनि वेडाय वेडी प'रे।।
गङ्गाय रइले गङ्गाजल हय
गर्ते गेले कूपजल कय
वेद-विचारे।
तेमनि सॉइर विभिन्न आकार
जानाय पात्र-अनुसारे।।
एके वय अनन्त धारा
तुमि-आमि नाम-वेओरा
भवेर' परे।
अधीन लालन वले केवा आमि
जानले धॉधा येत दूरे।।

●

रचनाकार लालन फकीर

बाउल गान एक की स्वर लिपि



पा । पा पा -Y II {मा- पा मा । गा गा -सा I
से ली ला ० वु झ वि क्षे पा ०

I सा रे -गा । रे सा -Y I (-Y -Y पा । पा -पा -Y) } II
के म न क रे ० "से ली ला ०'

II { -Y -Y र्सा । र्सा र्सा -Y I पा -Y ना । दा पा -Y I
ली लार् या र ना इ रे सी मा ०

I -Y -Y गा । मा पा मा I गा -Y रे । सा -Y -Y } I
कोन् खा ने कोन् रू प ध रे ० ०

I -Y -Y पा । पा पा -Y II
"से ली ला ०"

II {-Y -Y सा । सा रे गा I गा -Y मा । गा मा -Y I
आप् नि घर् से आ प् नि ध री ०

I -Y -Y पा । ना दा पा I मा पा -मा । गा गा -Y I
आप् नि क रे र से र् चु रि ०

I -Y -Y गा । गा गा -Y I रे -सा -Y । -Y -Y -Y } I
घ रे ध ० रे ० ० ० ० ०

I { -Y -Y र्सा । र्सा र्सा र्सा I पा पा -ना । दा पा -Y I
आप् नि क रे म्या जि स द री ०

I -Y -Y गा । मा पा मा I गा गा रे । सा -Y -Y } I
आ नि वे डाय् बे डी पो रे ० ०

I -Y -Y पा । पा पा -Y II
"से ली ला ०"



(शेष सब क्रमश तृतीय एव चतृर्थ कली के अनुरूप)

बाउल गान दो



वॉका नदीर पिछल घाटे पार हवि कि करे रे
सेथा देखले छवि अवाक हवि यावि दु'वाप वेटाते मरे रे।।
सेथा धीरे धीरे आस्ते आस्ते करते हय गमन
तवे हय ना रे मरण।
यावि दौडोदडि ताडाताडि
प्राण हारावार तरे रे।।
मदन मादन, शोषण स्तम्भन मोहन
पचवाणेर करवे सधान
सेथाय युद्धे यावि तीर छुडिवि
यावि दिवि घरे रे।।
से नदीर सहानवॉधा घाट
तार किवा परिपाट
सेथाय गद्य कालि वसे आछे,
तोरे वलि देवार तरे रे।।
सापेर मुखे भेक नचिये येते चाओ सेथा
सेटा अपूर्व कथा।
गोसॉइ विप्र केदे वले वुझवि कि तार परे रे।।



रचनाकार गोसॉई विप्र

बाउल गान दो की स्वर लिपि



II ध्र् ध्र् -सा । सा सा -रा I गा -पा पा । -Y पा -धा I
वॉ का o न दी र् पि o छ ल् धा o

I धा -Y -Y । -Y -प धा -ना I -ध्पा -Y पधा । { धा पा -Y I
टे o o o o o o o o ओ ओ पा र्

I गा रा -Y । गा रा -सा I सा -Y -सा } । -Y -Y -Y II
हो वि o कि क o रे o o o o o

II -Y -Y -Y । -Y पा पा I धा -सां सां । सां सां -ना I
o o o o ये था दे ख् ले छ वि o

I धा ना -Y । ना धा -पा I -Y -Y -Y । -Y -Y पा I
अ वा क् ह वि o o o o o o दु

I गा -Y पा । पा पा -Y I पा पा -धा । धा -Y -Y I
वा प वे टा ते o म रे o रे o o

I -Y -Y -Y । -प धा -ना -ध्पा I -Y -Y -पधा । { धा पा -Y I
o o o o o o o o o ओ ओ पा र्

I गा रा -Y । गा रा -सा I सा -Y -Y} । -Y -Y -Y II
ह वि o कि क o रे o o o o o

ⅠⅠ गा गा -Y । गा गा -Y । रा -गा गा । रा -गा गा Ⅰ
धी रे o धी रे o आ स ते आ स ते

Ⅰ -Y -Y -मा । गमगा -रा -Y । रा -Y गा । सा -Y रा Ⅰ
o o o ooo o o क र त ह यू ग

Ⅰ गा -Y -Y । -Y -Y -Y Ⅰ -Y -Y -Y । प धा पा -Y Ⅰ
म o o o o o o o न् त o वे o

Ⅰ गा -Y मा । गा रा -सा Ⅰ मा -Y -Y । -Y -Y -Y Ⅰ
भ य ना रे म o र o o o o o

Ⅰ पा -Y -Y । धा पा -Y Ⅰ धा सा -Y । र्रा र्सा -Y Ⅰ
ण o o आ वि o डा o द डि o

Ⅰ -स र्रा -र्सा -Y । -Y -Y -Y Ⅰ -Y -Y -Y । -Y पा प धा Ⅰ
o o o o o o o o या वि o

Ⅰ धा सा -Y । सा ना -Y Ⅰ धा ना -Y । ना न धा -पा Ⅰ
दा डा o द डि o ता डा o ता डि o o

Ⅰ -Y -Y -Y । पा पा -गा Ⅰ गा -Y पा । पा पा -धा Ⅰ
o o o आ ता न् त्रा ण हा रा वा र

Ⅰ धा -Y धा । -Y -प धा -ना Ⅰ पा -Y धा । धा पा -Y Ⅰ
त o रे o o o o रे o ओ ओ पा र

Ⅰ गा रा -Y । गा रा -सा Ⅰ सा -Y -Y } । -Y -Y -Y ⅠⅠ
ह वि o कि क o रे o o o o o



(शेष सब तृतीय एव चतुर्थ कली के अनुरूप)

बाउल गान तीन



सव लोके कय लालन कि जात ससारे।
लालन कय जेतेर कि रूप देखलाम ना ए नजरे।।
छुन्नत दिले हय मुसलमान
नारीलोकेर कि हय विधान ?
वामन चिनि पैतार प्रमाण,
वामनी चिनि कि ध'रे।।
केउ माला, केउ तस्वि गलाय
ताइते कि जात भिन्न वलाय
याओया किवा आसार वेलाय
जेतेर चिन्ह रय कार रे।।
गर्ते गेले कूपजल कय
गगाय गेले गगाजल हय
भूले एक जल से ये भिन्न नय
भिन्न जानात पात्र-अनुसारे।।
जगत् वेडे जेतेर कथा
लोके गौरव करे कथा तथा
लालन से जेतेर फाता
विकियेछे सात वाजारे।।



रचनाकार लालन फकीर

बाउल गान तीन की स्वर लिपि



II { सा -Y गा । मा पा -Y I मा ग मा -गा । रा सा -ना I
स व् लो के क य् ला ल ० न् कि जा त्

I सा -Y सा । सा -Y -Y I -Y -Y । -Y -Y -Y } I
स ङ् सा रे ० ० ० ० ० ० ०

/ -(सां । सां नां सा ना I । ध न सं ना ध I
० ० ला लन् क य् कि रू ० ० ०

I -Y -Y -Y । -Y -Y -Y I -Y -Y सां । सां सां -Y I
० ० ० ० ० प ० ० ला लन् क य्

I ना ना ध । ध पा -Y I ध -Y ध । पा मा -पा I
जे ते र कि रू प् दे ख लाम् ना ए ०

I गमा -Y मा । गा -मा -Y I ग मा -गा -रे । सा -Y -Y II
न ० ज रे ० ० ० ० ० ० ० ० ०
[ध ध ध ना ना -सां सां सां सां -Y

II { -Y -Y गमा । मा मा मा I मा -Y मा । मा मा -Y I
छु न्नत दि ले ह य् मु सल मा न्
-Y -Y सां गां रें सां ध -Y ध ध न स ना -ध

I -Y -Y न ध । ध पा मा I ᵐगा -Y गा । गा ग म गा -रे I
o o मा o री लो केट् ह य् कि वि धा o o o
पा -Y -Y -Y -Y -Y -Y -Y]

I -सा -Y -Y । -Y -Y -Y I -Y -Y सां । सां सां सां I
o o o o o न् o o वाम् ग चि नि

I ना -Y ना । ।। पा -Y I पा -Y ना । ध पा -Y I
पै o तार् प्र मा ण् वा म् मी चि नि o

I ᵐमा -Y मा । ग मा गा रे I -ग मा -गा रै । ध -Y -Y II
वि o क वे o o o o o o o o o o

●

(शेष अन्य द्वितीय कली के अनुसार)

बाउल गान चार



मन पागला रे मनेर आनन्दे हरि गुण गाओ।
हरिगुण गाओ रे पागल कृष्ण गुण गाओ।।
पितृवीजे मातृरजे गुरू दिलो तैरी सेजे
सेइ तरी केन अकूले भासाओ।।
मन दुटि रथेर घोडा नयन दुटि देय पाहारा।
हात दुटि श्रीगुरूर चरणसेवाय दाओ।
चौद्य पोया नौकार गोडा लाहा द्वारा नोका गडा।।
हरि नामेर दादाम जुडे धीरे धीरे वाओ।।
वाहारेर वदरे पाडि बेला आछे तलार दड चारि
एखन केन सेइ जीर्ण तरी घाटे घाटे वाओ।
दीन सुधीर ताइ वलछे भेवे तरी घाटे कि दॉडावे
अपार वेलाय धरले तरी घाटेर किनाराय।।



रचनाकार दीन सुधीर

बाउल गान चार की स्वर लिपि

●

सा -Y II -Y सा । रा रा I रा मा -गा -मा I र गा -रा। -Y -Y I
म न् ० पा ग ला रे ० ० ० ० ० ० ० ०

I -Y रा । रा गा I मा पा । मा गा I -रा -Y । रा गा I
० म नेर् ओ न न् दे ० ० ० ह रि

I -Y रा । -गा सा I रा -सा। -Y -Y I -Y -Y -Y । -Y I
० गु ० ण गा ० ० ० ओ ० ० ०

I र्सा र्सा । स र्सा I र्स र्गा र्स र्गा Y। ना -Y ना। ना ना I
ह रि ० गु ण ० ० ० ० ० ० गा ओ रे

I धा -पा। प ना -प ना I -मा मा। -पा पा I धा ना I ध पा -मा I
म ० न ० ० ० ० कृ ष् ण गु ० ण ० ०

I मा -Y । -Y -गा I - र गा -म गा । -रा -सा II
गा ० ० ० ० ० ० ० "म न

II मा मा । -Y गा I मा -Y । -Y -Y I पा र्सा। -ना धा I
पि तृ ० वि जे ० ० ० मा तृ ० र

I ना -धा। -प धा -पा I -Y -Y। -Y -Y I पा धा। ना सा I
जे ० ० ० ० ० ० ० ० गु रू दि ल

-না -र्ग। र्सा -Y I र्स रा -ग रा। - रा र्स ना I ध ना I -' I
o o o o o o o o o o o o तै री o सं

I प ना -प ना । -मा -Y I -Y पा। -Y ना। धा पा। पा ध पा I
जे o o o o o o से इ त री o के न o

I -मा -पा । -Y -Y I -Y -Y। पा पा I -Y ना । ध पा -मा I
o o o o o o अ कू o ले भा o o

I मा -Y। -Y -गा I -र गा -म गा । रा सा II
से o o o o o o ओ "म न"

●

(शेष अन्य द्वितीय कली के अनुरूप)

बाउल गान   पाँच



आमि कोथाय पाव तारे
आमार मनेर मानुषे ये रे।
हाराये सेइ मानुषे
तार उद्येशे
देश विदेश
वेडाइ घुरे
लागि सेइ हृदयशशी
सदा प्राण हय उदासी
पेले मन हतो खुशी
देखताम नयन भरे।
आमि प्रेमानले मरछि ज्वले निताइ केमन करे
मरि हाय हाय रे।
ओ तार विच्छेदे प्राण केमन करे
ओरे देख ना तोरा हृदय चिरे।
दिव तार तुलना कि
यार प्रेम जगत् सुशी
हेरिले जुडाय आँखि
सामान्ये कि देखिते पारे तारे।
तारे ये देखेछे
सेइ मजेछे
छाइ दिये ससारे।
मरि हाय हाय रे।

ओ स ना जानि कि कुहक जाने
अलक्ष्ये मन चुरि करे।
कुलमान सब गेल रे।
तबु ना पेलाम तारे
पेमेर लेश नाइ अन्तरे।
ताइते मोरे देय ना देखा से रे।
ओ तार वसत कोथाय
ना जेने ताय
गगन भेवे मरे।
मरि हाय हाय रे।
ओ से मानुषेर उछिश
यदि जानिस्
कृपा करे
आमार सुहृत् हये
व्याथार व्यथित हये
आमाय वले दे रे।



रचनाकार गगन हरकरा

बाउल गान पॉच की स्वर लिपि



मा ना II { गा गा म गा। रा सा -र सा। ॅसा -Y ॅधा । -Y ध्a ना I
आ मि को था ० यू पा व ० ० ता ० रे ० आ मार

I सा स रा -गा। रा सा -र सा। न्a सा -Y। -रा -गा -Y I
म ने ० र मा नु ० ष ये रे ० ० ० ०

I (-र ग रा -सा -Y। -Y -Y -Y। -Y -Y -Y। -Y मा गा)} I
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० आ मि

I -र ग रा -सा -Y। -Y -Y -Y। -Y -Y सा । सा सा -Y I
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० हा रा ये ०

I रा -मा मा। मा मा -Y। पा -Y धा। पा -मा -Y I
से इ मा नु षे ० ता र् उद् दे शे ०

I पा -Y ना। धा पा -Y। -Y -Y -Y। -Y र्सा र्स र्रा
दे श् वि दे शे ० ० ० ० ० आ मि ०

I र्सा -Y ना। धा पा -ध पा। मा पा -Y। गा ग मा -पा II
दे श् वि दे शे ० ० वे डा इ धु रे ० ०

सा। सा सा -र सा II ना् सा र सा। ना् धा -Y। -Y -Y सा। सा सा -रा I
ला गि से ० इ हृ द ० यू श शी ० ० ० न पा पा न

I गा -Y मा। पा म पा -मा। -Y -Y गा। गा सा -रा I
ह य उ दा सी ० ० ० ० पे ले म न्

I गा गा -मा। पा धा -पा। मा मा -Y। मा गा -Y I
ह त ० खु शि ० दि वा ० नि शि ०

I मा मा गा। रा सा -र सा। ना़ सा -Y। -स रा -गा -Y I
दे खि ताम् न य ० न् भ रे ० ० ० ० ०

I -र ग रा -सा -Y। -Y -Y -Y I -Y -Y -Y -Y -Y। -Y पा पा I
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० आ मि

I { मा ँधा -Y। धा धा -ना। र्सा -Y र्गा। रा र्सा -Y I
प्रे मा ० न ले ० म ट् छि ज्व ले ०

I ना ना -धा। ना र्सा -Y। ना र्सा -Y। -र्स र्रा -र्गा -Y I
नि वा इ के म न् क रे ० ० ० ० ०

I (-र्र र्ग र्रा -र्सा -Y। -Y -Y -Y। -Y -Y -Y। -Y ना धा I
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० म रि

I ना -Y -Y। -Y -Y -Y। र्सा -न र्स र्स र्स ना। -धा पा गा) } I
हा ० ० ० ० य् हा ० ० य् रे ० ० आ मि

I -र्र र्ग र्रा -र्सा -Y। -Y -Y -Y। -Y -Y -Y। -Y ना ना I
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ओ तार्

I ना -Y र्सा। र्सा र्सा -र्रा। र्सा ना र्सा -न धा। पा पा -धा I
वि च् छे दे प्रा ण् के म ० ० न क रे ०

I ना -Y र्सा। र्सा र्सा -र्रा। र्सा ना -Y। धा पा -Y I
वि च् छे दे प्रा ण् के म न् क रे ०

I पा -ना ना। धा पा -Y। मा पा -Y। मा पा -र्सा I
देख् ना तो रा ० हृ द य् ए से ०

I र्स र्र सा -ना ना। धा या -ध पा। मा पा -Y। गा ग मा -पा II
दे ० ० ख् ना तो रा ० ० हृ द य् चि रे ० ०

सा। सा सा -र सा II न्ा सा -र सा। न्ा ध्ा -Y। -Y -Y सा। सा सा -रा I
दि व ता ० र् तु ल ० ० ना की ० ० ० यार् प्रे मे ०

I गा गा -मा। पा म पा -मा। -Y -Y गा। गा सा -रा I
ज ग त् सु खी ० ० ० ० हे रि ले ०

I गा गा -मा। पा धा -पा मा गा -Y। सा गा -Y I
जु डा य् ऑ खि ० सा मा न् ने कि ०

I मा मा गा। रा सा -र सा । न्ा सा -Y। -स रा -गा -Y I
दे खि ते पा रे ० ० ता रे ० ० ० ० ०

I -र ग रा -सा -Y। -Y -Y। -Y -Y -Y। -Y पा पा I
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ता रे

I { मा न् धा -Y। धा धा -ना। र्सा -Y र्गा। र्रा र्सा -Y I
ये दे ० ० खे छे ० से इ म जे छे ०

I ना -Y धा। ना र्सा। -Y ना र्सा -Y। र्स र्रा -र्गा -Y I
छा इ दि ये रा ड सा टे ० ० ० ० ०

न (-र र्ग र्रा -र्सा -Y । -Y -Y -Y । -Y -Y -Y । -Y ना धा I
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० म रि

I ना -Y -Y। -Y -Y -Y। र्सा -न र्स र्रा र्स ना। -धा पा गा) } I
हा ० ० ० ० य् हा ० ० य् रे ० ० ता रे

I -र्र गां रां -सां -Y। -Y -Y -Y। -Y -Y -Y। -Y ना ना I
o o o o o o o o o o o o ओ से

I ना -Y सां । सां सां -रां। सां न सां -न धा। पा पा -धा I
ना o जा नि की o कु ह o o क् जा ने o

I पा ना -Y। धा पा -Y। मा पा -Y। मा पा -सां I
अ ल क् ये म न् चु रि o क रे o

I र्स र्र र्स ना -Y। धा पा -ध पा। मा पा -Y। गा ग मा -पा II
क o o टा क् मे म o न् चु रि o क टे o o

सा। सा सा -र सा II ना -सा र सा। ना धा -Y। -Y -Y सा। सा सा -रा I
कु ल मा o न् स र् गे o ल रे o o o त वु ना o

I गा गा -मा। पा म पा -मा। -Y -Y गा। गा सा -रा I
पे ला म् ता टे o o o o प्रे मेट् ले श्

I गा -Y मा । पा धा -पा। मा -गा गा। सा गा -Y I
ना इ अन् त रे o ता इ ते मो रे o

I मा -Y गा। रा सा -र सा ना सा -Y। -स रा -गा -Y I
दे य् ना दे खा o o से रे o o o o o

I -र ग रा -सा -Y। -Y -Y -Y। -Y -Y -Y। -Y पा पा I
o o o o o o o o o o o o ओ तार्

I { मा न्धा -Y। धा धा -ना। सां -Y गां रां सां -Y I
व स द् को धा य् ना o जे ने ता य्

I ना ना -धा । ना सां -Y। ना सां -Y। र्स रा -गां -Y I
ग ग न् भे वे o म रे o o o o o

I (-र्ं गं रां -सां -Y। -Y -Y -Y। Y Y Y। Y ना ना ।
o o o o o o o o o o o o म रि

ना -Y -Y। -Y -Y -Y। सां -न सं रां स ना। धा पा गा)} I
हा o o o o य् हा o o य् रे o ओ ता र्

-र्ं गं रां सां -Y। -Y -Y -Y। -Y -Y -Y। -Y ना ना I
o o o o o o o o o o o o ओ से

I ना ना सां। सां सां -रां। सां न सां -न धा। पा पा धा I
मा नु षेर् उद् दि श् य दि o o o जा निस् से

I ना ना सां। सां सां -रां। सां ना -Y। धा पा -Y I
मा नु षेर उद् दि श् य दि o जा नि स्

I पा ना -Y। धा पा -Y। मा पा पा। मा पा सां I
कृ पा o क रे o व ले दे वे आ मार्

I सं रं सां ना -Y। धा पा -ध पा। मा पा पा। मा पा सां I
सु o o हृ द् ह ये o o व ले दे रे व थार्

I सं रं सां ना -Y। धा पा -ध पा। मा पा -Y। गा ग मा -पा II
व्य o o थि त् ह ये o o व ले o दे रे o o

●

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची



१ बगला साहित्येर सम्पूर्ण इतिवृत्ति असित कुमार वन्द्योपाध्याय (प्रथम पर्व प्राचीन युग) द्वितीय सस्करण। १९६८

२ बगलार साहित्येर सक्षिप्त इतिहास, भूदेव चौधुरी प्रकाशक जानकी नाथ वसु बुकलैण्ड प्राइवेट लि। शकर घोष लेन कलकत्ता ६/ द्वितीय सस्करण १८६२

३ बागलार बाउल काव्य ओ दर्शन, सोमेन्द्र नाथ वन्द्योपाध्याय बुकलैण्ड प्राइवेट लि। शकर घोष लेन, कलकत्ता ६/१५ अगस्त १९६४

४ बागलार बाउल ओ बाउल गान अध्यापक उपेन्द्र नाथ भट्टाचार्य श्री प्रह्लाद कुमार प्रामाणिक ओरिएण्ट बुक कम्पनी, सि २६-३१ कालेज स्ट्रीट मार्केट कलकत्ता १२/ नववर्ष १३७८ (बगला सम्वत्) ई सन् १९७१

